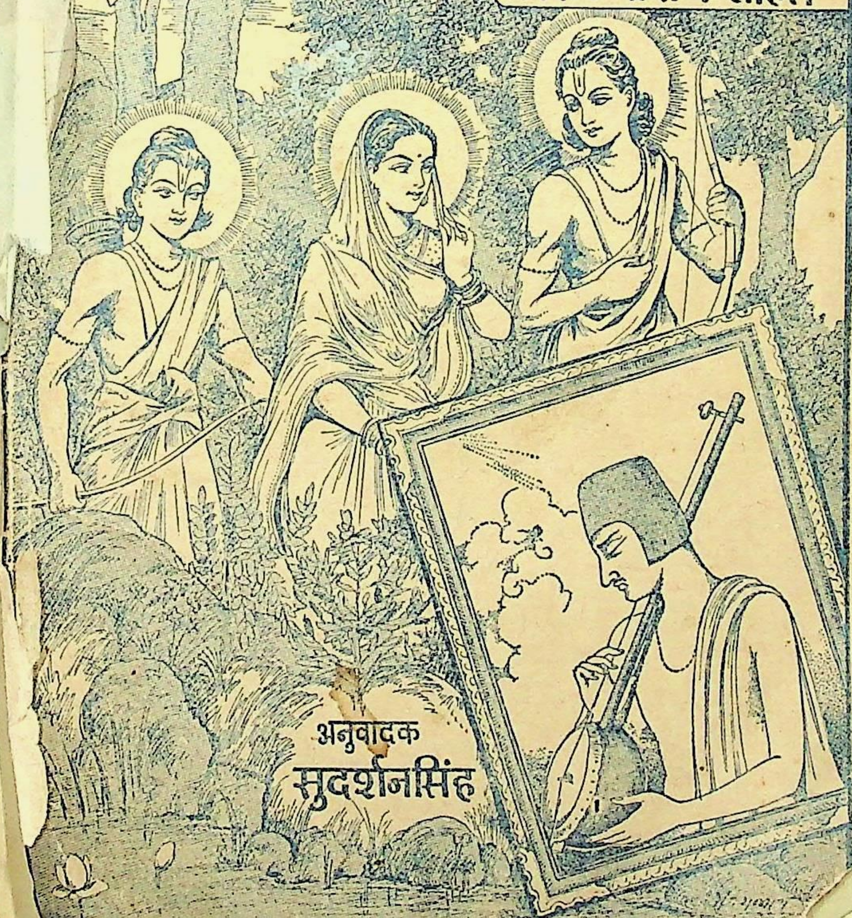
श्रीसूरदासजी रचित

सूर-राम-चरितावली

सरल भावार्थ सहित



अनुवादक
सुदर्शनसिंह

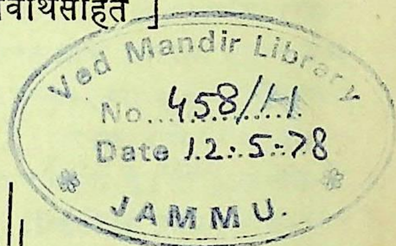


॥ श्रीराम ॥

श्रीसूरदासजी रचित

सूर-रामचरितावली

[सरल भावार्थसहित]



अनुवादक

सुदर्शनसिंह

प्रकाशक

मोतीलाल जालान

गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत्	२०१२	से २०२३ तक	२५,०००
संवत्	२०२५	चतुर्थ संस्करण	५,०००
संवत्	२०३३	पंचम् संस्करण	५,०००
		कुल	३५,०००

मूल्य अजिल्द पचासी पैसे

सजिल्द १ २५ (एक रुपया पचीस पैसे)

पता—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

नम्र निवेदन

जो भगवान्‌के कृपाप्राप्त जन हैं, उनमें न संकीर्णता सम्भव है न भेददृष्टि। भक्तश्रेष्ठ सूरदासजीके आराध्य यद्यपि नन्द-नन्दन श्रीकृष्णचन्द्र ही हैं; किंतु भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णमें सूरदासजीकी तो अभेद-बुद्धि है। सूरदासजीने पूरे श्रीमद्भागवतके चरितोंका अपने पदोंमें गान किया है। यह बात ठीक है, परंतु अत्यन्त संक्षिप्त रूपसे। कहीं-कहीं तो पूरे स्कन्धकी बात एक-दो पदोंमें ही कह दी है। श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें श्रीरामचरित केवल दो अध्यायोंमें है; किंतु सूरदासजीने अपने ढंगसे पूरे श्रीरामचरितका पदोंमें वर्णन किया है और उनका यह वर्णन कितना भावपूर्ण, मौलिक एवं रसमय है तथा कितनी सुन्दर रचना है यह तो आप स्वयं इस पुस्तकको पढ़कर ही अनुभव कर सकेंगे। 'सूर' के इन पदोंमें कई स्थानोंपर तो अत्यन्त मार्मिक भावोंकी उद्भावना है।

सूरदासजीके रामचरित-सम्बन्धी जितने पद उपलब्ध हो सके हैं, वे सब इस संग्रहमें दिये गये हैं। अपनी जानमें कोई पद छोड़ा नहीं गया है। उपलब्ध सूरसागरकी प्रतियोंके अतिरिक्त 'विद्यामन्दिर' काँकरोलीकी श्रीशोभारामजीकी हस्त-लिखित प्रतिसे कुछ ऐसे पद मिले हैं जो उपलब्ध छपी प्रतियोंमें नहीं मिलते। विद्या-मन्दिरमें सूरसागरकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ हैं, उनमें पण्डित शोभारामजीद्वारा लिखी प्रति सबसे प्राचीन है और उसीमें सबसे अधिक पद भी हैं। हमारी

प्रार्थनापर 'विद्या-मन्दिर' के अध्यक्षजीने वह प्रति यहाँ भेज दी थी, इसके लिये हम उनके बहुत कृतज्ञ हैं। उस हस्त-लिखित प्रतिमें कुछ पद ऐसे हैं जिनकी पङ्क्तियाँ पूरी नहीं हैं। उनमें स्थान-स्थानपर ...... ऐसे चिह्न बने हैं। सम्भवतः उस प्रतिके लेखकने जिस प्रतिसे पद लिये हैं, उस मूल प्रतिमें वे अंश कीड़ोंके खाने या अन्य किसी कारणसे नष्ट हो गये थे। हमने वे अधूरे पद भी ज्यों-के-त्यों ले लिये हैं। अवश्य ही अनुवादमें उन लुप्त स्थानोंपर जिस भावके शब्द हो सकते थे, वह भाव [ ] इस प्रकारके कोष्ठकमें दे दिया है, जिससे पदके अर्थकी शायद संगति मिल जाय।

सूरसागरके श्रीरामचरितके पद देकर अन्तमें सूर-सारावलीके श्रीरामचरितके पद भी दे दिये गये हैं। सूर-सारावली-में कुछ पदोंमें ही पूरा श्रीरामचरित आ गया है। पुस्तकके अन्त-में पदोंमें आये हुए मुख्य कथा-प्रसङ्ग भी दे दिये गये हैं।

आशा है सूर-साहित्यके प्रेमियों तथा श्रीरामभक्तोंको सूरदासजीके श्रीरामचरितके पदोंका यह अनुवादयुक्त संग्रह प्रिय लगेगा और इसे पाकर वे प्रसन्न होंगे।

विनीत—

प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर

श्री हरिः

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१–मङ्गलाचरण ···	१३
बालकाण्ड	
२–जन्मोत्सव ···	१४
३–शर-क्रीड़ा ···	१६
४–विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षा ···	१८
५–अहल्योद्धार ···	१८
६–जनकपुरमें ···	१९
७–धनुष-भङ्ग ···	२०
८–दशरथका जनकपुर-आगमन ···	२१
९–कङ्कण-मोचन ···	२२
१०–धनुष-भङ्ग, पाणिग्रहण ···	२३
११–दशरथ-विदा ···	२५
१२–परशुराम-मिलाप ···	२५
१३–अवधपुरी-प्रवेश ···	२६
अयोध्याकाण्ड	
१४–राम-वन-गमन ···	२७
१५–कैकेयी-वचन-श्रीराम-के प्रति ···	२९
१६–दशरथ विलाप ···	२९
१७–श्रीराम-वचन जानकीके प्रति ···	३०

विषय	पृष्ठ-सख्या
१८–जानकी-वचन श्रीरामके प्रति ···	३१
१९–श्रीराम एवं माताका संवाद ···	३२
२०श्रीराम-वचन लक्ष्मणके प्रति ···	३३
२१–लक्ष्मणका उत्तर ···	३४
२२–महाराज दशरथका पश्चात्ताप ···	३४
२३–राम-वन-गमन ···	३५
२४–लक्ष्मण-केवट-संवाद ···	३६
२५–केवट-विनय ···	३७
२६–पुरवधू-प्रश्न ···	३९
२७–दशरथ-तन-त्याग ···	४२
२८–कौसल्या-विलाप, भरत-आगमन ···	४४
२९–भरत-वचन माताके प्रति ···	४५
३०–महाराज दशरथकी अन्त्येष्टि ···	४६
३१–भरतका चित्रकूट-गमन ···	४८
३२–श्रीराम-भरत-संवाद ···	४९
३३–रामोपदेश भरतके प्रति	५०

विषय	पृष्ठ-संख्या
३४—भरत-विदा ...	५०

अरण्यकाण्ड

विषय	पृष्ठ-संख्या
३५—शूर्पणखा-नासिकोच्छेदन ...	५२
३६—खरदूषण-वध ...	५३
३७—सीता-हरण ...	५४
३८—सीताका अशोक वन-वास ...	५७
३९—राम-विलाप ...	५७
४०—रामका लक्ष्मणके प्रति	५८
४१—गृध्र-उद्धार ...	६०
४२—गृध्रको हरि-पद-प्राप्ति ...	६१
४३—शबरी-उद्धार ...	६२

किष्किन्धाकाण्ड

विषय	पृष्ठ-संख्या
४४—सुग्रीव-मिलन ...	६३
४५—हनुमत् राम-संवाद ...	६३
४६—वालि-वध ...	६४
४७—सुग्रीवको राज्य-प्राप्ति ...	६५
४८—सीता-शोध ...	६६
४९—सम्पाती-वानर-संवाद ...	६७

सुन्दरकाण्ड

विषय	पृष्ठ-संख्या
५०—निशिचरी-वचन जानकीके प्रति ...	७५
५१—निशिचरी-रावण-संवाद	७७
५२—रावण-वचन सीताके प्रति ...	७८
५३—रावण-त्रिजटा-संवाद ...	८१
५४—त्रिजटा-सीता-संवाद ...	८१
५५—त्रिजटा-स्वप्न, हनुमान्-सीता-मिलन ...	८६
५६—हनुमान्द्वारा सीता-समाधान ...	९२
५७—हनुमान्का सीता-के प्रति ...	९५
५८—सीता-संदेश श्रीरामके प्रति ...	१००
५९—सीता-परितोष ...	१०२
६०—अशोकवन-भङ्ग ...	१०४
६१—हनुमान्-रावण-संवाद	१०७
६२—लंका-दहन ...	१११
६३—श्रीजानकीका संदेश ...	११८
६४—मन्दोदरीका रावणके प्रति ...	१२५
६५—सीताका चूडामणि-प्रदान ...	१२५
६६—हनुमान्-प्रत्यागमन ...	१२६
६७—हनुमान्-राम-संवाद ...	१२७

लङ्काकाण्ड

विषय	पृष्ठ-संख्या
६८—सिन्धु-तट-वास ...	१३१
६९—हनुमंत-वचन ...	१३२
७०—विभीषण-रावण-संवाद	१३८
७१—राम-प्रतिज्ञा ...	१३९

विषय	पृष्ठ-संख्या
७२—रावण-मन्दोदरी-संवाद	१४०
७३—राम-सागर-संवाद ···	१५२
७४—सेतु-बन्धन ···	१५५
७५—श्रीसीताजीको त्रिजटाका आश्वासन ···	१५९
७६—मन्दोदरीकी रावणसे प्रार्थना ···	१६०
७७—रावणकी गर्वोक्ति ···	१६१
७८—श्रीराम-अङ्गद-संवाद ···	१६२
७९—अङ्गदका लङ्का-गमन ···	१६४
८०—अङ्गद-रावण-संवाद ··	१६९
८१—लङ्कापर आक्रमण ···	१८१
८२—लक्ष्मणकी प्रतिज्ञा ···	१८२
८३—लक्ष्मणके द्वारा लङ्का-पर आक्रमण ···	१८२
८४—मन्दोदरीके वचन रावणके प्रति ···	१८३
८५—कुम्भकर्ण-रावण-संवाद ···	१८६
८६—श्रीरामके प्रति हनुमान्-जीकी प्रार्थना ···	१९१
८७—श्रीराम-वचन ···	१९९
८८—राम-रावण-युद्ध ···	२००
८९—रावण-उद्धार ···	२०४
९०—सीता-मिलन ···	२०७
९१—अग्नि-परीक्षा ···	२०८
९२—माताकी व्याकुलता ···	२१२
९३—अयोध्या-आगमन ···	२१३
९४—राज-समाज-वर्णन ···	२२१
सूर-सरावलीकी रामकथा	
९५—भूमिका ···	२२३
९६—राम-जन्म ···	२२६
९७—बाल-लीला ···	२२८
९८—विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षा ···	२३३
९९—सीता-स्वयंवर ···	२३५
१००—चारों भाइयोंका विवाह	२३९
१०१—परशुराम-समाधान ···	२४०
१०२—अयोध्या-आगमन ···	२४१
१०३—वनवास-लीला ···	२४१
१०४—सीता-हरण ···	२४५
१०५—सीताकी खोज ···	२४७
१०६—लङ्का-विजय ···	२५०
१०७—रामराज्य ···	२५२
१०८—**परिशिष्ट** ···	२५५

श्रीहरिः

पद-सूची

पद — पद-संख्या

अ

अगम पंथ अति दूरि जानकी ९२
अजोध्या बाजति आजु बधाई ३
अति आनंद अयोध्या आए २०७
अति सुख कौसिल्या उठि धाई १९७
अनुचर रघुनाथ कौ, तव दरस ७९
अनैसे ठाढ़े सागर तीर ··· १३७
अब न करौ जिय सोच जानकी १३८
अब हौं जननि चलौ, लै जाऊँ १०२
अब हौं कौन कौ मुख हेरौं १६६
अरी अरी सुन्दरि नारि सुहागिनि ३२
अरे सुनि सीता कत लायौ··· ७१
अवधपुर आए दसरथ राइ १६

आ

आइ बिभीषन सीस नवायौ ११८
आजु अति कोपे हैं रन राम १७९
आजु अमर-मुनि-संतनि चाउ १८०
आजु दसरथ कें आँगन भीर ४
आज रघुनाथ पयानौ देत ··· २७
आजु रघुबीर कौ दूत आयौ···१०५
आपनु तरि-तरि औरनि तारत १३५
आयौ रघुनाथ बली, सीख सुनो मेरी ··· १२७
आहु रघुबीर की सरन अंगद कहै ··· १५१

इ

इहिं बिधि बन बसे रघुराइ ४९

ए

एक रैपट दियें मुकुट उड़ि जायँगे ··· १५३

ऐ

ऐसौ जिय न धरौ रघुराइ ··· २२

अं

अंतरजामी हौ रघुबीर ··· १९९

क

कपट कुरंग-रूप धरि आयौ २०९
कपि ! तुम यह संदेसौ कहियौ १०२
कपिबर ! देखि अजोध्या आई १९१
कर कंपै कंकन नहिं छूटै ··· १२
करतल सोभित बान-धनुहियाँ ५
करि कपि कटक चले लङ्का कौं २११
करुना करति मँदोदरि रानी १८४
कहाँ गयौ मारुत-पुत्र कुमार १६७
कहा तू कहति तिय, बार-बारी १४१
कहि धौं सखी ! बटाऊ को हैं ३३
कहियौ कपि ! रघुनाथ राज सौं ८९
कहौ कपि ! कैसैं उतरे पार··· ८४

पद पद-संख्या

कहौ कपि ! जनक-सुता-कुसलात ···१०८
कहौ कपि ! रघुपति कौ संदेस १७१
कह्यौ तब हनुमत सौं रघुराई १६९
काहे कौं परतिय हरि आनी १२५
कैसैं पुरी जरी कपिराइ··· १०९

ख

खर-दूषन यह सुनि उठि धाए ४६

ग

गयौ कूदि हनुमंत जब सिंधु-पार ६७
गुरु बसिष्ठ भरतहिं समुझावैं ३९
गंगा-तट आए श्रीराम ··· ८

घ

घुटुरुन चलत कनक-आँगन मैं २०२

च

चढ़े हरि कनकपुरी पर आज १५६
चितै रघुनाथ-बदन की ओर १०

ज

जनक बिदेह कियौ जु स्वयंबर २०४
जनकराज तब बिप्र पठाए २०५
जनकसुता, तू समुझि चित्त मैं ७०
जननी ! हौं अनुचर रघुपति कौ ७८
जननी ! हौं रघुनाथ पठायौ ८७
जनि बोलहि मंदोदरि रानी १३०
जानकी ! मन संदेह न कीजै ८३
जानकी ! हौं रघुपति की चेरी ८२
जानौं हौं बल तेरौ रावन··· १४८

पद पद-संख्या

जामवंत रघुनाथ बचन भाष्यौ ६२
जारौं गढ़ आजु, जैसैं रावन भै मानै ··· ९८
जौ पै राम रजा हौं पाऊँ ११४
जौ हौं नैक रजायस पाऊँ··· ११५

त

तब अंगद यह बचन कह्यौ ६५
तब हौं नगर अजोध्या जैहौं ११९
तात बचन रघुनाथ माथ धरि ३४
तुम जानकी ! जनकपुर जाहु २१
तुम लछिमन ! निज पुरहि सिधारौ ··· २४
तुम लछिमन या कुंज कुटी में ५५
तुमहि बिमुख रघुनाथ, कौन बिधि ··· ४२
तुम्हैं पहिचानति नाहीं बीर ८१
तू जननी ! अब दुख जनि मानहि ··· ९१
तैं कत सीता हरि आनीं··· १२३
तैं कैकई कुमंत्र कियौ ··· ३७
तोहि कवन मति रावन ! आई १२६
त्रिजटा सीता पै चलि आई ७३

द

दसरथ चले अवध आनंदत १४
दसरथ सौं रिषि आनि कह्यौ ७
दूसरें कर बान न लैहौं ··· १७८

पद पद-संख्या

देखन कौं मंदिर आनि चढ़ी १९४

देखियत जहाँ-तहाँ रघुबीर १८१

देखि रे, वह सारँगधर आयौ १३९

देखि हो कंत ! रघुनाथ आयौ १२१

देखौ कपिराज ! भरत वे आए १९५

देखौ माई ! राम-लखन दोउ आवत ... ९

दौनागिरि हनुमान सिधायौ १७०

दंडक बन आए रघुराई... ४५

ध

धनि जननी ! जो सुभटहि जावै १७२

धनि जननी ! तेरौ व्रत आख्यौ ७४

धनुहीं-बान लए कर डोलत ६

न

निरखि मुख राघव धरत न धीर ... १६५

नौका हौं नाहीं लैं आऊँ... २९

प

परसुराम तेहिं औसर आए १५

पवन-पुत्र बोल्यौ सतिभाई १७५

पुष्य नछत्र नौमी जु परम दिन २०१

फ

फिरत प्रभु पूछत बन-द्रुम-बेली ५४

फिरि-फिरि नृपति चलावत बात ... २६

ब

बचन समझ नृप आज्ञा कीन्ही २०८

पद पद-संख्या

बड़े भाग्य इहिं मारग आए ६०

बन असोक मैं जनक-सुता कौं ५०

बनचर ! कौन देस तें आयौ ८०

बालि-नंदन आइ सीस नायौ १५५

बालि-नंदन बली, विकट बनचर महा ...१४६

बिछुरी मनो संग तें हिरनी ६४

बिनती कहियो जाइ पवनसुत १७४

बिनती केहि बिधि प्रभुहि सुनाऊँ ...१९८

बिस्वामित्र बड़े मुनि कहियत २०२

बीर ! सहज मैं होय तौ बल न कीजै ...१४३

बैठी जननि करति सगुनौती १८९

बंधू ! करियो राज सँभारें ...४३

भ

भृगुपति आए जानि जब रघुपति ...२०६

भ्रात-मुख निरखि राम बिलखाने ...४१

म

मनिमय आसन आनि धरे १९६

महाराज दसरथ तहँ आए ११

महाराज दसरथ मन धारी १७

महाराज दसरथ यौं सोचत १८

मिले हनु, पूछी प्रभु यह बात ५९

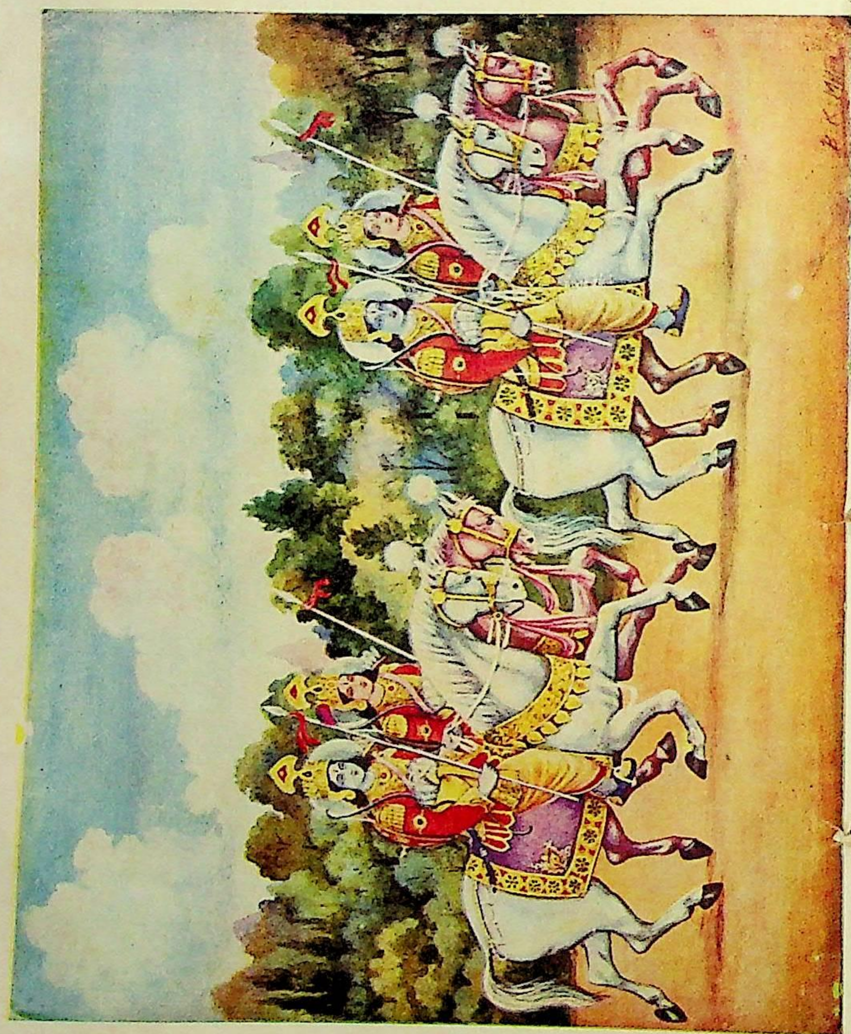
मूरख ! रघुपति-सत्रु कहावत १५०

मेघनाद ब्रह्मा-बर पायौ ...१६१

पद	पद-संख्या
मेरी केती बिनती करनी···	१०५
मेरी नौका जनि चढ़ौ ···	३०
मैं तो राम-चरन चित दीन्हौ	७६
मैं परदेसिनि नारि अकेली	९०
मोकौं राम-रजायसु नाहीं···	१४९
मो मति अजहुँ जानकी दीजै	१४०
मंत्रिनि नीकौ मंत्र बिचार्यौ	९६
य	
यह गति देखे जात, सँदेसौ	८८
र	
रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर···	२
रघुनाथ पियारे, आजु रहौ	२०
रघुपति अपनौ प्रन प्रतिपार्यौ	१८२
रघुपति कहि प्रिय-नाम पुकारत	५१
रघुपति चित्त बिचार कर्यौ	१३४
रघुपति जबै सिंधु-तट आए	१३३
रघुपति ! जो न इंद्रजित मारौ	१५७
रघुपति निरखि गीध सिर नायौ	५६
रघुपति, बेगि जतन अब कीजै	११६
रघुपति ! मन संदेह न कीजै	१६८
रघुपति रन जीति आए···	१८८
राघव आवत हैं अवध आज	१९०
राघौ जू ! कितिक बात, तजिचित	१११
राज दियौ सुग्रीव कौं ···	६१
राजमद सकल दृष्टि है छाई	९४
राजा तेल-द्रोनि में डारे ···	३५
राम जू कहाँ गए री माता···	३८
राम धनुष अरु सायक साँधे	४७
राम पै भरत चले अतुराइ	४०
राम यौं भरत बहुत समझायौ	४४
रामहिं राखौ कोऊ जाइ···	३६
रावन अपनौ कृत फल पायौ	१८३
रावन ! उठि निरखि देखि···	१५९
रावन, कुंभकरन असुराधिप	२००
रावन चल्यौ गुमान-भर्यौ	१६४
रावन ! तब लौं ही रन गाजत	१४७
रावन ! तेरी मृत्यु तुलानी···	१३१
रावन मंत्र ये हमाहीं ···	९७
रावन से गहि कोटिक मारौं	११२
रावन सोच करत मन माहीं	७२
रिष्यमूक परबत बिख्याता ···	५८
रे कपि ! क्यौंपितु-बैर बिसार्यौ	१५२
रे पिय ! लंका बनचर आयौ	१२८
ल	
लखन दल संग लै लंक घेरी	१५८
लखि लोचन, सोचै हनुमान	६६
लषन कह्यौ, करबार सम्हारौं	१६३
लछिमन नैन नीर भरि आए	२५
लछिमन ! रचौ हुतासन भाई	१८६
लछिमन सीता देखी जाइ	१८५
ललित गति राजत अति रघुबीर	१३
लै भैया केवट ! उतराई ···	२८
लंकपति अनुज सोवत जगायौ	१६२

पद	पद-संख्या
लंकपति इन्द्रजित कौं बुलायौ	१५४
लंकपति कौं अनुज सीस नायौ	११७
लंकपति पास अंगद पठायौ	१४५
लंक प्रति राम अंगद पठावैं	१४२
लंक हनुमंत तोरि ···	१०४
लंका फिरि गई राम दोहाई	१६०
लंका लीजति है रे रावन	१२२
लंका हनूमान सब जारी ···	१००
व	
वे देखो रघुपति हैं आवत	१९३
वे लखि आए राम रजा ···	१२०
श	
श्रीमुख आपुन करत बड़ाई	१७७
श्रीरघुपति सुग्रीव कौं ···	६३
श्रीराम-आदेस अंगद चल्यौ	१४४
स	
सकुचनि कहत नहीं महराज	१९
सखी री कौन तिहारे जात···	३१
सबरी आश्रम रघुबर आए ···	५७
सबरी परम भक्त रघुपति की	२१०
समुझि अब निरखि जानकी मोहि ··· ···	६८
सरन परि मन-बच-कर्म बिचारि	१२४
सिंधु-तट उतरे राम उदार	१३६
सीतापति-सेवक तोहि देखन कौं आयौ ··· ···	९५

पद	पद-संख्या
सीता पुहुप-बाटिका लाई	४८
सीय सुधि सुनत रघुबीर धाए	११०
सुक-सारन द्वै दूत पठाए	१३२
सुनत नगर सबहिन सुख मान्यौ	२१२
सुनि प्रिय तोहि कथा सुनाऊँ	१२९
सुनि सीता ! सपने की बात···	७७
सुनि सुत स्याम राम कहाँ जैहौ	२३
सुनु कपि, वे रघुनाथ नहीं ···	८६
सुनौ अनुज, इहिं बन इतननि मिलि ···	५३
सुनौ कपि, कौसिल्या की बात	१७३
सुनौ किन कनकपुरी के राइ	६९
सुरपतिहि बोलि रघुबीर बोले	१८७
सोचि जिय पवन पूत पछिताइ	९९
सो कि दिन त्रिजटा ! कहु, कब ऐहै	७५
ह	
हनु ! तैं सब कौ काज सँवा-यौ	१०७
हनुमत-बल प्रगट भयौ ···	९३
हनुमत ! भली करी तुम आए	८५
हनूमान अंगद के आगैं ···	१०६
हनूमान संजीवनि ल्यायौ	१७६
हमारी जन्मभूमि यह गाउँ	१९२
हरि-हरि, हरि-हरि सुमिरन करौ	१
हो लछिमन ! सीता कौनें हरी	५२
हौं प्रभु जू की आयसु पाऊँ	११३



॥ श्रीहरिः ॥

सूर-रामचरितावली

मङ्गलाचरण

राग बिलावल

[१]

हरि-हरि, हरि हरि सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ॥
जय अरु बिजय पारषद दोइ। बिप्र-सराप असुर भए सोइ॥
एक बराह-रूप धरि मार्‌यौ। इक नरसिंह-रूप संहार्‌यौ॥
रावन-कुंभकरन सोइ भए। राम जनम तिनकैं हित लए॥
दसरथ नृपति अजोध्या-राव। ताकें गृह कियौ आविरभाव॥
नृप सौं ज्यौं सुकदेव सुनायौ। 'सूरदास' त्यौं ही कहि गायौ॥

निरन्तर श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये और श्रीहरिके चरण-कमलोंको हृदयमें धारण (चिन्तन) करना चाहिये। जय और विजय नामके (भगवान् विष्णुके) दो पार्षद (द्वारपाल) थे। ब्राह्मणों (सनकादि परमर्षियों) के शापसे वे ही असुर हो गये। उनमेंसे एक (हिरण्याक्ष) को भगवान्‌ने वाराहरूप धारण करके मारा और दूसरे (हिरण्यकशिपु) का संहार नृसिंहरूप धारण करके किया। वे ही दोनों (फिर) रावण और कुम्भकर्णके रूपमें उत्पन्न हुए। उनके उद्धारके लिये ही श्रीरामने अवतार धारण किया। अयोध्यानरेश महाराज दशरथके घर भगवान् श्रीरामका आविर्भाव (प्राकट्य) हुआ। राजा परीक्षित्‌को श्रीशुकदेवजीने जिस प्रकार यह प्रसङ्ग सुनाया, सूरदासने उसी प्रकार (श्रीमद्भागवतके अनुसार ही) वर्णन करके उसका गान किया है।

बालकाण्ड

जन्मोत्सव

राग कान्हरौ

[२]

रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर।
देस-देस तैं टीकौ आयौ, रतन-कनक-मनि-हीर॥
घर-घर मंगल होत बधाई, अति पुरबासिनि भीर।
आनँद-मगन भए सब डोलत, कछू न सोध सरीर॥
मागध-बंदी-सूत लुटाए, गो-गयंद हय-चीर।
देत असीस 'सूर', चिरजीवौ रामचंद्र रनधीर॥

श्रीरघुवीर रघुकुलमें प्रकट हुए हैं। (उनके जन्मोपलक्षमें) देश-देश (के अधीनस्थ माण्डलिक राजाओंके पास) से (महाराज दशरथके पास) भेंटके रूपमें स्वर्ण, मणियाँ तथा हीरे आदि नाना प्रकारके रत्न आये हैं। (अयोध्याके) प्रत्येक घरमें मङ्गलाचार एवं बधाई हो रही है। (राजभवनमें) नगरवासियोंकी बहुत बड़ी भीड़ हो रही है। सभी लोग आनन्दमग्न हुए घूम रहे हैं, उन्हें अपने शरीरकी भी कोई सुधि नहीं है। (महाराजने) मागध, बंदीजन और सूत आदि यशोगान करनेवालोंको गायें, हाथी, घोड़े और अनेक प्रकारके वस्त्र लुटाये हैं (जिसकी जो इच्छा हो, वह ले ले—ऐसी घोषणा कर दी है)। सूरदास भी आशीर्वाद देते हैं कि रणधीर श्रीरामचन्द्र चिरजीवी हों।

[३]

अजोध्या बाजति आजु बधाई।
गर्भ मुच्यौ कौसिल्या माता, रामचन्द्र निधि आई॥
गावैं सखी परसपर मंगल, रिषि अभिषेक कराई।
भीर भई दसरथ के आँगन, सामवेद-धुनि छाई॥

पूछत रिषिहिं अजोध्या कौ पति, कहियै जनम गुसाईं।
भौम बार, नौमी तिथि नीकी, चौदह भुवन बड़ाई॥
चारि पुत्र दसरथ कें उपजे, तिहूँ लोक ठकुराई।
सदा-सर्बदा राज राम कौ, 'सूर' दादि तहँ पाई॥

आज अयोध्यामें बधाईके मङ्गलवाद्य बज रहे हैं। माता कौसल्या-का गर्भकाल पूरा हो गया और उससे श्रीरामचन्द्ररूपी महान् निधि (पृथ्वीपर) आ गयी। सखियाँ परस्पर मिलकर मङ्गल-गान कर रही हैं। महर्षि वसिष्ठजीने (जातकर्म-संस्कारका) अभिषेक कराया। महा-राज दशरथके आँगनमें भीड़ हो रही है और (ब्राह्मणोंके मुखसे निकली हुई) सामवेदके गानकी ध्वनि (आकाशमें) छा गयी। अयोध्यानाथ महाराज दशरथ महर्षिसे पूछ रहे हैं—'हे स्वामी! (बालकका) जन्म-फल बतलाइये!' (महर्षिने कहा-) मङ्गलवारको पड़नेवाली नवमी तिथि बहुत उत्तम है; (इस मुहूर्तमें जन्म होनेके कारण) इनका बड़प्पन चौदहों भुवनोंमें व्याप्त होगा। महाराज दशरथके चार पुत्र (श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) उत्पन्न हुए, जिनका प्रभुत्व तीनों लोकोंपर स्थापित हो गया। (इनमें) श्रीराजा रामका राज्य तो सदा-सर्वदा है ही। सूरदासने भी वहींसे वाह-वाही प्राप्त की है।

[४]

आजु दसरथ कें आँगन भीर।
ये भू-भार उतारन कारन, प्रगटे स्याम-सरीर॥
फूले फिरत अजोध्या-बासी, गनत न त्यागत चीर।
परिरंभन हँसि देत परसपर, आनँद नैननि नीर॥
त्रिदस-नृपति, रिषि ब्यौम-बिमाननि देखत रह्यौ न धीर।
त्रिभुवन-नाथ दयालु दरस दै, हरी सबनि की पीर॥
देत दान राख्यौ न भूप कछु, महा बड़े नग हीर।
भए निहाल 'सूर' सब जाचक, जे जाँचे रघुबीर॥

आज महाराज दशरथके आँगनमें भीड़ हो रही है। (क्योंकि उनके यहाँ) पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये (नवजलधर-) श्यामवर्ण श्रीराम प्रकट हुए हैं। अयोध्यानिवासी आनन्दसे प्रफुल्लित हुए घूम रहे हैं, वे अपने (शरीरका) वस्त्रतक त्यागने (बाँटने) में कुछ भी परवा नहीं करते (वस्त्रोंतकको उन्हें आज अपेक्षा नहीं है)। वे आपसमें एक दूसरेको हँसते हुए हृदयसे लगाकर भेंटते हैं, उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु बह रहे हैं। देवताओंके राजा इन्द्र और ऋषिगण आकाशसे विमानोंमें बैठे (यह महोत्सव) देख रहे हैं, उनके चित्तमें भी धैर्य नहीं रहा है। त्रिभुवनके स्वामी दयालु प्रभुने दर्शन देकर सबकी मनोव्यथा हर ली। महाराज दशरथने दान देते समय महा-मूल्यवान् मणि एवं हीरे आदि कुछ भी शेष नहीं रखा (सब दान कर दिया)। सूरदासजी कहते हैं—जिन्होंने भी श्रीरघुवीरसे याचना की, वे सब याचक निहाल (सदाके लिये परितृप्त) हो गये।

शर-क्रीड़ा

राग बिलावल

[५]

करतल सोभित बान-धनुहियाँ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरें लाल पनहियाँ॥
दसरथ-कौसिल्या के आगें, लसत सुमनकी छहियाँ।
मानो चारि हंस सरवर तें बैठे आइ सदेहियाँ॥
रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि, प्रगटे भूतल महियाँ।
आए ओप दैन रघुकुल कौं, आनँद-निधि सब कहियाँ॥
यह सुख तीनि लोक मैं नाहीं, जो पाए प्रभु पहियाँ।
'सूरदास' हरि बोलि भक्त कौं, निरबाहत गहि बहियाँ॥

(अवधराजकुमारोंके) हाथोंमें छोटे-छोटे धनुष और बाण शोभित हो रहे हैं। (गोंमें) लाल-लाल जूतियाँ पहिने वे (महाराजके) स्वर्णमय आँगनमें खेलते हुए घूम रहे हैं। महाराज दशरथ तथा महारानी कौसल्याके

सामने पुष्पवृक्षकी छायामें चारों राजकुमार इस प्रकार शोभा दे रहे हैं मानो मानसरोवरसे निकलकर चार हंस सशरीर बैठ गये हैं। रघुकुल-रूपी कुमुदिनीके लिये चन्द्रमाके समान (हर्षदायक), चिन्तामणिस्वरूप (सबकी आशाओं-इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले) श्रीराम पृथ्वीपर प्रकट हुए हैं। वे सबके लिये आनन्दनिधि हैं और रघुकुलको शोभित करने पधारे हैं। जो सुख प्रभु श्रीरामसे (अवधवासियोंने) प्राप्त किया है, वह सुख तीनों लोकोंमें (कहीं) नहीं है। सूरदासजी कहते हैं—श्रीहरिका नाम लेनेवाले भक्तका हाथ पकड़कर वे निर्वाह (रक्षा) करते हैं।

[६]

धनुहीं-बान लए कर डोलत।
चारों बीर संग इक सोभित, बचन मनोहर बोलत॥
लछिमन, भरत, सत्रुहन सुंदर, राजिवलोचन राम।
अति सुकुमार, परम पुरुषारथ, मुक्ति-धर्म-धन-धाम॥
कटि-तट पीत पिछौरी बाँधें, काकपच्छ धरें सीस।
सर-क्रीड़ा दिन देखन आवत, नारद, सुर तैंतीस॥
सिव-मन-सकुच, इंद्र-मन आनँद, सुख-दुख बिधिहिसमान।
दिति दुर्बल अति, अदिति हृष्टचित, देखि 'सूर' संधान॥

चारों भाई एक साथ शोभित हो रहे हैं, वे बड़ी मनोहारिणी वाणी बोलते हैं और छोटे-छोटे धनुष-बाण हाथोंमें लिये घूम रहे हैं। श्रीलक्ष्मणलाल, कुमार भरत, परम सुन्दर शत्रुघ्न और कमलनयन श्रीराम—चारों ही अत्यन्त सुकुमार हैं; ये (स्वयं) परम पुरुषार्थ रूप तथा अर्थ, धर्म एवं मोक्षके भंडार हैं। कमरमें पीताम्बरकी पिछौरी (चद्दर) बाँधे, मस्तकपर अलकावली लहराते इन कुमारोंकी बाण-क्रीड़ा देखने देवर्षि नारद तथा तैंतीसों देवता आया करते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि इनका शर-संधान (लक्ष्यवेध) देखकर शंकरजीके मनमें संकोच होता है (कि उनके भक्त असुरोंको ये मारेंगे), देवराज इन्द्रके मनमें (अपने शत्रुओंके मारे

जानेकी आशासे) आनन्द होता है और ब्रह्माजीके (देवता-असुर दोनोंके पिता होनेसे) सुख-दुःख समानरूपसे होता है; दैत्यमाता दिति अत्यन्त दुर्बल हो रही हैं (क्योंकि उनकी संतानोंको ये मारेंगे) और देवमाता अदिति (अपने पुत्रोंकी विजय सोचकर) अपने चित्तमें हर्षित होती हैं।

विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षा

राग सारंग

[७]

दसरथ सौं रिषि आनि कह्यौ।
असुरनि सौं जग होन न पावत, राम-लषन तब संग दयौ॥
मारि ताड़का, यज्ञ करायौ, बिस्वामित्र अनंद भयौ।
सीय-स्वयंबर जानि 'सूर' प्रभु कौं लै रिषि ता ठौर गयौ॥

महाराज दशरथसे महर्षि विश्वामित्रने आकर कहा कि असुरोंके (उपद्रवके) मारे यज्ञ हो नहीं पाता; तब (महाराज दशरथने) श्रीराम और लक्ष्मणको उनके संग कर दिया। (श्रीरामने) राक्षसी ताड़का (तथा उसके दलके अन्य राक्षसों) को मारकर यज्ञ (निर्विघ्न) पूर्ण करा दिया, इससे महर्षि विश्वामित्रजीको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। सूरदासजी कहते हैं—(यज्ञ पूर्ण होनेके अनन्तर) सीताजीके स्वयंवरका समाचार पाकर महर्षि मेरे स्वामी श्रीरामको साथ लेकर उस स्थान (जनकपुर) को गये।

अहल्योद्धार

राग सारंग

[८]

गंगा-तट आए श्रीराम।
तहाँ पषान-रूप पग परसे, गोतम रिषि की बाम॥
गई अकास देव-तन धरि कै, अति सुंदर अभिराम।
'सूरदास' प्रभु पतित-उधारन-बिरद, कितौ यह काम!॥

(जनकपुरके मार्गमें जाते हुए) श्रीराम गङ्गाजीके किनारे आये। वहाँ उन्होंने गौतम ऋषिकी पत्नी (अहल्या) को, जो पत्थरके रूपमें थी, अपने चरणसे स्पर्श किया। (श्रीरामके चरणोंका स्पर्श होते ही) वह अत्यन्त सुन्दर मनोहारी देवस्वरूप धारण करके आकाशमें (देवलोकको) चली गयीं। सूरदासजी कहते हैं—प्रभु श्रीरामका तो सुयश ही पतितोद्धारक है, उनके लिये यह काम क्या महत्त्व रखता है।

जनकपुरमें

राग केदारौ

[९]

देखौ माई ! राम-लखन दोउ आवत।
मधुर चालि, दृग भले मनोहर, खंजन लोल कुरंग लजावत॥
कनक लता……विकट तरल मधि लोल पवन बिचलावत।
पिक सरोज कुंचित लोहित……निमिष………बुलावत॥
मृगमद तिलक…कर पंकज……………………………।
लेन सकल नवनलिन सुरसिहरति जिय पराग अलि तो कुल पावत
कबहुँक मिलत सहज ही अँकवति, निपट प्रीति बिलसावत।
किसलय-चारु बदन चितवत……नगन बिथा…………।
यद्यपि हुते दूर 'सूरज' प्रभु, तिय अंतर लपटावत॥

अरी माई ! (हे सखी !) देखो, राम-लक्ष्मण दोनों भाई (इधर) आ रहे हैं। इनकी चाल (गति) बहुत सुन्दर है और इनके नेत्र तो इतने सुन्दर एवं मनोहारी हैं कि खंजन तथा चञ्चल मृग (मृगके चञ्चल नेत्र) को भी लज्जित करते हैं। [शरीर] स्वर्णलताके समान [सुन्दर है।] मध्यभाग कटि अत्यन्त पतली है, जिसे चञ्चल पवन विचलित कर देता है। (इतने सुकुमार हैं कि वायु लगनेसे ही सूक्ष्म कटि हिल जाया करती है।) वाणी कोकिलके समान मधुर है, कमल [नेत्र] कुछ

लालिमा लिये तथा (नम्रतासे) झुके हैं और पलकें इस प्रकार गिरती हैं, मानो (देखनेवालोंको) पास बुला रहे हों। (ललाटपर) कस्तूरीका तिलक लगा है। [लाल-लाल] कमलदलके समान करोंमें [धनुष और बाण शोभित हो रहा है]। सभी देवता इस (श्रीराम-लक्ष्मणके) मुखरूपी नवविकसित कमलमुखका पराग लेनेके लिये अपने चित्तरूपी भ्रमरको उत्सुक रखते हैं (देवताओंका चित्त भी इस श्रीमुखकी शोभापर लुब्ध रहता है), वे अपने मनमें सदा उत्सुक रहते हैं कि इस मुखकमलका पराग पाकर हम अपने कुलको पवित्र कर लें। (इस प्रकार कामना तथा बातचीत करती हुई जनकपुरकी नारियाँ) कभी तो बड़ी सावधानीसे (मन-ही-मन श्रीरामसे) मिलती हैं और उन्हें अङ्कमाल देती हैं और (हृदयमें) अत्यन्त प्रेमोद्रेकको प्रकट करती हैं और कभी उनके नूतन पल्लवके समान सुन्दर मुखको देखती हुई (हृदयकी) खुली व्यथा (मिल न सकनेकी पीड़ा) से [अपनी सुध-बुध भी खो देती हैं]। सूरदासजी कहते हैं कि यद्यपि प्रभु श्रीराम दूर (मार्गपर) थे, किंतु (जनकपुरकी) स्त्रियाँ मन-ही-मन उन्हें हृदयसे लगा लेती थीं।

धनुष-भङ्ग

राग सारंग

[१०]

चितै रघुनाथ-बदन की ओर।
रघुपति सों अब नेम हमारौ, बिधि सों करति निहोर॥
यह अति दुसह पिनाक, पिता-प्रन, राघव-बयस किसोर।
इन पै दीरघ धनुष चढ़ै क्यौं, सखि! यह संसय मोर॥
सिय-अंदेस जानि 'सूरज' प्रभु लियौ करज की कोर।
टूटत धनु नृप लुके जहाँ-तहँ, ज्यौं तारागन भोर॥

(श्रीजानकी) श्रीरघुनाथके श्रीमुखकी ओर देखकर विधातासे निहोरा करती हैं कि हमारा नियम (विवाहका मेरा निश्चय) तो अब

श्रीरघुपतिसे ही है; (हे भाग्यविधाता ! तुम उसे पूरा करो !) यह पिनाक (शंकरजीका धनुष) और (इसे तोड़नेका) पिताका प्रण—ये दोनों दुःसह हैं (बड़ी कठिनाईसे धनुष किसीसे कदाचित् ही उठ सकता है) और श्रीराघव अभी किशोरावस्थाके (अत्यन्त सुकुमार) हैं; (फिर सखीसे कहती हैं—) हे सखी ! यह मुझे बड़ा संदेह है कि इनसे यह विशाल धनुष कैसे चढ़ाया जायगा । सूरदासजी कहते हैं—प्रभुने श्रीजानकीका यह असमंजस जान करके हाथके नखकी नोकपर धनुष उठा लिया (और चढ़ाकर तोड़ दिया)। धनुषके टूटते ही (स्वयंवरसभामें आये हुए) सब नरेश जहाँ-तहाँ इस प्रकार छिप गये, जैसे सबेरा होनेपर तारे छिप जाते है।

दशरथका जनकपुर-आगमन

राग सारंग

[११]

महाराज दसरथ तहँ आए।
बैठे जाइ जनक-मंदिर महँ, मोतिनि चौक पुराए॥
बिप्र लगे धुनि बेद उचारन, जुबतिनि मंगल गाए।
सुर-गँधर्ब-गन कोटिक आए, गगन बिमाननि छाए॥
राम-लखन अरु भरत-सत्रुहन-ब्याह निरखि सुख पाए।
'सूर' भयौ आनंद नृपति-मन, दिबि दुंदुभी बजाए॥

महाराज दशरथ वहाँ (जनकपुरमें बारात सजाकर) आये और महाराज जनकके राजभवनमें जाकर बैठे, जहाँ मोतियोंसे चौक पुराये (वैवाहिक मण्डल सजाये) गये थे। ब्राह्मणवृन्द वेदपाठ करने लगे और युवतियोंने मङ्गलगान प्रारम्भ किया। (श्रीराम-विवाह देखने) करोड़ों देवता और गन्धर्वोंके समूह आये, उनके विमानोंसे आकाश भर गया। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका विवाह देखकर उन्होंने अत्यन्त आनन्दका अनुभव किया। सूरदासजी कहते हैं कि महाराज दशरथके हृदयमें अत्यन्त आनन्द हुआ। देवतागण आकाशमें नगारे बजाने लगे।

कङ्कण-मोचन

राग आसावरी

[१२]

कर कंपै, कंकन नहिं छूटै ।
राम सिया-कर-परस मगन भए,कौतुक निरखि सखी सुख लूटैं ॥
गावत नारि गारि सब दै-दै, तात-भ्रात की कौन चलावै ।
तब कर-डोरि छुटै रघुपति जू,, जब कौसिल्या माता आवै ॥
पूँगीफल-जुत जल निरमल धरि, आनी भरि कुंडी जो कनक की ।
खेलत जूप सकल जुबतिनि मैं हारे रघुपति, जिती जनक की ॥
धरे निसान अजिर गृह मंगल, बिप्र बेद-अभिषेक करायौ ।
'सूर' अमित आनंद जनकपुर, सोइ सुकदेव पुरानिनि गायौ ॥

श्रीराम जनकनन्दिनी श्रीसीताजीके हाथका स्पर्श करके प्रेममग्न हो गये । (प्रेमाधिक्यके कारण) उनका हाथ काँपने लगा, इससे कङ्कण छूट नहीं पाता था; इस दृश्यको देखकर (श्रीजानकीकी) सखियाँ बहुत आनन्द प्राप्त कर रही थीं । सब (जनकपुरकी) स्त्रियाँ ताली बजा-बजाकर गाली गाने लगीं । (उन्होंने गायनमें ही कहा—) 'हे रघुपतिजी ! तुम्हारे पिता और भाइयोंकी क्या बिसात है; यह (श्रीजानकीके) हाथकी कङ्कण-डोरी तब खुलेगी, जब माता कौसल्या आयें ।' स्वर्णकी कुण्डी (जलपात्र) में सुपारी और फलके साथ निर्मल जल भरकर ले आकर (नारियोंने वर-वधूके सामने) रख दिया । जूप (वर-वधूका जुआ) युवतियोंके मध्यमें खेलते हुए श्रीरघुपति हार गये और श्रीजनकनन्दिनी जीत गयीं । भवनके आँगनमें मङ्गल-चिह्न रखे हुए थे, ब्राह्मणोंने वेद-पाठके साथ (वर-वधूद्वारा) उनका अभिषेक करवाया । सूरदासजी कहते हैं कि उस समय जनकपुरमें अपार आनन्द फैल रहा था. उसीका वर्णन श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवत पुराणमें किया है ।

धनुष-भङ्ग, पाणिग्रहण

राग नट

[१३]

ललित गति राजत अति रघुबीर ।
नरपति-सभा-मध्य मनौ ठाढ़े, जुगल हंस मतिधीर ॥
अलख अनंत अपरिमित महिमा, कटि-तट कसे तुनीर ।
कर धनु, काकपच्छ सिर सोभित, अंग-अंग दोउ बीर ॥
भूषन बिबिध बिसद अंबर जुत, सुंदर स्याम सरीर ।
देखत मुदित चरित्र सबै सुर, ब्यौम बिमाननि भीर ॥
प्रमुदित जनक निरखि मुख-अंबुज, प्रगट नैन मधि नीर ।
तात कठिन प्रन जानि जानकी, आनति नहिं उर धीर ॥
करुनामय जब चाप लियौ कर, बाँधि सुदृढ़ कटि-चीर ।
भूभृत-सीस नमित जो गर्वगत, पावक सींच्यौ नीर ॥
डोलत महि अधीर भयौ फनिपति, कूरम अति अकुलान ।
दिग्गज चलित, खलित मुनि-आसन, इंद्रादिक भय मान ॥
रबि मग तज्यौ, तरकि ताके हय, उत्पथ लागे जान ।
सिव-बिरंचि ब्याकुल भए धुनि सुनि, तब तोर्‌यौ भगवान ॥
भंजन-सब्द प्रगट अति अद्भुत, अष्ट दिसा नभ पूरि ।
स्रवन-हीन सुनि भए अष्टकुल नाग गरब भय चूरि ॥
इष्ट-सुरनि बोलत नर तिहि सुनि, दानव-सुर बड़ सूर ।
मोहित बिकल जानि जिय सबही, महाप्रलय कौ मूर ॥
पानि-ग्रहन रघुबर बर कीन्हौ, जनकसुता सुख दीन ।
जय-जय धुनि सुनि करत अमरगन, नर-नारी लवलीन ॥
दुष्टनि दुख, सुख संतनि दीन्हौ, नृप-ब्रत पूरन कीन ।
रामचंद्र-दसरथहि बिदा करि 'सूरदास' रस-भीन ॥

(धनुष-भङ्गसे लेकर पूरे विवाह-प्रसङ्गका फिर एक पदमें वर्णन

करते हुए) सूरदासजी कहते हैं—श्रीरघुवीर राम-लक्ष्मण अपनी सुन्दर चालके द्वारा अत्यन्त शोभा पा रहे थे, वे धीरबुद्धि राजाओंकी सभाके मध्यमें इस प्रकार खड़े हो गये, जैसे दो हंस खड़े हों। जो अलक्ष्य हैं, अनन्त हैं, जिनका माहात्म्य अपार है, वे ही कमरमें तरकस बाँधे हुए (आज राजसभामें साकार उपस्थित हैं)। दोनों भाइयोंके हाथमें धनुष है, मस्तकपर अलकें लहरा रही हैं, उनके सभी अङ्ग शोभामय हैं। अनेक प्रकारके आभूषण धारण किये हैं, और निर्मल सुहावना वस्त्र है। श्रीराम-का शरीर सुन्दर श्याम-वर्ण है। सभी देवता उनकी लीलाओंको देखकर आनन्दित हो रहे हैं, आकाशमें (उन देवताओंके) विमानोंकी भीड़ हो रही है। महाराज जनक (श्रीरामके) कमल-मुखको देखकर आनन्दमग्न हो गये और उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये। किंतु पिताके (धनुष-भङ्गकी) कठोर प्रतिज्ञाका स्मरण करके श्रीजानकीजी हृदयमें धैर्य नहीं ला पातीं (अधीर हो रही हैं)। (उनकी अवस्था समझकर) जब करुणामय श्रीरामने कटिमें दृढ़तापूर्वक पटुका बाँधकर धनुष उठा लिया, तब गर्वसे उठे राजाओंके मस्तक इस प्रकार झुक गये, जैसे जलसे सींचनेपर अग्निकी लपटें शान्त हो जाती हैं। पृथ्वी हिलने लगी, जिसके कारण शेषनाग अधीर हो उठे, कूर्मदेव (कच्छप भगवान्) अत्यन्त व्याकुल हो गये, दिग्गज अपने स्थानोंसे डगमगा उठे, मुनियोंके आसन शिथिल हो गये और इन्द्रादि देवता (कहीं प्रलय तो नहीं हो रही है, इस भयसे) भयभीत हो गये। भगवान् सूर्य मार्गसे हट गये, उनके घोड़े भड़ककर इधर-उधर ताकने लगे और मार्ग छोड़कर जाने लगे। उसकी टंकारको सुनकर शंकर और ब्रह्माजी भी व्याकुल हो गये। तब भगवान् श्रीरामने धनुष तोड़ दिया। धनुषके तोड़नेका अत्यन्त अद्भुत शब्द हुआ, वह आठों दिशाओं तथा आकाशमें पूर्ण हो गया। नागोंके आठों कुल उस महा-शब्दको सुनकर बहिरे हो गये, भयसे उनका गर्व चूर्ण हो गया। उस (धनुष टूटनेके शब्द) को सुनकर मनुष्य अपने-अपने इष्टदेवताओंको (रक्षाके लिये) पुकारने लगे। सभी बड़े-बड़े शूरवीर दानव और देवता भी मोहित होकर (भ्रममें पड़कर) चित्तमें (उस शब्दको) महाप्रलयका

मूल कारण समझकर व्याकुल हो गये। (धनुष-भङ्गके अनन्तर) श्रीरामने दुलहा बनकर श्रीजनकनन्दिनीका पाणिग्रहण करके उन्हें सुख प्रदान किया। यह सुनकर देववृन्द 'जय हो! जय हो!' यह घोष करने लगे। जनकपुरके सभी नर-नारी प्रेममग्न हो गये। (धनुष तोड़कर श्रीरामने) दुष्टोंको दुःख तथा सत्पुरुषोंको आनन्द दिया एवं महाराज जनककी प्रतिज्ञा पूर्ण कर दी। (विवाहके अनन्तर) प्रेमरससे भींगे महाराज जनकने श्रीरामचन्द्रजी एवं महाराज दशरथको (बारातके साथ) विदा किया।

दशरथ-विदा

राग सारंग

[१४]

दसरथ चले अवध आनंदत।
जनकराइ बहु दाइज दै करि, बार-बार पद बंदत॥
तनया जामातनि कौं समदत, नैन नीर भरि आए।
'सूरदास' दसरथ आनन्दित, चले निसान बजाए॥

महाराज दशरथ आनन्द मनाते हुए अयोध्याको चल पड़े। महाराज जनकने बहुत अधिक दहेज देकर बार-बार उनके चरणोंकी वन्दना की। पुत्रियों तथा जामाताओंसे प्रेमपूर्वक मिलते समय उनके नेत्रोंमें अश्रु भर आये। सूरदासजी कहते हैं कि बाजे बजवाते हुए महाराज दशरथ आनन्दपूर्वक अयोध्याको चल पड़े।

परशुराम मिलाप

राग सारंग

[१५]

परसुराम तेहिं औसर आए।
कठिन पिनाक कहौ किन तोर्‌यौ, क्रोधित बचन सुनाए॥
बिप्र जानि रघुबीर धीर दोउ हाथ जोरि सिर नायौ।
बहुत दिननि कौ हुतौ पुरातन, हाथ छुअत उठि आयौ॥

तुम तौ द्विज, कुल-पूज्य हमारे, हम-तुम कौन लराई।
क्रोधवंत कछु सुन्यौ नहीं, लियौ सायक-धनुष चढ़ाई॥
तबहूँ रघुपति कोप न कीन्हौ, धनुष न बान सँभार्यौ।
'सूरदास' प्रभु-रूप समुझि, बन परसुराम पग धार्यौ॥

उस समय* (महाराज दशरथके अयोध्या लौटते समय) परशुरामजी आये। उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा—'बताओ, (इस) कठोर पिनाक (शिवधनुष) को किसने तोड़ा ?' धैर्यशाली श्रीरघुवीरने उनको ब्राह्मण समझकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया (और बोले—) 'वह (धनुष) तो बहुत दिनोंका पुराना था, हाथसे छूते ही उठ गया (और टूट गया)। आप तो ब्राह्मण हैं, मेरे कुलके पूज्य हैं; मुझसे और आपसे भला क्या लड़ाई ?' किन्तु क्रोधके मारे परशुरामजीने कुछ सुना नहीं (श्रीरामकी नम्रतापर ध्यान नहीं दिया), धनुषपर बाण चढ़ा लिया, इतनेपर भी श्रीरघुपतिने क्रोध नहीं किया और न धनुष-बाण ही (प्रतीकारके लिये) सम्हाला। सूरदासजी कहते हैं—अन्तमें प्रभु श्रीरामके परमात्मस्वरूपको समझकर परशुरामजी वनमें (तपस्या करने) चले गये।

अवधपुरी-प्रवेश

राग सारंग

[१९]

अवधपुर आए दसरथ राइ।
राम, लषन अरु भरत, सत्रुहन, सोभित चारौ भाइ॥
घुरत निसान, मृदंग-संख-धुनि, भेरि-झाँझ-सहनाइ।
उमँगे लोग नगर के निरखत, अति सुख सबहिनि पाइ॥
कौसिल्या आदिक महतारी, आरति करहिं बनाइ।
यह सुख निरखि मुदित सुर-नर-मुनि, 'सूरदास' बलि जाइ॥

---

* वाल्मीकीय रामायणके अनुसार परशुरामजी महाराज दशरथको अयोध्या लौटते समय मार्गमें मिले हैं।

महाराज दशरथ अयोध्या आ गये । (उनके साथ) श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—चारों भाई शोभित हो रहे हैं। नगारे बज रहे हैं; मृदङ्ग, शङ्ख, दुन्दुभि, झाँझ एवं शहनाईकी मंगल-ध्वनि हो रही है । नगरके लोग उमंगके साथ (लौटी बारातको) देख रहे हैं, सभीको अत्यन्त सुख मिल रहा है । कौसल्यादि माताएँ सजाकर आरती कर रही हैं । यह सुख देखकर देवता, मनुष्य, मुनिगण—सभी आनन्दित हो रहे हैं । सूरदासजी इसी सुखपर न्योछावर हैं ।

अयोध्याकाण्ड

राम-वन-गमन

राग सारंग

[१७]

महाराज दसरथ मन धारी ।
अवधपुरी कौ राज राम दै, लीजै ब्रत बनचारी ॥
यह सुनि बोली नारि कैकई, अपनौ बचन सँभारौ ।
चौदह बर्ष रहैं बन राघव, छत्र भरत-सिर धारौ ॥
यह सुनि नृपति भयौ अति ब्याकुल, कहत कछू नहिं आई ।
'सूर' रहे समुझाइ बहुत, पै कैकइ-हठ नहिं जाई ॥

महाराज दशरथने मनमें निश्चय किया कि अयोध्याका राज्य श्रीरामको देकर अब वानप्रस्थ-आश्रमका व्रत लेना चाहिये । (उनका) यह (निश्चय) सुनकर रानी कैकेयीने कहा—(आपने मुझे जो दो वरदान देनेका वचन दिया है) अपने उस वचनका स्मरण कीजिये । श्रीराम चौदह वर्ष वनमें निवास करें और भरतके मस्तकपर छत्र रखिये (भरतको राज्य दीजिये) ।' (रानी कैकेयीकी) यह (बात) सुनकर महाराज अत्यन्त व्याकुल हो गये, उनसे कुछ भी कहते नहीं बना । सूरदासजी कहते हैं—महाराज अनेक प्रकारसे समझाकर थक गये; किंतु कैकेयीका हठ दूर नहीं हुआ ।

राग कान्हरौ

[१८]

महाराज दसरथ यौं सोचत ।
हा रघुनाथ, लछन, बैदेही! सुमिति नीर दृग मोचत ॥
त्रिया-चरित मतिमंत न समुझत, उठि प्रछालि मुख धोवत ।
अति बिपरीत रीति कछु औरै, बार-बार मुख जोवत ॥
परम कुबुद्धि कह्यौ नहिं समुझति, राम-लछन हँकराए ।
कौसिल्या सुनि परम दीन ह्वै, नैन नीर ढरकाए ॥
बिह्वल तन-मन, चकित भई सो, यह प्रतच्छ सुपनाए ।
गदगद-कंठ, 'सूर' कोसलपुर सोर, सुनत दुख पाए ॥

'हा रघुनाथ ! हा लक्ष्मण ! हा जानकी !' इस प्रकार महाराज दशरथ शोक करने लगे और बार-बार (श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीताजी-का) स्मरण करके नेत्रोंसे अश्रु बहाने लगे । बुद्धिमान् होकर भी वे नारीके चरित्रको समझ नहीं पाते, उठकर मुखपर पानी छिड़ककर उसे धोते हैं और बार-बार उसी (कैकेयी) का मुख देखते हैं (मनाने-का प्रयत्न करते हैं); किंतु वह अत्यन्त विरुद्ध हो रही है, उसका व्यवहार कुछ और ही (उपेक्षापूर्ण एवं कठोर) है । समझानेपर भी वह अत्यन्त दुर्बुद्धि समझती नहीं । (अन्तमें महाराजने) श्रीराम-लक्ष्मणको बुलवाया । (सब समाचार) सुनकर माता कौसल्या अत्यन्त दीन (दुखित) होकर नेत्रोंसे अश्रु ढुलकाने लगीं । उनका शरीर और मन दोनों विह्वल हो गये, आश्चर्यमें पड़कर वे यही नहीं समझ सकीं कि यह सब प्रत्यक्षमें हो रहा है या स्वप्न है; उनका कण्ठ गद्गद हो गया । सूरदासजी कहते हैं कि (इस बातका) कोलाहल अयोध्यामें हो गया और उसे सुनकर सभी दुखी हो गये ।

कैकेयी-वचन श्रीरामके प्रति

राग सारंग

[१९]

सकुचनि कहत नहीं महराज।
चौदह वर्ष तुम्हैं बन दीन्हौं, मम सुत कौं निज राज॥
पितु-आयसु सिर धरि रघुनायक, कौसिल्या ढिग आए।
सीस नाइ बन-आज्ञा माँगी, 'सूर' सुनत दुख पाए॥

(श्रीरामके वहाँ आ जानेपर उनसे कैकेयीने कहा—) 'महाराज तो संकोचके कारण कुछ कह नहीं रहे हैं; किंतु उन्होंने तुमको चौदह वर्षके लिये वनवास दिया है और मेरे पुत्र भरतको राज्य दिया है। पिताकी आज्ञा मस्तकपर धारण करके (सादर स्वीकार करके) श्रीरघुनाथजी माता कौसल्याके पास आये और मस्तक झुकाकर (प्रणाम करके) उनसे वनमें जानेकी आज्ञा माँगी। सूरदासजी कहते हैं कि यह सुनकर माताको बहुत दुःख हुआ।

दशरथ-विलाप

राग सारंग

[२०]

रघुनाथ पियारे, आजु रहौ (हो)।
चारि जाम बिस्राम हमारैं, छिन-छिन मीठे बचन कहौ (हो)॥
बृथा होहु बर बचन हमारौ, कैकइ जीव कलेस सहौ (हो)।
आतुर ह्वै अबछाँड़ि अवधपुर,प्रान-जिवन!कित चलन कहौ(हो)॥
बिछुरत प्रान पयान करैंगे, रहौ आजु, पुनि पंथ गहौ (हो)।
अबसूरजदिन दरसन दुरलभ, कलित कमल-कर कंठ गहौ (हो)॥

(मातासे विदा लेकर श्रीराम जब फिर महाराजके पास पहुँचे, तब महाराज रोते हुए कहने लगे—) प्यारे रघुनाथ! आज (भर) रह जाओ! मेरे पास (कम-से-कम) चार प्रहर ठहरे रहो और क्षण-क्षणमें

मधुर वचन बोलो (जानेकी बात मत कहो)। (कैकेयीको दिया) मेरा वररूपी वचन चाहे झूठा हो जाय और कैकेयी अपने हृदयमें क्लेश पाये। हे प्राणोंके भी जीवन-प्राण ! अब आतुर होकर (शीघ्रतामें आकर) अयोध्याका त्याग करके कहाँ चलनेकी बात कहते हो ? तुम्हारा वियोग होते ही मेरे प्राण भी प्रयाण करेंगे (देहसे निकल जायँगे); अतः (कम-से-कम) आज तो रह जाओ, फिर मार्ग पकड़ना (चले जाना)। सूरदासजी कहते हैं कि—अब आगेके दिनोंमें तो तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है ही; (इस समय तो गोदमें बैठ जाओ और (अपनी सुन्दर कमल-नालके समान भुजाओंसे मेरा गला पकड़ लो (गलेमें भुजाएँ डालकर एक बार मिल लो)।

श्रीराम-वचन जानकीके प्रति

राग गूजरी

[२१]

तुम जानकी ! जनकपुर जाहु।
कहा आनि हम संग भरमिहौ, गहबर बन दुख-सिंधु अथाहु ॥
तजि वह जनक-राज-भोजन-सुख, कततृन-तलप,बिपिन-फलखाहु
ग्रीषम कमल-बदन कुम्हिलैहै, तजि सर निकट दूरि कित न्हाहु ॥
जानि कछुप्रिया!सोच मनकरिहौ,मातु-पिता-परिजन-सुख-लाहु।
तुम घर रहौ सीख मेरी सुनि, नातरु बन बसि कै पछिताहु ॥
हौं पुनि मानि कर्म-कृत रेखा, करिहौं तात-बचन-निरबाहु।
'सूर' सत्य जो पतिब्रत राखौ, चलौ संग जनि, उतहीं जाहु ॥

(श्रीरामजीने श्रीजनकनन्दिनीसे कहा—) जानकी ! तुम जनकपुर (अपने पिताके घर) चली जाओ। मेरे साथ चलकर कहाँ भटकती फिरोगी, बहुत घने वन हैं और उनमें अथाह दुःखका समुद्र लहराता है। महाराज जनकके यहाँकी भोजनादि सभी सुख-सुविधाको छोड़कर (वनमें) तिनकोंकी शय्यापर सोने और जंगली (कटु-कषाय) फलोंको भोजन करनेका (तुम्हारे लिये) क्या प्रयोजन है। गर्मीके दिनोंमें

(धूप लगनेसे) तुम्हारा कमलमुख म्लान हो जायगा । (पिताके घररूपी) सरोवरको छोड़कर दूर (वनमें) स्नान करने (भटकने) क्यों जाती हो ? हे प्रिया ! तुम अपने मनमें कोई चिन्ता मत करना, (जनकपुर रहनेसे) माता-पिता तथा परिवारके लोगोंसे मिलनेवाले सुखका लाभ प्राप्त होगा (तुम सुखी रहोगी) । मेरी (यह) शिक्षा मानकर तुम घर रहो, नहीं तो बनमें निवास करके तुम्हें पश्चात्ताप करना पड़ेगा । मैं भी भाग्य-निर्मित लिपि (प्रारब्ध-भोग) का आदर करके पिताकी आज्ञाका निर्वाह (चौदह वर्षका वनवास) करूँगा । सूरदासजी कहते हैं—(श्रीरामने कहा) जो सचमुच (पूर्णतः) पातिव्रतकी रक्षा करनी है तो साथ मत चलो, वहीं (जनकपुर हो)जाओ ।

जानकी-वचन श्रीरामके प्रति

राग केदारौ

[२२]

ऐसौ जिय न धरौ रघुराइ ।
तुम-सौ प्रभु तजि मो-सी दासी, अनत न कहूँ समाइ ॥
तुम्हरौ रूप अनूप भानु ज्यौं, जब नैननि भरि देखौं ।
ता छिन हृदय-कमल प्रफुलित ह्वै, जनम सफल करि लेखौं ॥
तुम्हरे चरन-कमल सुख-सागर, यह ब्रत हौं प्रतिपलिहौं ।
'सूर' सकल सुख छाँड़ि आपनौ, बन-बिपदा सँग चलिहौं ॥

सूरदासजी कहते हैं (श्रीरामकी बात सुनकर श्रीजानकीजी बोलीं-) हे श्रीरघुनाथजो ! ऐसा विचार आप चित्तमें मत रखिये । आपके समान स्वामीको छोड़कर मेरी जैसी दासी और कहीं आश्रय नहीं ले सकती । आपके अनुपम सूर्यके समान स्वरूपको जब आँख भरकर देखती हूँ, उसी क्षण मेरा हृदयकमल खिल उठता है और अपना जन्म सफल समझती हूँ । (मेरे लिये तो) आपके चरणकमल ही सुखके समुद्र हैं । अतः मै इस व्रतका पालन करूँगी कि अपने सभी सुखोंको तिलाञ्जलि देकर वनकी विपत्तिमें आपके सङ्ग चलूँगी ।

श्रीराम एवं माताका संवाद

राग सारंग

[२३]

सुनि सुत स्याम राम कहाँ जैहौ ।
रहि चरननि लपटाय जननि दोउ, निरखि बदन पाछैं पछितैहौ ॥
कोमल कमल सुभग सुंदर पद तरनि-तेज ग्रीषम दुख पैहौ ।
जिन बिन छिन न बिहात बिलोकत, कैसैं चौदस बरस बितैहौ ॥
चंपक कुसुम बिसेष बरन तन, बिपति मानि तृन-सेज बिछैहौ ।
अति अनूप आनन रसना धरि कैसैं जठर मूल-फल खैहौ ॥
तजि मन मोह ईस-अभरन सजि, गिरि-कंदर जानकी बसैहौ ।
फाटत नहीं बज्र की छतिया, अब मोहि नाथ अनाथ कहैहौ ।
कहा अपराध किए कौसल्या, पुत्र-बिछोह दुसह दुख दैहौ ।
सूर-स्याम भुज गहें समझावत, तुम जननी मम कृतहि बटैहौ ॥

परम अभिराम पुत्र श्रीराम ! सुनो, तुम कहाँ जाओगे ? (इतना कहकर) दोनों माताएँ (कौसल्या-सुमित्रा) चरणोंसे लिपटी रह गयीं (और बोलीं) अब हमारा मुख देख लो (हमारे जीवनकी आशा नहीं है), अतः पीछे पश्चात्ताप करोगे (कि माताओंके भली प्रकार दर्शन नहीं कर सके) । तुम्हारे सुन्दर चरण कमलके समान कोमल तथा चमकीले हैं, (वनमें) गर्मीके दिनोंमें सूर्यकी (प्रचण्ड) धूपमें (जलती भूमिपर चलनेमें) कितना कष्ट पाओगे ? जिन (माताओं) को देखे बिना एक क्षण भी नहीं बीतने देते थे (सदा हमारे पास ही रहते थे) अब उनके बिना चौदह वर्ष कैसे बिताओगे ? हाय ! तुम्हारा शरीर तो चम्पाके फूलके-से वर्णका है और अब विपत्ति समझकर (वनमें)तिनकोंकी शय्या बिछाओगे (तिनकोंपर सोओगे) । इस अत्यन्त अनुपम मुखमें जिह्वापर रखकर (वनके कड़वे-कसैले) कन्द तथा फल कैसे खाओगे और वे तुम्हें कैसे पचेंगे ? मनका मोह (स्नेह) छोड़कर शंकरजीके लिये उचित आभूषण भस्मादिसे सजाकर

अब श्रीजनकनन्दिनीको पर्वतकी गुफामें बसाओगे ? हमारा यह हृदय वज्रका बना है जो अब भी नहीं फटता, हाय ! हम सबके स्वामी (पालक) होकर भी अब तुम अनाथ कहे जाओगे ! इस कौसल्याने क्या अपराध किया है जो इसे पुत्र-वियोगका दारुण दुःख दोगे ? सूरदासजी कहते हैं—(श्रीरामने) माताओंको हाथ पकड़कर समझाया कि माँ ! तुम मेरे कर्मफलको बँटा लोगी (तुम्हें मेरे दुर्भाग्यसे ही कष्ट मिला है, पर तुम्हारे इस कष्टसे मेरा भाग्य बँट जायगा और मुझे कम दुःख होगा, अतः धैर्य धारण करो)।

श्रीराम-वचन लक्ष्मणके प्रति

राग गूजरी

[२४]

तुम लछिमन ! निज पुरहि सिधारौ ।
बिछुरन- भेंट देहु लघु बंधू, जियत न जैहै सूल तुम्हारौ ॥
यह भावी कछु और काज है, को जो याकौ मेटनहारौ ।
याकौ कहा परेखौ-निरखौ, मधु छीलर, सरितापति खारौ ॥
तुम मति करौ अवज्ञा नृप की, यह दुख तौ आगे कौ भारौ ।
'सूर' सुमित्रा अंक दीजियौ, कौसिल्याहिं प्रनाम हमारौ ॥

सूरदासजी कहते हैं (माताओंसे विदा लेकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—) भाई लक्ष्मण ! तुम अपने नगरको लौट जाओ (अयोध्यामें ही रहो)। मेरे छोटे भाई ! अब पृथक् होते समय मुझे अङ्कमाल दो (एक बार हृदयसे लगकर मिल लो)। तुम्हारे वियोगकी पीड़ा जीते-जी दूर नहीं होगी। यही होनहार (भाग्य-विधान) था और कुछ दूसरा काम भी (इसमें निहित) है। ऐसा कौन (समर्थ) है जो इसको मिटा सके। इस भाग्य-विधानका दुःख या शोच क्या करना है (यह तो सदासे ही अटपटा है। देखो न,) छोटे गड्ढोंका जल मीठा होता है और अपार समुद्र खारा है (यह विधिका अटपटा विधान ही तो है)। अतः तुम

महाराज (पिता) का अपमान मत करो । (ऐसा करनेपर) यह दुःख तो आगेके लिये (मेरे वनवाससे भी) भारी हो जायगा । (मेरी ओरसे) माता सुमित्राको अङ्कमाल देना और माता कौसल्याको मेरा प्रणाम कहना ।

लक्ष्मणका उत्तर

राग सारंग

[२५]

लछिमन नैन नीर भरि आए।
उत्तर कहत कछू नहिं आयौ, रहे चरन लपटाए ॥
अंतरजामी प्रीति जानि कै, लछिमन लीन्हे साथ।
'सूरदास' रघुनाथ चले बन, पिता-बचन धरि माथ ॥

(श्रीरामकी यह बात सुनकर) श्रीलक्ष्मणजीके नेत्रोंमें आँसू भर आये । उनसे कोई उत्तर देते नहीं बन पड़ा, (बड़े भाईके) चरणोंमें (केवल) लिपट गये । अन्तर्यामी श्रीरामने (उनके) प्रेमको समझकर श्रीलक्ष्मणजीको साथ ले लिया । सूरदासजी कहते हैं—पिताकी आज्ञा सिरपर धारण करके (सादर स्वीकार करके) श्रीरघुनाथजी वनको चल पड़े ।

महाराज दशरथका पश्चात्ताप

राग कान्हरौ

[२६]

फिरि-फिरि नृपति चलावत बात ।
कहु री ! सुमति कहा तोहि पलटी, प्रान-जिवन कैसैं बन जात ॥
ह्वै बिरक्त, सिर जटा धरैं, द्रुम-चर्म, भस्म सब गात ।
हा हा राम, लछन अरु सीता, फल-भोजन जु डसावें पात ॥
बिन रथ चढ़, दुसह दुख मारग, बिन पद त्रान चलैं दोउ भ्रात ।
ईंहि बिधि सोचकरत अतिहीं नृप, जानकिओरनिरखिबिलखात ॥

इतनी सुनत सिमिट सब आए, प्रेम सहित धारे अँसुपात ।
ता दिन 'सूर' सहर सब चकित, सबर-सनेह तज्यौ पितु-मात ॥

महाराज दशरथ वार-वार रानी कैकेयीसे यही वात छेड़ते हैं—'अरी ! वता तो सही, तुम्हारी सुन्दर मति कैसे पलट गयी ? मेरे प्राणजीवन वनमें कैसे जा रहे हैं ? हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा जानकी ! विरक्त होकर इन्होंने मस्तकपर जटाएँ रख लीं, पेड़ोंकी छाल पहन ली, सारे शरीरमें भस्म लगा ली, फलोंका भोजन करते हैं और पत्ते विछाकर सोते हैं। (महाराजको शोकके कारण मानसिक रूपमें ही यह सब प्रत्यक्ष-सा दीख रहा है।) विना रथपर चढ़े असहनीय कष्टोंसे भरे मार्गमें दोनों भाई विना पैरोंमें जूते पहने (नंगे पैर) चले जा रहे हैं।' इस प्रकार महाराज अत्यन्त शोक करते हैं और श्रीजानकीजीकी ओर देखकर क्रन्दन करने लगते हैं। सूरदासजी कहते हैं—महाराजका यह विलाप सुनकर (राजसदनके) सब लोग वहाँ आकर एकत्र हो गये। प्रेमके कारण सबके आँसू वह रहे थे। सारा नगर उस दिन चकित (शोकविमोहित) हो रहा था—'माता-पिताने भी धैर्य और प्रेम छोड़ दिया ?' (लोग यही सोच रहे थे)।

राम-वन-गमन

राग नट

[२७]

आजु रघुनाथ पयानौ देत ।
बिह्वल भए स्रवन सुनि पुरजन, पुत्र-पिता कौ हेत ॥
ऊँचैं चढ़ि दसरथ लोचन भरि सुत-मुख देखे लेत ।
रामचंद्र-से पुत्र बिना मैं भूँजब क्यौं यह खेत ॥
देखत गमन नैन भरि आए, गात गह्यौ ज्यौं केत ।
तात-तात कहि बैन उचारत, ह्वै गए भूप अचेत ॥

कटि-तट तून, हाथ सायक-धनु, सीता-बंधु समेत ।
'सूर' गमन गह्वर कौ कीन्हौ जानत पिता अचेत ॥

आज श्रीरघुनाथ प्रस्थान कर रहे हैं, यह बात कानोंसे सुनकर और पिता-पुत्रका परस्पर प्रेम देखकर सभी नगरवासी बेसुध हो गये। महाराज दशरथ (राजभवनमें) ऊँचाईपर चढ़कर पुत्रका मुख (आज भली प्रकार अन्तिम बार) देख ले रहे हैं। (वे कहते हैं—) 'श्रीरामचन्द्र-जैसे पुत्रके बिना मैं इस राज्यका उपभोग क्योंकर करूँगा ?' श्रीरामको वन जाते देखकर उनके नेत्रोंमें जल भर आया और शरीर ऐसा विवर्ण हो गया जैसे चन्द्रमाको राहुने पकड़ लिया हो। 'बेटा ! बेटा !' कह-कर पुकारते हुए महाराज मूर्च्छित हो गये। सूरदासजी कहते हैं—कटिमें तरकस बाँधे, हाथोंमें धनुष-बाण लिये श्रीराम, सीताजी तथा छोटे भाई लक्ष्मणके साथ, यह जानते हुए भी कि पिता मूर्च्छित हो गये हैं (पिताके सत्यकी रक्षाके लिये) वनको चल पड़े।

लक्ष्मण-केवट-संवाद

राग मारू

[२८ [

लै भैया केवट ! उतराई ।
महाराज रघुपति इत ठाढ़े, तैं कत नाव दुराई ॥
अबहिं सिला तें भई देव-गति, जब पग-रेनु छिवाई ।
हौं कुटुंब काहैं प्रतिपारौं, वैसी मति ह्वै जाई ॥
जाकी चरन रेनु की महि मैं, सुनियत अधिक बड़ाई ।
'सूरदास' प्रभु अगनित महिमा, बेद-पुराननि गाई ॥

(शृङ्गवेरपुरमें श्रीलक्ष्मणजी केवटसे कह रहे हैं—) 'भैया केवट ! तू अपनी उतराई (गङ्गा पार करनेकी मजदूरी) पहले ही ले ले। यहाँ महाराज श्रीरघुनाथजी (पार होनेके लिये) खड़े हैं, तुमने नौका छिपा

क्यों दी ?' (यह सुनकर केवट कहता है—) 'जब इन्होंने अपने चरणोंकी धूलिका स्पर्श कराया, तब अभी-अभी (कुछ ही दिन पहले) तो एक पत्थरकी शिला देव-नारी बनकर देवगतिको प्राप्त हो गयी है, कहीं मेरी नौका भी वैसी न हो जाय। (वैसा होनेपर) मैं अपने कुटुम्बका पालन-पोषण किसके द्वारा करूँगा।' सूरदासजी कहते हैं—जिनकी चरणधूलिकी पृथ्वीमें (ऐसी) अपार बड़ाई सुनी जाती है, उन प्रभुकी महिमा तो अगणित है, वेद-पुराणोंने उनका गान किया है ?

केवट-विनय

राग कान्हरौ

[२९]

नौका हौं नाहीं लै आऊँ।
प्रगट प्रताप चरन कौ देखौं, ताहि कहाँ पुनि पाऊँ ॥
कृपासिंधु पै केवट आयौ कँपत करत सो बात।
चरन परसि पाषान उड़त है, कत बेरी उड़ि जात ॥
जो यह बधू होइ काहू की, दारु-स्वरूप धरै।
छूटै देह, जाइ सरिता तजि, पग सौं परस करै ॥
मेरी सकल जीविका यामैं, रघुपति मुक्त न कीजै।
'सूरजदास' चढ़ौ प्रभु पाछैं, रेनु पखारन दीजै ॥

कृपासिन्धु श्रीरामके पास केवट आया। वह बात करते हुए भी (भयसे) काँप रहा था। (उसने कहा—) 'मैं नौका नहीं ले आऊँगा। आपके चरणोंका प्रत्यक्ष प्रभाव मैंने देखा है; आपके चरणोंका स्पर्श पाकर तो पत्थर (स्त्री बनकर) उड़ जाता है, फिर बेरकी लकड़ीसे बनी नौकाको उड़ जानेमें क्या देर लगेगी ? अभी तो यह नौका लकड़ीके रूपमें है; किंतु यदि (आपके चरणोंके छू जानेसे) इसका यह रूप छूट जाय और गङ्गाजीको छोड़कर यह किसीकी स्त्री बनकर चली जाय तो फिर उसे मैं कहाँ पाऊँगा। मेरी तो सब आजीविका इस नौकासे ही है,

इसलिये हे रघुनाथजी ! इसे मुक्त मत कीजिये ।' सूरदासजी कहते हैं—(केवटने आग्रह किया) 'स्वामी नौकापर आप पीछे चढ़ियेगा, पहले अपने चरणोंकी धूलि मुझे धो लेने दीजिये ।'

राग रामकली

[३०]

मेरी नौका जनि चढ़ौ त्रिभुवनपति राई ।
मो देखत पाहन तरे, मेरी काठ की नाई ॥
मैं खेई ही पार कौं, तुम उलटि मँगाई ।
मेरौ जिय यौं ही डरै, मति होहि सिलाई ॥
मैं निरबल, बित-बल नहीं, जो और गढ़ाऊँ ।
मो कुटुंब याही लग्यौ, ऐसी कहँ पाऊँ ॥
मैं निरधन, कछु धन नहीं, परिवार घनेरौ ।
सेमर-ढाकहि काटि कै, बाँधौं तुम बेरौ ॥
बार-बार श्रीपति कहैं, धीवर नहिं मानै ।
मन प्रतीति नहिं आवई, उड़िबौ ही जानै ॥
नेरैं ही जलथाह है, चलौ, तुम्हैं बताऊँ ।
'सूरदास' की बीनती, नीकैं पहुँचाऊँ ॥

(केवट कहता है—) 'हे स्वामी ! हे त्रिभुवननाथ ! (कृपा करके) मेरी नौकापर मत चढ़िये । मेरे देखते-देखते (आपके चरणोंके स्पर्शसे) पत्थरकी मुक्ति हो गयी, मेरी नौका तो लकड़ीकी बनी है । मैंने तो उस पार ले जानेके लिये खेना प्रारम्भ किया था, आपने इसे लौटाकर यहाँ मँगवा लिया । कहीं उस शिलाकी-सी दशा इसकी भी न हो जाय, मेरा हृदय इसी बातसे भयभीत हो रहा है । मैं निर्बल हूँ (स्वयं दूसरी नौका गढ़ नहीं सकता); धनका बल भी मेरे पास नहीं जो (दूसरोंसे) दूसरी गढ़वा लूँ । मेरा कुटुम्ब इसीके आश्रित है (इसीपर कुटुम्बका निर्वाह

निर्भर है), ऐसी नौका मैं (फिरसे) कहाँ पाऊँगा ? मै निर्धन हूँ, मेरे पास धन नहीं (कि बैठे खा सकूँ) और परिवार बहुत बड़ा है। (आपको गङ्गापार ही तो होना है) सेमर और ढाकको डालियाँ काटकर आपके लिये एक बेड़ा बाँध दूँ (और उसपर बैठकर आप पार हो जायँ)।' श्रीराम बार-बार अनुरोध करते हैं, किंतु केवट उनकी बात मानता नहीं है। उसके मनमें विश्वास नहीं होता, वह तो (शिलाका) उड़ना ही जानता है (और उसी प्रकार नौका उड़ जायगी, यह शङ्का किये अड़ा है)।, सूरदासजी कहते हैं—उसने कहा—'प्रभो ! मेरी यह प्रार्थना है कि पास ही थाह मिलने (पैदल चलकर पार होने) योग्य जल है; आप मेरे साथ चलें, वह स्थान आपको बता दूँ और (स्वयं साथ चलकर) आपको भली प्रकार (पार) पहुँचा दूँ।'

पुरवधू-प्रश्न

राग रामकली

[३१]

सखी री ! कौन तिहारे जात।
राजिवनैन धनुष कर लीन्हे, बदन मनोहर गात॥
लज्जित होहिं पुरबधू पूछैं अंग-अंग मुसकात।
अति मृदु चरन पंथ बन-बिहरत, सुनियत अद्भुत बात॥
सुंदर तन, सुकुमार दोउ जन, सूर-किरिन कुम्हिलात।
देखि मनोहर तीनौं मूरति, त्रिबिध-ताप जन जात॥

(वनके मार्गमें) ग्रामीण नारियाँ पूछनेमें लज्जित होती हुई (संकोचके साथ) पूछती हैं, (पूछते समय) उनका अङ्ग-अङ्ग मुसकरा रहा है (प्रत्येक अङ्ग-भङ्गीसे) लज्जा एवं आनन्द व्यक्त हो रहा है। वे श्रीजानकीजीसे पूछती हैं—) हे सखी ! ये (मार्गमें) चलते हुए (दोनों कुमार) तुम्हारे कौन लगते हैं ? इनके नेत्र कमलके समान (सुन्दर) हैं, बड़ा ही मनोहारी मुख और शरीर है, हाथोंमें धनुष लिये हुए हैं।

यह बहुत अद्भुत बात सुनी (देखी) जा रही है कि ये अत्यन्त कोमल चरणोंसे वनके मार्गमें घूम रहे हैं। (बड़ा) सुन्दर शरीर है, दोनों ही कुमार इतने सुकुमार हैं कि सूर्यकी किरणोंके लगनेसे ही कुम्हिला जाते हैं। सूरदासजी कहते हैं—(श्रीराम, लक्ष्मण और जानकीजी—) इन तीनों मनोहर मूर्तियोंको देखनेसे शरीरके तीनों (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक) संताप दूर हो जाते हैं।

राग गौरी

[३२]

अरी अरी सुंदरि नारि सुहागिनि, लागैं तेरे पाउँ।
किहिं घाँ के तुम बीर बटाऊ, कौन तुम्हारौ गाउँ॥
उत्तर दिसि हम नगर अजोध्या, है सरजू के तीर।
बढ़ कुल बड़े भूप दसरथ सखि, बड़ौ नगर गंभीर॥
कौनैं गुन बन चली बधू तुम, कहि मोसौं सति भाउ।
वह घर-द्वार छाँड़ि कै सुंदरि, चली पियादे पाँउ॥
सासु की सौति सुहागिनि सो सखि, अतिहिं पीय की प्यारी।
अपने सुत कौं राज दिवायौ, हम कौं देस निकारी॥
यह विपरीति सुनि जब सबहीं, नैननि ढारयौ नीर।
आजु सखी चलु भवन हमारे, सहित दोउ रघुबीर॥
बरष चतुरदस भवन न बसिहैं, आज्ञा दीन्ही राइ।
उन के बचन सत्य करि सजनी, बहुरि मिलैंगे आइ॥
बिनती बिहँसि सरस मुख सुंदरि, सिय सौं पूछी गाथ।
कौन बरन तुम देवर सखि री, कौन तिहारौ नाथ॥
कटि-तट पट पीतांबर काछे, धारे धनु-तूनीर।
गौर-बरन मेरे देवर सखि, पिय मम स्याम-सरीर॥
तीनि जने सोभा त्रिलोक की, छाँड़ि सकल पुर-धाम।
'सूरदास' प्रभु-रूप चकित भए, पंथ चलत नर-बाम॥

(भोली ग्राम-नारियोंने श्रीजानकीजीको सम्बोधित करके पूछा—) 'हे सौभाग्यवती सुन्दरी नारी ! हम (सब) तुम्हारे पैर पड़ती हैं (कृपा करके यह बता दो—) तुम और ये वीर (तुम्हारे साथके दोनों) यात्री किस ओरके हैं ? तुम्हारा कौन-सा गाँव है ?' (श्रीजानकीजीने उत्तर दिया—) 'सखियो ! यहाँसे उत्तर दिशामें सरयू-किनारे हमारा नगर अयोध्या है । (वह कोई गाँव नहीं है) वहाँ बहुत अधिक लोग रहते हैं, वहाँके महाराज दशरथ सबसे बड़े राजा हैं, वह बहुत बड़ा और घनी बस्तीका नगर है ।' (यह सुनकर ग्राम्य नारियोंने फिर पूछा—) 'बहू ! हमें सच्चे भावसे बता दो कि किस गुण (दोष) के कारण तुम वनमें जा रही हो ? हे सुन्दरी ! (अपने ऐसे बड़े नगरका) वह घर-द्वार छोड़कर तुम पैदल क्यों जा रही हो ?' (श्रीजानकीजीने कहा—) 'सखियो ! मेरी सासकी सौभाग्यवती सौत अपने पति (मेरे श्वशुर) की अत्यन्त प्यारी हैं । उन्होंने अपने पुत्रको राज्य दिलवाया और हमलोगोंको देश-निकाला ।' जब यह उलटी (दुःखपूर्ण) बात सबने सुनी, तब वे आँखोंसे आँसू बहाने लगीं (और आग्रहपूर्वक बोलीं—) 'हे सखी ! दोनों रघुवीर कुमारोंके साथ आज हमारे घर चलो ।' (श्रीजानकीजीने कहा—) 'महाराजने चौदह वर्ष वनमें रहनेकी आज्ञा दी है, अतः (इस अवधिमें) हम किसीके घर नहीं रह सकते । सखियो ! उन 'महाराज' के वचनोंको सत्य करके लौटकर फिर तुमसे मिलूँगी ।' सुन्दरी ग्राम-नारियोंने हँसकर प्रेमपूर्वक प्रार्थनाके स्वरमें श्रीजानकीजीसे यह बात पूछी— 'सखी ! तुम्हारे देवर किस वर्णके हैं और तुम्हारे स्वामी कौन हैं ?' (श्रीजानकीजीने बताया—) 'सखियो ! ये जो दोनों भाई कमरमें पीताम्बर पहने, धनुष, और तरकस लिये हैं, उनमें गौर वर्णवाले मेरे देवर हैं और श्याम अङ्गवाले मेरे पतिदेव हैं ।' सूरदासजी कहते हैं— ये तीनों ही पथिक त्रिलोकीकी शोभा हैं, (आज) ये अपने नगर एवं भवनादि सभी ऐश्वर्योंका त्याग करके (वनके) मार्गमें चल रहे हैं । पथके सभी नर-नारी प्रभुके परम सुन्दर रूपको देखकर चकित हो रहे हैं ।

राग धनाश्री

[३३]

कहि धौं सखी ! बटाऊ को हैं ।
अद्भुत बधू लिए सँग डोलत, देखत त्रिभुवन मोहैं ॥
परम सुसील सुलच्छन जोरी, बिधि की रची न होइ ।
काकी तिन कौं उपमा दीजै' देह धरे धौं कोइ ॥
इन मैं को पति आहि तिहारे, पुरजनि पूछे धाइ ।
राजिवनैन मैन की मूरति, सैननि दियौ बताइ ॥
गईं सकल मिलि संग दूरि लौं, मन न फिरत पुर-बास ।
'सूरदास' स्वामी के बिछुरत, भरि-भरि लेति उसास ॥

(ग्रामके लोग दौड़कर पास जाते हैं और ग्राम-नारियाँ श्रीजानकीजीसे पूछती हैं—) 'हे सखी ! बताओ तो, ये यात्री कौन हैं ? (तुम्हारी-जैसी) अद्भुत (सुन्दरी) बहूको साथ लिये घूम रहे हैं । ये (अपने) दर्शनसे त्रिभुवनको मोहे लेते हैं । यह परम सुशील एवं सुन्दर लक्षणोंवाली जोड़ी ब्रह्माजीकी रची हुई नहीं हो सकती । इनको किसकी उपमा दी जाय, ये तो शरीर धारण किये हुए न जाने कौन हैं । इनमें तुम्हारे पतिदेव कौन हैं ?' (श्रीजानकीजीने) संकेतसे कमललोचन मूर्तिमान कामदेवके समान श्रीरामको बता दिया । सूरदासजी कहते हैं—वे सब (ग्रामनारियाँ) एकत्र होकर दूरतक साथ गयीं । अपने ग्राम एवं घरोंको लौटनेका उनका मन नहीं होता था । त्रिभुवननाथ श्रीरामके अलग होनेपर वे बार-बार दीर्घ श्वास लेने लगीं ।

दशरथ-तन-त्याग

राग धनाश्री

[३४]

तात-बचन रघुनाथ माथ धरि, जब बन गौन कियौ ।
मंत्री गयौ फिरावन रथ लै, रघुबर फेरि दियौ ॥

भुजा छुड़ाइ, तोरि तृन ज्यों हित, कियौ प्रभु निठुर हियौ ।
यह सुनि भूप तुरत तनु त्याग्यौ, बिछुरन-ताप-तयौ ॥
सुरति-साल-ज्वाला उर अंतर, ज्यौं पावकहि पियौ ।
इहिं बिधि बिकल सकल पुरबासी, नाहिन चहत जियौ ॥
पसु-पंछी तृन-कन त्याग्यौ, अरु बालक पियौ न पयौ ।
'सूरदास' रघुपति के बिछुरैं, मिथ्या जनम भयौ ॥

पिताकी आज्ञा सिरपर चढ़ाकर जब श्रीरघुनाथ वनके लिये चल पड़े, तब मन्त्री सुमन्त्र रथ लेकर उन्हें लौटा लाने गये; किंतु श्रीरघुवीरने उन्हें (अयोध्या) लौटा दिया । (लौटकर सुमन्त्रने महाराजसे कहा—) 'प्रभु (श्रीराम) ने तो अपना हृदय निष्ठुर बना लिया (मेरी कोई प्रार्थना स्वीकार नहीं की); प्रेमको तिनकेके समान तोड़कर, हाथ छुड़ाकर वे चले गये ।' यह सुनते ही वियोगके संतापसे तप्त शरीरको महाराजने तुरंत छोड़ दिया (उनका परलोकवास हो गया) और अयोध्याके सभी निवासी ऐसे व्याकुल हो गये जैसे उन्होंने अग्नि-पान कर लिया हो और वही हृदयमें श्रीरामके स्मरणकी वेदनाके रूपमें अपनी लपटोंसे हृदयको जला रहा हो; कोई भी (नागरिक) जीवित रहना नहीं चाहता था । पशुओंने घास चरना छोड़ दिया, पक्षियोंने दाने चुगने त्याग दिये, शिशुओंतकने दूध नहीं पिया । सूरदासजी कहते हैं—श्रीरघुपतिका वियोग होनेसे यह जीवन ही व्यर्थ हो गया ।

[३५]

राजा तेल-द्रोनि में डारे ।
सात दिवस मारग में बीते, देखे भरत पिआरे ॥
जाइ निकट हिय लाइ दोउ सिसु, नैन उमँग जलधारे ।
कुसलछेम पूँछत कौसिल्या राजा कुसल तिहारे ॥
कुसल राम लछमन बैदेही, ते हैं प्रान हमारे ।
कुसलछेम अवध के पुरजन दासि-दास प्रतिहारे ॥

कुसल राम लछमन बैदेही, तुम हित काज हँकारे।
'सूर' सुमंत ज्ञानि ज्ञानाद्भुत महिमा समय बिचारे॥

महाराज दशरथका शरीर तेलसे भरी नौकामें रख दिया गया। (ननिहालसे आनेमें) मार्गमें ही सात दिन बीत गये, तब (माता कौसल्या-ने) प्यारे भरतको (अयोध्या आनेपर) देखा। माता कौसल्या पास गयीं और उन्होंने दोनों बालकों (भरत-शत्रुघ्न) को हृदयसे लगा लिया, उनके नेत्रोंसे आँसूकी धारा उमड़ पड़ी। माता कौसल्यासे भरतजी कुशलमङ्गल पूछने लगे—'आपके महाराज (हमारे पिता) कुशलपूर्वक तो हैं? श्रीराम, लक्ष्मण और जानकीजी कुशलसे हैं? वे तो हमारे प्राण ही हैं। अयोध्याके नगरवासी, दास-दासियाँ और रक्षकलोग तो कुशलसे हैं?' (माता! आप रो क्यों रही हैं?) सूरदासजी कहते हैं— (माता कौसल्याने इतना ही कहा—) 'श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी कुशलपूर्वक हैं। मन्त्री सुमन्त्र ज्ञानी हैं, उनके ज्ञानकी महिमा अद्भुत है, समयका विचार करके तुम्हारे भलेके लिये ही उन्होंने तुम (दोनों भाइयों) को बुलाया है।' (तात्पर्य यह कि अब तुम मन्त्रीकी सम्मतिके अनुसार कार्य करना।)

कौसल्या विलाप, भरत-आगमन

राग गूजरी

[३६]

रामहि राखौ कोऊ जाइ।
जब लगि भरत अजोध्या आवैं, कहति कौसिला माइ॥
पठवौ दूत भरत कौं ल्यावन, बचन कह्यौ बिलखाइ।
दसरथ-बचन राम बन गवने, यह कहियौ अरथाइ॥
आए भरत, दीन ह्वै बोले, कहा कियौ कैकइ माइ।
हम सेवक, वे त्रिभुवनपति, कत स्वान सिंह-बलि खाइ॥
आजु अजोध्या जल नहिं अँचवौं, मुख नहिं देखौं माइ।
सूरदास राघव-बिछुरन तैं, मरन भलौ दव लाइ॥

(महाराज दशरथका शरीर छूट जानेपर) माता कौसल्या कहने लगीं—'जबतक भरतलाल अजोध्या आ जायँ, तबतकके लिये कोई जाकर श्रीरामको रोक लो ।' विलाप करते हुए माताने कहा—'भरतको ले आनेके लिये दूत भेजो ! यह समझाकर कह देना कि महाराज दशरथकी आज्ञासे श्रीराम वनको चले गये ।' (समाचार पाकर) श्रीभरतजी अयोध्या आ गये और (माता कौसल्यासे) दीन होकर (बड़ी करुणासे) बोले—'माता कैकेयीने यह क्या किया ? हम (दोनों भाई) तो सेवक हैं और वे (श्रीरघुनाथजी) त्रिभुवनके स्वामी हैं । भला, कुत्ता सिंहका उपहार कैसे खा सकता है ? (मैं श्रीरघुनाथके राज्यका उपभोग कैसे कर सकता हूँ ?)' सूरदासजी कहते हैं—(श्रीभरतजीने प्रतिज्ञा की) आज अयोध्यामें जलका आचमनतक नहीं करूँगा और न माता कैकेयीका मुख देखूँगा । श्रीरघुनाथजीके वियोगकी अपेक्षा तो अग्नि जलाकर (चितामें जलकर) मर जाना भला है ।'

भरत-वचन माताके प्रति

राग केदारौ

[३७]

तै कैकई कुमंत्र कियौ ।
अपने कर करि काल हँकार्‌यौ, हठ करि नृप-अपराध लियौ ॥
श्रीपति चलत रह्यौ कहि कैसैं, तेरौ पाहन-कठिन हियौ ।
मो अपराधी के हित कारन, तैं रामहि बनबास दियौ ॥
कौन काज यह राज हमारैं, इहिं पावक परि कौन जियौ ।
लोटे 'सूर' धरनि दोउ बंधू, मनो तपत बिष बिषम पियौ ॥

(भरतजी कैकेयी मातासे कहते हैं—) 'कैकेयी ! तूने बहुत बुरा विचार किया, अपने हाथसे तूने कालरूपी हाथीको बुलवाया और दुराग्रह करके महाराजकी मृत्युका पाप अपने सिर लिया । बता तो ! श्रीरामके (वन) जाते समय तेरा पत्थरके समान कठोर हृदय (फट नहीं गया ?) बचा कैसे रहा ? मुझ पापीके प्रेमके कारण तूने श्रीरामको

वनवास दे दिया ? यह राज्य मेरे किस काम आयेगा ? इस (राज्य-लोभरूपी) अग्निमें पड़कर कौन जीवित रह सका है ?' सूरदासजी कहते हैं--दोनों भाई इस प्रकार भूमिमें पड़कर तड़पने लगे, जैसे भयानक विष पी लिया हो और उसकी ज्वालासे दग्ध हो रहे हों।

राग सोरठ

[३८]

राम जू कहाँ गए री माता ?
सूनौ भवन, सिंहासन सूनौ, नाहीं दसरथ ताता ॥
धृग तव जन्म, जियन धृग तेरौ, कही कपट-मुख बाता ।
सेवक राज, नाथ बन पठए, यह कब लिखी बिधाता ॥
मुख-अरबिंद देखि हम जीवत, ज्यौं चकोर ससि राता ।
'सूरदास' श्रीरामचंद्र बिनु कहा अजोध्या नाता ॥

सूरदासजी कहते हैं--(श्रीभरतजीने फिर कैकेयी मातासे कहा--) 'अरी माता ! श्रीरामजी कहाँ गये ? यह राजभवन सुनसान हो गया, राजसिंहासन सूना हो गया, पिता महाराज दशरथ भी नहीं रहे (यह सब तूने क्या किया) ! तेरे जन्मको धिक्कार है ! तेरे जीवित रहनेको धिक्कार है ! जो तूने (अपने) कपट भरे मुखसे ऐसी बात कही। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने (भी) ऐसा विधान कब लिखा है कि सेवकके लिये तूने राज्य माँगा और स्वामीको वनमें भेज दिया ? जैसे चकोर चन्द्रमासे अनुराग करता है, वैसे ही जिनका मुख-कमल देखकर हम जीवित रहते हैं, उन श्रीरामके बिना अयोध्यासे हमारा क्या सम्बन्ध !'

महाराज दशरथकी अन्त्येष्टि

राग कान्हरौ

[३९]

गुरु बसिष्ठ भरतहि समुझायौ ।
राजा कौ परलोक सँवारौ, जुग-जुग यह चलि आयौ ॥

चंदन अगर सुगंध और घृत, विधि करि चिता बनायौ।
चले बिमान संग गुरु-पुरजन, तापर नृप पौढ़ायौ॥
भस्म अंत तिल-अंजलि दीन्हीं, देव बिमान चढ़ायौ।
दिन दस लौं जलकुंभ साजि सुचि, दीप-दान करवायौ॥
जानि एकादस बिप्र बुलाए, भोजन बहुत करायौ।
दीन्हौं दान बहुत नाना बिधि, इहिं बिधि कर्म पुजायौ॥
सब करतूति कैकई के सिर, जिन यह दुख उपजायौ।
इहिं बिधि 'सूर' अयोध्या-बासी, दिन-दिन काल गँवायौ॥

गुरु वसिष्ठजीने भरतजीको समझाया—('जीवन-मरणका यह क्रम) युग-युगसे (अनादिकालसे) चला आ रहा है, (अतः शोक छोड़कर) अब महाराजके परलोकको सुधारो (उनका अन्त्येष्टि-संस्कार करो ।)' (गुरुकी आज्ञा मानकर भरतजीने) चन्दन, अगुरु आदि सुगन्धित काष्ठोंसे विधिपूर्वक चिता बनवायी और घृतादि पदार्थ उसमें डाले। महाराजके विमान (शव-यात्रा) के साथ गुरु वसिष्ठ और सभी नगरवासी चले तथा उस चितापर महाराजके शरीरको सुला दिया। शरीरके भस्म हो जानेपर सबने तिलांजलि दी। महाराजको तो देवता विमानमें बैठाकर देवलोक ले गये। (भरतजीने) दस दिनतक जलभरा घड़ा सजाया (घट-बन्धन कर्म पूरा किया) और वहाँ दीप-दान करते रहे। एकादशाहके दिनको समझकर (शास्त्रानुसार उसका निश्चय करके) उस दिन ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया और उन्हें नाना प्रकारके भोजनोंसे तृप्त किया। अनेक प्रकारके दान उन्हें दिये। इस प्रकार अन्त्येष्टि-कर्म सम्पूर्ण किया। सूरदासजी कहते हैं—इन सब दुःखोंका दोष कैकेयीके सिर गया; जिन्होंने उस दुःखको उत्पन्न किया था। इस प्रकार अयोध्यावासियोंने किसी प्रकार एक-एक दिन गिनकर इतना समय व्यतीत किया।

भरतका चित्रकूट-गमन

राग सारंग

[४०]

राम पै भरत चले अतुराइ।
मनहीं मन सोचत मारग मैं, दई ! फिरैं क्यों राघवराइ॥
देखि दरस चरननि लपटाने, गद्गद कंठ न कछु कहि जाइ।
लीनो हृदय लगाइ 'सूर' प्रभु पूछत भद्र भए क्यौं भाइ ?॥

(पिताका अन्त्येष्टि-कर्म पूरा हो जानेपर) श्रीभरतलाल बड़ी आतुरतापूर्वक श्रीरामके पास चले। मार्गमें मन-ही-मन वे यही चिन्ता कर रहे थे— 'हे विधाता ! श्रीराघवेन्द्र कैसे लौटें ?' (चित्रकूट पहुँचकर, दर्शन करके श्रीरामके चरणोंमें लिपट गये, उनका कण्ठ गद्गद हो रहा था और वे कुछ बोल नहीं पाते थे। सूरदासजी कहते हैं—प्रभुने भाईको हृदयसे लगा लिया और पूछने लगे—'भैया ! तुमने सिर क्यों मुँडवा लिया ?'

राग केदारौ

[४१]

भ्रात-मुख निरखि राम बिलखाने।
मुंडित केस सीस, बिहबल दोउ, उमँगि कंठ लपटाने॥
तात-मरन सुनि स्रवन कृपानिधि धरनि परे मुरझाइ।
मोह-मगन, लोचन जल-धारा, बिपति न हृदय समाइ॥
लोटति धरनि परी सुनि सीता, समुझति नहिं समुझाई।
दारुन दुख दवारि ज्यौं तृन-बन, नाहिंन बुझति बुझाई॥
दुरलभ भयौ दरस दसरथ कौ, सो अपराध हमारे।
'सूरदास' स्वामी करुनामय, नैन न जात उघारे॥

भाई (भरतजी) का मुख देखकर श्रीराम रुदन करने लगे। दोनों भाइयोंके मस्तकके केश मुण्डित हो चुके थे, वे अत्यन्त व्याकुल होकर आतुरतापूर्वक श्रीरामके गले लिपट गये थे। कृपानिधान श्रीरामने जैसे ही पिताकी मृत्यु कानोंसे सुनी, वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। शोकमें मग्न होकर नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाने लगे, पीड़ा हृदयमें समा नहीं रही थी। श्रीजानकीजी यह समाचार सुनकर (व्याकुल होकर) पृथ्वीपर पछाड़ें खाने लगीं, समझानेसे भी समझती नहीं थीं (उन्हें धैर्य नहीं होता था)। जैसे तृणोंके (कास या मूँजके) वनमें दावाग्नि लग जाय और बुझानेपर भी न बुझे, ऐसा ही दारुण दुःख यह आया। सूरदासजी कहते हैं—करुणामय प्रभुसे नेत्र भी खोले नहीं जाते थे। वे यही सोच रहे थे कि महाराज दशरथका दर्शन अब दुर्लभ हो गया और वह मेरे ही दोषसे।

श्रीराम-भरत-संवाद

राग केदारौ

[४२]

तुमहि बिमुख रघुनाथ, कौन बिधि जीवन कहा बनै।
चरन-सरोज बिना अवलोके, को सुख धरनि गनै॥
हठ करि रहे, चरन नहिं छाँड़े, नाथ तजौ निठुराई।
परम दुखी कौसल्या जननी, चलौ सदन रघुराई॥
चौदह बरष तात की आज्ञा, मोपै मेटि न जाई।
'सूर' स्वामि की पाँवर सिर धरि, भरत चले बिलखाई॥

(श्रीभरतजी बोले)—'श्रीरघुनाथजी! आपसे विमुख होकर किस प्रकार जीवित रहा जा सकता है, आपके चरणकमलोंको देखे बिना इस पृथ्वीके सुखोंको भला, कौन परवा करेगा!' (यह कहकर) आग्रहपूर्वक चरणोंको पकड़े रहे, उन्हें छोड़ा नहीं (और प्रार्थना करने लगे—) 'स्वामी! अब निष्ठुरता छोड़ दो! माता कौसल्या अत्यन्त दुखी हो

रही हैं, अतः श्रीरघुनाथजी ! अब आप घर लौट चलें ।' (यह सुनकर श्रीरामजीने कहा)—'पिताकी आज्ञा चौदह वर्ष वनमें रहनेकी है, वह मुझसे तोड़ी नहीं जाती ।' सूरदासजी कहते हैं—(विवश होकर) विलाप करते हुए भरतजी स्वामी (श्रीराम) की चरणपादुका मस्तकपर रखकर (अयोध्या) लौट चले ।

रामोपदेश भरतके प्रति

राग मारू

[४३]

बंधू , करियो राज सँभारैं।
राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ-बिप्र प्रतिपारैं ।।
कौसल्या-कैकई-सुमित्रा-दरसन साँझ-सवारैं ।
गुरु बसिष्ठ और मिलि सुमंत सौं, परजा-हेतु बिचारैं ।।
भरत-गात सीतल ह्वै आयौ, नैन उमँगि जल ढारे ।
'सूरदास' प्रभु दई पाँवरी, अवधपुरी पग धारे ।।

(श्रीरामजीने चलते समय भरतजीको समझाया—) 'भाई ! राज-कार्य सावधानीसे करना । राजनीतिके अनुसार व्यवहार करना, गुरुकी सेवा करना, गौ तथा ब्राह्मणोंका पालन करना । कौसल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा—तीनों ही माताओंका प्रातःसायं दर्शन कर लिया करना (उनकी देखभाल रखना) । गुरु वसिष्ठजी तथा (मन्त्री) सुमन्त्रसे मिलकर प्रजाके हितका विचार करना ।' (यह सुनकर) भरतजीका शरीर शिथिल हो गया, उनके नेत्रोंसे आँसूकी धारा उमड़ चली । सूरदासजी कहते हैं—श्रीरामने अपनी चरणपादुका उन्हें दी, (उसे लेकर) वे अयोध्या लौटे ।

भरत-विदा

राग सारंग

[४४]

राम यौं भरत बहुत समझायौ ।
कौसिल्या, कैकई, सुमित्रहि पुनि-पुनि सीस नवायौ ।।

गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमंत सौं, अतिहीं प्रेम बढ़ायौ।
बालक प्रतिपालक तुम दोऊ, दसरथ-लाड़ लड़ायौ॥
भरत-सत्रुहन कियौ प्रनाम, रघुबर तिन्ह कंठ लगायौ।
गदगद गिरा, सजल अति लोचन, हिय सनेह-जल छायौ॥
कीजै यहै विचार परसपर, राजनीति समुझायौ।
सेवा मातु, प्रजा-प्रतिपालन, यह जुग-जुग चलि आयौ॥
चित्रकूट तें चले खीन-तन, मन विस्राम न पायौ।
'सूरदास' बलि गयौ राम कैं, निगम नेति जिहिं गायौ॥

श्रीरामने इस प्रकार श्रीभरतजीको बहुत समझाया। (फिर) माता कौसल्या, कैकेयी और सुमित्राके चरणोंमें बार-बार मस्तक झुकाकर उनकी वन्दना की। गुरु वसिष्ठजी तथा मन्त्री सुमन्त्रसे मिलकर उनके प्रेमको अत्यन्त बढ़ा दिया। (उनसे बोले)—'आप दोनोंने पिता दशरथजीके समान हम बालकोंका प्यार-दुलार किया है, हमारा पालन करनेवाले तो अब (भी) आप (ही) दोनों हैं।' भरत और शत्रुघ्नने (चलते समय) प्रणाम किया, श्रीरघुनाथने दोनों भाइयोंको गले लगा लिया। वाणी गद्गद हो गयी, नेत्रोंमें अश्रु भर आये, प्रेमके रससे हृदय उमड़ पड़ा। (भाइयोंको) राजनीति समझाते हुए बोले—'परस्पर (मिलकर) यही विचार करना कि माताओंकी सेवा और प्रजाका पालन—यही युग-युगसे चलता आया (राजाका) सनातन धर्म है।' (इस प्रकार विदा होकर भरत-शत्रुघ्न) चित्रकूटसे क्षीण-शरीर होकर लौटे, उनके मनको शान्ति नहीं मिली थी। सूरदासजी कहते हैं—मैं तो श्रीरामपर न्योछावर हूँ; जिनका वर्णन वेद भी 'नेति-नेति' (इनकी महिमाका अन्त नहीं) कहकर करते हैं।

अरण्यकाण्ड

शूर्पणखा-नासिकोच्छेदन

राग मारू

[४५]

दंडक बन आए रघुराई ।
काम-बिबस व्याकुल उर अंतर, राच्छसि एक तहाँ चलि आई ॥
हँसि कहि कछु राम सीता सौं, तिहि लछिमन के निकट पठाई ।
भृकुटी कुटिल,अरुन अति लोचन,अगिनि-सिखामुखकह्यौ फिराई
री बौरी, सठ भई मदन-बस, मेरं ध्यान चरन रघुराई ।
बिरह-बिथा तन गई लाज छुटि, बारंबार उठै अकुलाई ॥
रघुपति कह्यौ, निलज्ज निपट तू , नारि राच्छसी ह्याँ तें जाई ।
'सूरदास' प्रभु इक-पतिनी-ब्रत, काटी नाक, गई खिसिआई ॥

(चित्रकूटसे) श्रीरघुनाथ दण्डकवनमें आ गये । वहाँ कामसे अत्यन्त व्याकुल चित्तवाली एक राक्षसी (शूर्पणखा) उनके पास आयी । मुसकराकर श्रीरामने सीताजीसे कुछ कहा और उस राक्षसीको लक्ष्मण-जीके पास भेज दिया । (उसकी बात सुनकर श्रीलक्ष्मणजीकी) भौंहें (रोषसे) टेढ़ी हो गयीं, नेत्र अत्यन्त लाल हो उठे, मुख अग्निशिखाकी भाँति तमक उठा, दूसरी ओर मुख घुमाकर बोले—'अरी पगली ! तू तो कामके वश होकर दुष्टा हो गयी है, मेरा चित्त तो श्रीरघुनाथके चरणोंमें लगा है (मैं और किसीको प्यार नहीं कर सकता) ।' वियोगकी व्यथासे (उस राक्षसीकी) शारीरिक लज्जा भी छूट गयी (वह सर्वथा निर्लज्ज हो गयी) और बारंबार व्याकुल होकर उठने लगी । श्रीरघुनाथजीने कहा—'तू अत्यन्त निर्लज्ज राक्षसी स्त्री है, अतः यहाँसे चली जा !' सूरदासजी कहते हैं कि प्रभु तो एकपत्नी-व्रतधारी हैं, उन्होंने राक्षसीकी नाक कटवा दी । अतः वह रुष्ट होकर चली गयी ।

खर-दूषण-वध

राग सारंग

[४६]

खर-दूषन यह सुनि उठि धाए।
तिन के संग अनेक निसाचर, रघुपति-आस्रम आए॥
श्रीरघुनाथ-लछन ते मारे, कोउ एक गए पराए।
सूपनखा ये समाचार सब, लंका जाइ सुनाए॥
दसकंधर-मारीच निसाचर, यह सुनि कै अकुलाए।
दंडक बन आए छल करि कै, 'सूर' राम लखि धाए॥

खर-दूषण यह सुनकर (कि हमारी बहिन शूर्पणखाकी नाक राम-लक्ष्मणने काट दी) उठकर दौड़ पड़े (आक्रमण कर दिया)। उनके साथ बहुत-से राक्षस (पूरा राक्षसी सैन्यदल) श्रीरामके आश्रमपर चढ़ आये। श्रीराम और लक्ष्मणने उन सबोंको मार डाला; जो कुछ बच रहे, वे भाग गये। शूर्पणखाने यह सब समाचार लङ्का जाकर (रावणको) सुनाया। यह सुनकर—ये दोनों राक्षस व्याकुल हो गये और कपट करके (मायारूप बनाकर) दण्डक वनमें आये। सूरदासजी कहते हैं—उनको (उनमें मारीचके मायासे बने मृग-रूपको) देखकर श्रीराम (उसके पीछे) दौड़ पड़े।

[४७]

राम धनुष अरु सायक साँधे।
सिय हित मृग पाछैं उठि धाए, बलकल बसन फेंट दृढ़ बाँधे॥
नव-घन, नील-सरोज-बरन बपु, बिपुल बाहु, केहरि-फल-काँधे।
इंदु-बदन, राजीव-नैन बर, सीस जटा सिव-सम सिर बाँधे॥
पालत, सृजत, सँहारत, सैंतत, अंड अनेक अवधि पल आधे।
'सूर' भजन-महिमा दिखरावत, इमि अति सुगम चरन आराधे॥

श्रीसीताजीके लिये (उनके कहनेसे) श्रीराम धनुषपर वाण चढ़ाकर (मायासे बने) मृगके पीछे दौड़ पड़े। वल्कल-वस्त्रका कटिमें उन्होंने कसकर फेंटा बाँध लिया है, उनका शरीर नवजलधर तथा नीलकमलके-से वर्णका है, विशाल भुजाएँ हैं, सिंहके समान भरे हुए कंधे हैं, चन्द्रमाके समान मुख है, श्रेष्ठ उत्फुल्ल कमलदलके समान (अरुणाभ विशाल) लोचन हैं और शंकरजीके समान मस्तकपर जटा बाँधे हैं। (ये वही सर्वसमर्थ प्रभु हैं) जो (अपने) आधे पलके समयमें ही अनेक ब्रह्माण्डोंकी रचना कर डालते हैं, उनका पालन करते हैं और उनका प्रलय करके सबको अपने भीतर ही समेट लेते हैं। सूरदासजी कहते हैं—(मारीचके पीछे दौड़कर) वे अपने भजनका माहात्म्य दिखला रहे हैं कि इनके चरणोंकी आराधना करनेसे ये इस प्रकार सहज प्राप्त हो जाते हैं।

सीता-हरण

राग केदारौ

[४८]

सीता पुहुप-बाटिका लाई ।
बारंबार सराहत तरुबर, प्रेम-सहित सींचे रघुराई ॥
अंकुर मूल भए सो पोषे, क्रम-क्रम लगे फूल-फल आई ।
नाना भाँति पाँति सुंदर, मनो कंचन की हैं लता बनाई ॥
मृग-स्वरूप मारीच धरयौ तब, फेरि चल्यो बारक जो दिखाई ।
श्रीरघुनाथ धनुष कर लीन्हौ, लागत बान देव-गति पाई ॥
हा लछिमन, सुनि टेर जानकी, बिकल भई, आतुर उठि धाई ।
रेखा खैंचि, बारि बंधनमय, हा रघुबीर ! कहाँ हौ, भाई ॥
रावन तुरत बिभूति लगाएँ, कहत आइ, भिच्छा दै माई ।
दीन जानि, सुधि आनि भजन की, प्रेम सहित भिच्छा लै आई ॥
हरि सीता लै चल्यौ डरन जिय, मानो रंक महानिधि पाई ।
'सूर' सोय पछिताति यहै कहि, करम-रेख मेटी नहिं जाई ॥

(दण्डकवनमें) श्रीजानकीजीने पुष्प-वाटिका लगायी। श्रीरघुनाथजी उसके श्रेष्ठ पौधोंकी प्रशंसा बार-बार करते थे और प्रेमपूर्वक उन्हें सींचते थे। जिन जड़ोंमें अंकुर निकले, उनका उन्होंने (सींचकर) पोषण किया, धीरे-धीरे (बड़े होनेपर) उनमें पुष्प और फल लगने लगे। नाना प्रकारके पौधोंकी सुन्दर पंक्तियाँ इस प्रकार लगी थीं जैसे स्वर्णकी लताएँ सजायी गयी हों। राक्षस मारीचने तब (वहाँ आकर) मृगका रूप धारण किया और (उस वाटिकाको चीरता हुआ) एक बार दिखलायी पड़ा, फिर भाग चला। श्रीरघुनाथजीने हाथमें धनुष उठाया (और बाण चढ़ाकर आघात किया)। बाण लगते ही मारीचने देव-गति (स्वर्ग) प्राप्त कर ली। (मरते समय उसके द्वारा कपटपूर्वक की गयी) 'हा लक्ष्मण !' यह पुकार सुनकर श्रीजानकीजी व्याकुल हो गयीं और उठकर वेगसे दौड़ पड़ीं। (श्रीलक्ष्मणजीने श्रीजानकीजीके चारों ओर) जलसे बन्धनमय रेखा (मन्त्र पढ़कर) खींची (कि जो इसके भीतर आयेगा, वह यहीं बँधा पड़ा रहेगा। वे स्वयं) 'वीर ! हे भाई ! आप कहाँ हैं ?' यह कहते (वनमें) चले। (उनके चले जानेपर) तुरंत ही रावण शरीरमें विभूति लगाकर (साधुका वेश बनाकर) आया और बोला—'माताजी ! भिक्षा दो।' (श्रीजानकीजी) उसे दीन (भूखा) समझकर, भजनका स्मरण करके (कि भजन करनेवाले साधुका सत्कार गृहस्थका धर्म है) प्रेमसे भिक्षा लेकर (रेखाके बाहर) आ गयीं। (रावणने) सीताजीका हरण कर लिया और उन्हें उठाकर इस प्रकार हृदयमें डरता हुआ भागा, मानो कंगालने महान् निधि (अमूल्य सम्पत्ति) पा ली हो। सूरदासजी कहते हैं—श्रीजानकीजी यही कहकर पश्चात्ताप कर रही थीं कि भाग्यकी रेखा मिटायी नहीं जा सकती।

राग मारू

[४९]

इहिं बिधि बन बसे रघुराइ।
डासि के तृन भूमि सोवत, द्रुमनि के फल खाइ॥

जगत-जननी करी बारी, मृगा चरि-चरि जाइ।
कोपि कै प्रभु बान लीन्हौ, तबहिं धनुष चढ़ाइ॥
जनक-तनया धरि अगिनि मैं, छाया-रूप बनाइ।
यह न कोऊ भेद जानै, बिना श्रीरघुराइ॥
कह्यौ अनुज सौं, रहौ ह्याँ तुम, छाँड़ि जनि कहुँ जाइ।
कनक-मृग मारीच मार्‍यौ, गिर्‍यौ, 'लषन' सुनाइ॥
गयौ सो दै रेख, सीता कह्यौ सु कहि नहिं जाइ।
तबहिं निसिचर गयौ छल करि, लई सीय चुराइ॥
गीध ताकौं देखि धायौ, लर्‍यौ 'सूर' बनाइ।
पंख काटैं गिर्‍यौ, असुर तब गयौ लंका धाइ॥

श्रीरघुनाथ इस प्रकार (दण्डक) वनमें रहते थे—वे तिनके (कुश) बिछाकर भूमिपर शयन करते थे और वृक्षोंके फलोंका भोजन करते थे। जगज्जननी श्रीजानकीजीने फुलवारी लगा रखी थी, उसे (मारीचरूपी) हिरन चर-चरकर भाग जाता था। प्रभुने क्रोध करके हाथमें बाण लिया और तत्काल उसे धनुषपर चढ़ाया। (पहले ही) उन्होंने श्रीजनकनन्दिनीको अग्निमें रख दिया था और उनका एक छाया-रूप बना लिया था। श्रीरघुनाथको छोड़कर इस रहस्यको और कोई नहीं जानता था। (मारीचके पीछे जाते समय प्रभुने) छोटे भाईसे कहा—'तुम यहीं रहना। जानकीजीको छोड़कर कहीं जाना मत।' जब (श्रीरामने) स्वर्णमृग मारीचको मारा, तब वह 'हा लक्ष्मण !' यह शब्द सुनाकर गिर पड़ा (और मर गया। उसके शब्दको सुनकर) सीताजीने (लक्ष्मणसे) जो कुछ (कठोर बातें) कहीं, वे तो (मुझसे) कही नहीं जातीं। (विवश होकर) लक्ष्मणजी (श्रीजानकीके) चारों ओर रेखा खींचकर (वनमें) चले गये। उसी समय राक्षस (रावण) छल करके (साधुवेश बनाकर वहाँ) गया और उसने सीताजीको चुरा लिया। सूरदासजी कहते हैं— (श्रीजानकीको लेकर जाते हुए) उसे देखकर गृध्रराज (जटायु) दौड़े और बड़े पराक्रमसे उन्होंने युद्ध किया, किंतु रावणने उनके पंख

काट दिये, इससे वे (भूमिपर) गिर पड़े और तब वह राक्षस दौड़ता हुआ (आकाशमार्गसे शीघ्रतापूर्वक) लङ्का चला गया ।

सीताका अशोकवन-वास

राग सारंग

[५०]

बन असोक मैं जनक-सुता कौं रावन राख्यौ जाइ ।
भूख ऽरु प्यास, नींद नहिं आवै, गई बहुत मुरझाइ ॥
रखवारी कौं बहुत निसाचरि, दीन्हीं तुरत पठाइ ।
'सूरदास' सीता तिन्ह निरखत, मनहीं-मन पछिताइ ॥

रावणने श्रीजनकनन्दिनीको ले जाकर अशोकवाटिकामें रख दिया । उन्हें न भूख लगती थी न प्यास और न निद्रा ही आती थी । (श्रीरामके वियोगमें) वे अत्यन्त ही म्लान हो गयी थीं । (रावणने) उनकी रखवाली करनेके लिये बहुत-सी राक्षसियाँ तुरंत भेज दीं । सूरदासजी कहते हैं— श्रीसीताजीको देखकर वे सब भी मन-ही-मन पश्चात्ताप करती थीं ।

राम-विलाप

राग केदारौ

[५१]

रघुपति कहि प्रिय-नाम पुकारत ।
हाथ धनुष लीन्हे,कटि भाथा,चकित भए दिसि-बिदिसिनिहारत॥
निरखत सून भवन जड़ ह्वै रहे,खिन लोटतधर,बपु न सँभारत।
हा सीता,सीता,कहिसियपति,उमड़िनयनजलभरि-भरिढारत ॥
लगत सेष-उर बिलखिजगतगुरु,अद्भुतगति नहिं परतिबिचारत ।
चिंतत चित्त 'सूर' सीतापति, मोह मेरु-दुख टरत न टारत ॥

श्रीरघुपति बार-बार अपनी प्रियाका नाम लेकर उन्हें पुकार रहे हैं । हाथमें धनुष लिये हैं, कटिमें तरकस बँधा है, चकित होकर दिशा-

विदिशामें (इधर-उधर चारों ओर) देखते हैं । कुटियाको सूनी देखकर वे विचाररहित-से हो गये हैं, कभी (शोकसे) पृथ्वीमें लोटने (पछाड़ खाने) लगते हैं, अपने शरीरको भी सम्हाल नहीं पाते । 'हा सीता ! हा सीता !' कहकर श्रीसीतानाथ नेत्रोंसे उमड़ती हुई अश्रुधारा बहा रहे हैं । वे जगद्गुरु बार-बार विलाप करते हुए लक्ष्मणजीके हृदय-से लिपट जाते हैं । सूरदासजी कहते हैं—उनकी गति अद्भुत है, विचार करने से (भी) समझमें नहीं आती । श्रीसीतापति मनमें अत्यन्त चिन्तित हैं, उनका (वियोगजन्य) दुःख सुमेरुके समान हो रहा है, जो टालनेसे भी टलता नहीं है; उससे वे बार-बार मूर्च्छित हो रहे हैं ।

रामका लक्ष्मणके प्रति

राग केदारौ

[५२]

हो लछिमन ! सीता कौनें हरी ?
यह जु मढ़ी बैरिन भई हम कौं, कंचन-मृग जो छरी ॥
जो पै सीता होय मढ़ी मैं, झाँकत द्वार खरी ।
सूनी मढ़ी देख रघुनन्दन, आवत नयन भरी ॥
एक दुख हतौ पिता दसरथ कौ, दूजो सीय करी ।
'सूरदास' प्रभु कहत भ्रात सौं, बन मैं बिपति परी ॥

'हे लक्ष्मण ! जानकीका किसने हरण किया ? यह कुटिया ही हमारे लिये शत्रु हो गयी, स्वर्णके मृगने हमें छल लिया । यदि जानकी कुटियामें होतीं तो द्वारपर खड़ी होकर (हमारे आनेका मार्ग) देखती होतीं ।' कुटियाको सूनी देखकर श्रीरघुनाथजीके नेत्र भर-भर आते हैं । (वे कहते हैं—) 'एक दुःख तो पिता दशरथकी मृत्युका था ही, दूसरा दुःख यह सीता-हरणका हो गया ।' सूरदासजी कहते हैं कि प्रभु भाई (लक्ष्मण) से कहते हैं—'वनमें यह (कैसी) विपत्ति पड़ गयी !'

[५३]

सुनौ अनुज, इहिं बन इतननि मिलि जानकि प्रिया हरी।
कछु इक अंगनि की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी॥
कटि केहरि, कोकिल कल बानी, ससि मुख-प्रभा धरी।
मृग मूसी नैननि की शोभा, जाति न गुप्त करी॥
चंपक बरन चरन-कर कमलनि, दाड़िम दसन-लरी।
गति मराल अरु बिंब अधर-छबि, अहि अनूप कबरी॥
अति करुना रघुनाथ गुसाईं, जुग ज्यौं जाति घरी।
'सूरदास' प्रभु प्रिया-प्रेम-बस, निज महिमा बिसरी॥

(श्रीराम वियोग-व्याकुल होकर कहते हैं—) 'भाई लक्ष्मण ! सुनो-इस वनमें इतनोंने मिलकर मेरी प्रियतमा श्रीजानकीका हरण किया है। (श्रीसीताके) अङ्गोंका कुछ-कुछ चिह्न (इन सबके पास) मेरी दृष्टिमें पड़ा है। सिंहने उनकी कटि, कोकिलने सुमधुर वाणी और चन्द्रमाने उनके मुखकी छटा धारण कर ली है। मृगोंने उनके नेत्रोंकी शोभा चुरा ली है, जो उनसे छिपाते नहीं बनती। चम्पाके पुष्पने वर्णकी, कमल-पुष्पोंने चरणों एवं हाथोंकी, अनारके दानोंने दन्तावलीकी, हंसने गतिकी, बिम्वाफल (जंगली कुंदरू) ने ओष्ठकी तथा सर्पोंने उनकी अनुपम वेणीकी शोभा चुरायी है।' सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी श्रीरघुनाथ अत्यन्त दुखी हैं, एक घड़ी उन्हें युगके समान बीत रही है। वे समर्थ होकर (भी) परम प्रियतमा श्रीजानकीके प्रेमसे विवश हैं, इससे अपनी महिमा उन्हें भूल गयी है।

[५४]

फिरत प्रभु पूछत बन-द्रुम-बेली।
अहो बंधु, काहु अवलोकी, इहिं मग बधू अकेली ?
अहो बिहंग, अहो पनंग-नृप, या कंदर के राइ।
अब कैं मेरी बिपति मिटाओ, जानकि देहु बताइ॥

चंपक-पुहुपबरन तन सुन्दर, मनो चित्र-अवरेखी।
हो रघुनाथ, निसाचर के सँग अबै जात हौं देखी॥
यह सुनि धावत धरनि, चरनकी प्रतिमा पथ में पाई।
नैन-नीर रघुनाथ सानि सो, सिव ज्यौं गात चढ़ाई॥
कहुँ हिय-हार, कहूँ कर-कंकन, कहुँ नूपुर, कहुँ चीर।
'सूरदास' बन-बन अवलोकत, बिलख-बदन रघुबीर॥

प्रभु श्रीराम वनकी लताओं तथा वृक्षोंसे पूछते घूम रहे हैं—'हे बन्धुओं! तुममेंसे किसीने इस मार्गसे जाती मेरी अकेली पत्नीको देखा है? अरे पक्षियो, अरे सर्पोंके राजा, अरे इस कन्दराके स्वामी! अबकी बार श्रीजानकीको बता दो और मेरी विपत्ति मिटा दो। उनका शरीर चम्पाके पुष्पके समान सुन्दर है, मानो चित्रमें बनायी हुई (अनुपम सुन्दरी) हो।' (यह विलाप सुनकर वनदेवताने कहा—) 'श्रीरघुनाथजी! उन्हें (श्रीजानकीजीको) राक्षसके साथ जाते मैंने अभी देखा है।' यह सुनकर श्रीराम दौड़ पड़े—उन्होंने पृथ्वीपर पड़ा (श्रीजानकीका) चरणचिह्न मार्गमें पाया, श्रीरघुनाथने अपने नेत्रोंके अश्रुसे उस चिह्नकी धूलिको गीलाकर इस प्रकार शरीरमें लगा लिया, जैसे शङ्करजी विभूति लगाते हैं। (आगे मार्गमें) कहीं (सीताजीके) हृदयका हार मिला, कहीं हाथका कङ्कण मिला, कहीं (चरणोंका) नूपुर मिला (ये सब वे चिह्नकी भाँति गिराती-फेंकती गयी थीं) और कहीं उत्तरीय वस्त्र मिला। सूरदासजी कहते हैं—श्रीरघुवीर व्याकुल-मुख बने एक वनसे दूसरे वनमें (श्रीजानकीको) ढूंढ़ रहे हैं।

गृध्र-उद्धार

राग केदारौ

[५५]

तुम लछिमन या कुंज-कुटी में देखौ जाइ निहारि।
कोउ इक जीव नाम मम लै-लै उठत पुकारि-पुकारि॥
इतनी कहत कंध तें कर गहि लीन्हौ धनुष सँभारि।
कृपानिधान नाम हित धाए, अपनी बिपति बिसारि॥

अहो बिहंग, कहो अपनौ दुख, पूछत ताहि खरारि।
किहिं मति-मूढ़ हत्यौ तनु तेरौ, किधौं बिछोही नारि?
श्रीरघुनाथ-रमनि, जग-जननी, जनक-नरेस-कुमारि।
ताकौ हरन कियौ दसकंधर, हौं तिहि लग्यौ गुहारि॥
इतनी सुनि कृपालु कोमल प्रभु, दियौ धनुष कर झारि।
मानौ 'सूर' प्रान लै रावन गयौ देह कौं डारि॥

(आगे जाकर एक लता-मण्डपके पास पहुँचकर श्रीराम बोले—) 'लक्ष्मण! तुम इस लता-मण्डपके भीतर जाकर भली प्रकार देखो तो। (इसके भीतरसे) कोई जीव बार-बार मेरा नाम लेकर पुकार उठता है (कराह-सा रहा है)। इतना कहते-कहते कृपानिधान प्रभुने स्वयं कंधेसे उतारकर धनुषको सम्हालकर हाथमें ले लिया और अपनी विपत्तिको भूलकर अपने नाम (की महिमा) की रक्षाके लिये दौड़ पड़े। (कुञ्जमें जाकर उन्होंने घायल जटायुको देखा,) उस पक्षीसे खरारि (श्रीराम) पूछने लगे—'पक्षी! तुम अपना दुःख (दुःखका कारण) बतलाओ! किस मूढ़-बुद्धिने तुम्हारे शरीरपर आघात किया है? अथवा तुमसे भी तुम्हारी पत्नीका वियोग हो गया है?' (जटायु बोले—) 'जगज्जननी श्रीरघुनाथजीकी प्रिया महाराज श्रीजनककी पुत्रीका हरण रावणने किया, मैं उनकी आर्त पुकार सुनकर रक्षा करने दौड़ा था।' इतना सुनते ही कृपामय अत्यन्त कोमल-हृदय प्रभुने हाथसे धनुष फेंक दिया। सूरदासजी कहते हैं—(प्रभुको ऐसा लगा) मानो रावण प्राण हरण करके ले गया और शरीरको यहीं फेंक गया। (अर्थात् जटायुका शरीर श्रीजानकीके शरीरके समान परम प्रिय प्रभुको लगा।)

गृध्रको हरि-पद-प्राप्ति

राग केदारौ

[५६]

रघुपति निरखि गीध सिर नायौ।
कहि कै बात सकल सीता की, तन तजि चरन-कमल चितलायौ॥

श्रीरघुनाथ जानि जन अपनौ, अपने कर करि ताहि जरायौ।
'सूरदास' प्रभु-दरस-परस करि, ततछन हरि के लोकसिधायौ॥

श्रीरघुपतिका दर्शन करके गृध्रराज जटायुने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। श्रीसीताजीका सब समाचार सुनाकर, (प्रभुके) चरणकमलमें चित्त लगाकर उसने शरीर छोड़ दिया। श्रीरघुनाथजीने उसे अपना भक्त समझकर अपने हाथसे उसका दाह-कर्म किया। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभुका दर्शन तथा स्पर्श पाकर वह उसी समय श्रीहरिके धाम—वैकुण्ठको चला गया।

शबरी-उद्धार

राग केदारौ

[५७]

सबरी-आस्रम रघुबर आए। अरघासन दै प्रभु बैठाए।
खाटे फल तजि मीठे ल्याई। जूँठे भए सो सहज सुहाई॥
अंतरजामी अति हित मानि। भोजन कीने, स्वाद बखानि॥
जाति न काहू की प्रभु जानत। भक्ति-भाव हरि जुग-जुग मानत॥
करि दंडवत भई बलिहारी। पुनि तन तजि हरि-लोकसिधारी॥
'सूरज' प्रभु अति करुना भई। निज कर करि तिल-अंजलि दई॥

श्रीरघुनाथ (आगे चलते हुए) शबरीके आश्रमपर आये। उसने प्रभुको अर्घ्य देकर आसनपर बैठाया। खट्टे फलोंको छोड़कर वह मीठे फल ले आयी, (इससे चखनेमें) वे स्वभावसे ही जूठे हो गये। अन्तर्यामी प्रभुने (उसके हृदयका) अत्यन्त शुद्ध प्रेम समझकर स्वादकी प्रशंसा करके उनका भोजन किया। प्रभु किसीकी जातिका विचार नहीं करते, वे श्रीहरि तो युग-युगसे (सदासे) भक्ति-भावका ही आदर करते आये हैं। (शबरी) दण्डवत् प्रणिपात करके (श्रीरामके चरणोंपर ही) न्योछावर हो गयी। फिर वह देहका त्याग करके भगवद्धाम चली गयी। सूरदासजी कहते हैं—प्रभुको (उसपर) अत्यन्त दया आयी, अपने हाथसे प्रभुने उसे तिलाञ्जलि दी।

किष्किन्धाकाण्ड

सुग्रीव-मिलन

राग सारंग

[५८]

रिष्यमूक परबत बिख्याता ।
इक दिन अनुज सहित तहँ आए, सीतापति रघुनाथा ॥
कपि सुग्रीव बालि के भय तैं, बसत हुतौ तहँ आइ।
त्रास मानि तिहिं पवन-पुत्र कौं दीनौ तुरत पठाइ ॥
को ये बीर फिरैं वन बिचरत किहिं कारन ह्याँ आए ।
'सूरज' प्रभु के निकट आइ कपि, हाथ जोरि सिर नाए ॥

ऋष्यमूक नामका पर्वत प्रसिद्ध है, एक दिन छोटे भाई लक्ष्मणके साथ सीतापति श्रीरघुनाथजी वहाँ (उस पर्वतके पास) पहुँचे । वालीके भयसे वहाँ (उसपर) वानरश्रेष्ठ सुग्रीव आकर निवास करते थे । (श्रीराम-लक्ष्मणसे) भयभीत होकर उन्होंने तुरंत (यह पता लगाने) हनुमान्‌जीको भेजा कि 'ये जो (दोनों) वीर वनमें घूमते फिर रहे हैं, वे कौन हैं और यहाँ किस कारणसे आये हैं ?' सूरदासजी कहते हैं—प्रभुके पास आकर हनुमान्‌जीने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर अभिवादन किया ।

हनुमत्-राम-संवाद

राग मारू

[५९]

मिले हनु, पूछी प्रभु यह बात ।
महा मधुर प्रिय बानी बोलत, साखामृग ! तुम किहि के तात?
अंजनि कौ सुत, केसरि के कुल पवन-गवन उपजायौ गात ।
तुम को बीर, नीर भरि लोचन, मीन हीनजल ज्यौं मुरझात ?

दसरथ-सुत कोसलपुर-बासी, त्रिया हरी तातैं अकुलात।
इहि गिरि पर कपिपति सुनियत है, बालि-त्रास कैसैं दिन जात॥
महा दीन, बलहीन, बिकल अति, पवन-पूत देखे बिलखात।
'सूर' सुनत सुग्रीव चले उठि, चरन गहे, पूछी कुसलात॥

श्रीहनुमान्‌जीके मिलनेपर प्रभुने उनसे यह बात पूछी—'कपिवर ! तुम अत्यन्त मधुर और प्रिय वाणी बोलते हो, किसके पुत्र हो तुम ?' (श्रीहनुमान्‌जीने कहा–) 'मैं माता अञ्जनाका पुत्र हूँ, वानरराज केसरी-के कुलमें (उनकी पत्नीमें) पवनकी गतिसे यह शरीर उत्पन्न हुआ है (अर्थात् मैं किसीका वीर्यज पुत्र नहीं हूँ। पवनकी गतिका स्पर्शमात्र होनेसे वानरराज केसरीकी पत्नी अञ्जना देवीको गर्भ रहा और उसीसे मेरी उत्पत्ति हुई)। आप कौन हैं ? वीर होनेपर भी क्यों जलसे निकली मछलीकी भाँति नेत्रोंमें आँसू भरे व्याकुल हो रहे हैं ?' (श्रीरघु-नाथजीने कहा–) 'हम तो अयोध्याके निवासी और महाराज दशरथके पुत्र हैं। हमारी पत्नीका हरण हो गया है, इसलिये व्याकुल हो रहे हैं। सुना है कि इस पर्वतपर वानरराज सुग्रीव निवास करते हैं। वालीके भयसे उनके दिन किस प्रकार बीत रहे हैं ?' सूरदासजी कहते हैं—(इस प्रकार) पवनपुत्र (हनुमान्‌जीने) प्रभुको अत्यन्त दीन दशामें, बलहीन (खिन्न) तथा अत्यन्त व्याकुल होकर विलाप करते देखा (यह सब हाल) सुनते ही सुग्रीव उठकर वहाँ आये और प्रभुके चरण पकड़कर (चरणोंमें प्रणाम करके) कुशल पूछी।

वालि-वध

राग मारू

[६०]

बड़े भाग्य इहिं मारग आए।
गदगद कंठ, सोक सौं रोवत, बारि बिमोचन छाए॥

महा धीर गंभीर बचन सुनि, जामवन्त समुझाए।
बढ़ी परस्पर प्रीति-रीति तब, भूषन सिया दिखाए॥
सप्त ताल सर साँधि, बालि हति, मन अभिलाष पुजाए।
'सूरदास' प्रभु-भुज के बलि-बलि, बिमल-बिमल जस गाए॥

(श्रीरघुनाथजीका) कण्ठ गद्गद हो रहा (भरा हुआ) है, शोकसे वे रो रहे हैं, (उनके सुन्दर) नेत्रोंमें अश्रु भरे हुए हैं (और वे कह रहे हैं—) 'बड़े भाग्यसे हम इस मार्गसे आ गये हैं' (इस मार्गसे आनेके कारण ही आपसे भेंट हुई)। प्रभुकी अत्यन्त धीर एवं गम्भीर वाणी सुनकर (उस वाणीका यह तात्पर्य समझकर कि यह मिलन हम दोनोंके लिये सौभाग्यका कारण तथा दोनोंके दुःख दूर करनेवाला होगा) जाम्बवंतजीने प्रभुको समझाया—आश्वासन दिया। (इस प्रकार) जब परस्पर प्रेमका व्यवहार बढ़ गया, तब (सुग्रीवने) श्रीजानकीजीके आभूषण (जो ऊपरसे जाते समय जानकीजी पर्वतपर डाल गयी थीं) प्रभुको दिखलाये। सात ताल-वृक्षोंको (एक ही) बाणसे बेधकर और बालीका वध करके (सुग्रीवका) मनोरथ प्रभुने पूर्ण कर दिया। सूरदास तो (भक्तभयहारी) प्रभुकी भुजाओंपर बार-बार न्योछावर है और उनके परम निर्मल यशका गान करता है।

सुग्रीवको राज्य-प्राप्ति

राग सारंग

[६१]

राज दियौ सुग्रीव कौं, तिन हरि-जस गायौ।
पुनि अंगद कौं बोल ढिग, या बिधि समुझायौ॥
होनहार सो होत है, नहिं जात मिटायौ।
चतुरमास 'सूरज' प्रभू, तिहिं ठौर बितायौ॥

(श्रीरघुनाथजीने) सुग्रीवको (किष्किन्धाका) राज्य दिया, उन्होंने (सुग्रीवने) श्रीहरिका यशोगान किया (श्रीरामके प्रति कृतज्ञ हुए)।

फिर (प्रभुने) अङ्गदको समीप बुलाकर इस प्रकार समझाया—'जो भाग्यका विधान होता है, वह होकर ही रहता है; उसे मिटाया नहीं जा सकता (तुम्हारे पिताकी मृत्यु भाग्यवश ही हुई, यह समझकर शोक त्याग दो)। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभुने (वर्षाके) चार महीने उसी स्थानपर (ऋष्यमूकपर ही) व्यतीत किये ।

सीता-शोध

राग राजश्री

[६२]

जामवंत रघुनाथ बचन भाष्यौ सोइ कीनौ ।
रामचंद्र बलधीरबीर दोउकृपासहित बीरा लै दीनौ ॥
पठए देस-बिदेसनि सबही तीन लोक के ईस ।
जनकसुता के सोध कौं अवधि बदी दिन तीस ॥
सुनि सँदेस संपाति कौ सबनि भयो मन चाय ।
मानौं मृतकनि कैं हृदै प्रान परे ते आय ॥
बीरा लै अंगद चल्यौ जामवंत संजूत ।
दछिन दिसा समुद्रतट 'सूर' सुआनि पऊँत ॥

श्रीरघुनाथने जैसी आज्ञा दी, जाम्बवान्ने (सीतान्वेषणके लिये) वैसा ही प्रबन्ध किया । कृपापूर्वक धैर्यशाली तथा वीर श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंने (उन्हें सीताकी खोजका) बीड़ा (उत्तरदायित्व) दिया था । उन त्रिलोकीनाथने सभी देश-विदेशोंमें सब वानरोंको श्रीजनकनन्दिनीका पता लगानेके लिये भेजा और कार्य करके लौट आनेका समय तीस दिन निश्चित कर दिया । सूरदासजी कहते हैं कि बीड़ा (उत्तरदायित्व) लेकर युवराज अङ्गद जाम्बवान्के साथ चल पड़े और दक्षिण दिशामें समुद्रके तटपर पहुँच गये । वहाँ गीध सम्पातीके संदेशको सुनकर सबके मनमें उत्साह हुआ । (उनकी ऐसी अवस्था हुई) मानो मृतक लोगोंके हृदयमें पुनः प्राणने आकर प्रवेश किया हो ।

साग सारंग

[६३]

श्रीरघुपति सुग्रीव कौं, निज निकट बुलायौ।
लीजै सुधि अब सोय की, यह कहि समुझायौ॥
जामवंत-अंगद-हनू, उठि माथौ नायौ।
हाथ मुद्रिका प्रभु दई, संदेस सुनायौ॥
आए तीर समुद्र के, कछु सोध न पायौ।
'सूर' सँपाती तहँ मिल्यौ, यह बचन सुनायौ॥

श्रीरघुनाथजीने सुग्रीवको अपने पास बुलाया और उन्हें यह कहकर समझाया कि 'अब श्रीजानकीका पता लगाना चाहिये।' (यह सुनकर) जाम्बवान्, अङ्गद और हनुमान्जीने उठकर मस्तक झुकाया। प्रभुने (हनुमान्जीको) अपने हाथकी अँगूठी (चिह्नस्वरूप) दी और (श्रीजानकीसे कहनेके लिये) संदेश कहा। वे लोग (वहाँसे) समुद्रके किनारे आये, उन्हें कुछ भी पता (जानकीजीका) नहीं मिला था। सूरदासजी कहते हैं—वहाँ उनसे सम्पाती मिला और यह बात (जो अगले पदमें है) बोला।

सम्पाती-वानर-संवाद

राग-सारंग

[६४]

बिछुरी मनो संग तें हिरनी।
चितवत रहत चकित चारों दिसि, उपजि बिरह तन-जरनी॥
तरुबर मूल अकेली ठाढ़ी, दुखित राम की घरनी।
बसन कुचील, चिहुर लपिटाने, बिपति जाति नहिं बरनी॥
लेति उसास नयन जल भरि-भरि, धुकि सो परै धरि धरनी।
'सूर' सोच जिय पोच निसाचर, राम नाम की सरनी॥

सूरदासजी कहते हैं (सम्पातीने बताया—) 'जैसे कोई मृगी अपने दलसे अलग हो गयी हो, श्रीरामजीकी पत्नी श्रीजानकी उसी प्रकार दुखी हैं। वे चकित होकर (भयसे) चारों दिशाओंमें (इधर-उधर) देखती रहती हैं, शरीरको भस्म कर देनेवाला वियोगाग्नि उत्पन्न हो गया है। वृक्षके नीचे वे अकेली खड़ी हैं, उनके वस्त्र मैले हो रहे हैं, केशोंकी लटें बँध गयी हैं, उनकी विपत्तिका वर्णन नहीं किया जा सकता। बार-बार दीर्घ श्वास लेती हैं, नेत्रोंमें अश्रु भर-भर लेती हैं और (दुर्बलताके कारण) पृथ्वी पकड़कर बार-बार झुक पड़ती हैं। नीच राक्षस (रावण) की चिन्ता (आशङ्का) उनके मनमें बनी रहती है, केवल राम-नामकी शरण हैं (सदा राम-नाम लेती रहती हैं)।'

सुन्दरकाण्ड

राग केदारौ

[६५]

तब अंगद यह बचन कह्यौ।
को तरि सिंधु सिया-सुधि ल्यावै, किहिं बल इतौ लह्यौ ?
इतनौ बचन स्रवन सुनि हरष्यौ, हँसि बोल्यौ जमुवंत।
या दल मध्य प्रगट केसरि-सुत, जाहि नाम हनुमंत॥
वहै ल्याइहै सिय-सुधि छिन मैं, अरु आइहै तुरंत।
उन प्रताप त्रिभुवन कौ पायौ, वाके बलहि न अंत॥
जो मन करै एक बासर मैं, छिन आवै, छिन जाइ।
स्वर्ग-पताल माहिं गम ताकौ, कहियै कहा बनाइ!
केतिक लंक, उपारि बाम कर, लै आवै उचकाइ।
पवन-पुत्र बलवंत बज्र-तनु, कापै हटक्यौ जाइ॥
लियौ बुलाइ मुदित चित ह्वै कै, कह्यौ, तँबोलहि लेहु।
ल्यावहु जाइ जनक-तनया-सुधि, रघुपति कौं सुख देहु॥

पौरि-पौरि प्रति फिरौ बिलोकत, गिरि-कंदर-बन-गेहु।
समय बिचारि मुद्रिका दीजौ, सुनौ मंत्र सुत एहु॥
लियौ तँबोल माथ धरि हनुमत, कियौ चतुरगुन गात।
चढ़ि गिरि-सिखर सब्द इक उचर्‍यौ, गगन उठ्यौ आघात॥
कंपत कमठ-सेष-बसुधा नभ, रवि-रथ भयौ उतपात।
मानौ पच्छ सुमेरहि लागे, उड़्यौ अकासहिं जात॥
चकित सकल परस्पर बानर, बीच परी किलकार।
तहँ इक अद्भुत देखि निसिचरी, सुरसा मुख-बिस्तार॥
पवन-पुत्र मुख पैठि पधारे, तहाँ लगी कछु बार।
'सूरदास' स्वामी-प्रताप-बल, उतर्‍यौ जलनिधि पार॥

(सम्पातीसे जब समाचार मिल गया) तब अङ्गदने यह बात कही—'समुद्रको पार करके श्रीजानकीजीका समाचार कौन ले आयेगा? इतनी शक्ति किसने पायी है?' यह बात कानोंसे सुनकर जाम्बवान् प्रसन्न हो गये और हँसकर बोले—'इस दलमें जिनका नाम हनुमान् है, वे केसरीनन्दन तो प्रत्यक्ष ही हमारे सामने बैठे हैं। वे ही क्षणभरमें (बहुत शीघ्र) श्रीजानकीजीका पता ले आयेंगे, तथा तुरंत ही लौट (भी) आयेंगे (उन्हें आनेमें देर नहीं होगी।) उन्होंने प्रताप तीनों लोकोंका पाया है। उनके बलकी तो कोई सीमा ही नहीं है। यदि वे मन कर लें तो एक दिनमें ही कई बार (लङ्काको) क्षणमें चले जायँ और क्षणभरमें लौट (भी) आयें। अधिक बनाकर क्या कहा जाय, उनकी गति तो स्वर्ग तथा पातालतक भी है। (वे चाहें तो) कितनी ही लङ्का जैसी नगरियोंको बायें हाथसे उखाड़कर उठा ले आयें। वे पवनपुत्र (बड़े) बलवान् हैं, उनका शरीर वज्रके समान है; भला, उन्हें रोक कौन सकता है।' (यह कहकर जाम्बवान्ने श्रीहनुमान्जीको) प्रसन्नचित होकर पास बुला लिया और बोले—'यह बीड़ा (उत्तर-दायित्व) ले लो और श्रीजानकीजीका समाचार ले आकर श्रीरघुपतिको

आनन्द प्रदान करो। (लङ्कामें) द्वार-द्वारको घूमकर देख लेना; पर्वतोंकी गुफाएँ, वन तथा घरोंको (भी) देखना। अवसर समझकर (जानकीजीको श्रीरामकी) अँगूठी दे देना। हे तात ! तुम मेरी यह सलाह सुन लो (मान लो) !' श्रीहनुमान्‌जीने बीड़ा सिरपर चढ़ाकर ले लिया (सादर उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया) और अपने शरीरका चौगुना विस्तार किया। पर्वतके शिखरपर चढ़कर (हुँकारका) एक शब्द किया, जिसकी प्रतिध्वनिसे आकाश गूँज गया। कच्छप, शेषनाग और पृथ्वी काँपने लगी और आकाशमें सूर्यके रथके लिये भी उत्पात हो गया (घोड़े मार्ग छोड़कर भड़क उठे)। जैसे सुमेरु पर्वतको पंख आ गये हों, इस प्रकार वे आकाशमें उड़ते हुए जाने लगे। (श्रीहनुमान्‌जीको इस प्रकार जाते देखकर) सभी वानर चकित हो गये। और एक-दूसरेको देखकर (उत्साहसे) उनमें किलकारी उठने लगी। वहाँ (मार्गमें) एक अद्भुत राक्षसी सुरसा मुख फैलाये दीख पड़ी; किंतु पवनकुमार (शरीरको छोटा करके) उसके मुखमें घुसकर निकल आये (और आगे चल पड़े), वहाँ उन्हें कुछ देर लगी थी। सूरदासजी कहते हैं—अपने स्वामी श्रीरामके प्रताप एवं बलसे वे समुद्रके पार हो गये।

राग धनाश्री

[६६]

लखि लोचन, सोचै हनुमान।
चहुँ दिसि लंक-दुर्ग दानवदल, कैसैं पाऊँ जान॥
सौ जोजन बिस्तार कनकपुरि, चकरी जोजन बीस।
मनौ बिस्वकर्मा कर अपुनैं, रचि राखो गिरि-सीस॥
गरजत रहत मत्त गज चहुँ दिसि, छत्र-धुजा चहुँ दीस।
भरमित भयौ देखि मारुत-सुत, दियौ महाबल ईस !
उड़ि हनुमंत गयौ आकासहिं, पहुँच्यौ नगर मझारि।
बन-उपवन, गम्य-अगम अगोचर मंदिर, फिर्‍यौ निहार॥

भई पैज अब हीन हमारी, जिय मैं कहै बिचारि।
पटकि पूँछ, माथौ धुनि लोटै, लखी न राघव-नारि॥
नानारूप निसाचर अद्भुत, सदा करत मद-पान।
ठौर-ठौर अभ्यास महाबल करत कुंत-असि बान॥
जिय सिय-सोच करत मारुत-सुत, जियति न मेरैं जान।
कै वह भाजि सिंधु मैं डूबी, कै उहिं तज्यौ परान॥
कैसैं नाथहि मुख दिखराऊँ, जो बिनु देखे जाउँ।
बानर बीर हँसैंगे मोकौं, तैं बोरयो पितु-नाउँ॥
रिच्छप तर्क बोलिहै मोसौं, ताकौं बहुत डराउँ।
भलैं राम कौं सीय मिलाई, जीति कनकपुर गाउँ॥
जब मोहि अंगद कुसल पूछिहै, कहा कहौंगो वाहि।
या जीवन तैं मरन भलौ है, मैं देख्यौ अवगाहि॥
मारौं आजु लंक लंकापति, लै दिखराऊँ ताहि।
चौदह सहस जुबति अंतःपुर, लैहैं राघव चाहि॥
मंदिर की परछाया बैठ्यौ, कर मीजै पछिताइ।
पहिलैं हूँ न लखी मैं सीता, क्यौं पहिचानी जाइ॥
दुरबल दीन-छीन चिंतित अति, जपत नाइ रघुराइ।
ऐसी बिधि देखिहौं जानकी, रहिहौं सीस नवाइ॥
बहुरि बीर जब गयौ अबासहिं, जहाँ बसै दसकंध।
नगनि जटित मनि-खंभ बनाए, पूरन बात सुगंध॥
स्वेत छत्र फहरात सीस पर, मनौ लच्छि कौ बंध।
चौदह सहस नाग-कन्या-रति, परयौ सो रत मतिअंध॥
बीना-झाँझ-पखाउज-आउज, और राजसी भोग।
पुहुप-प्रजंक परी नवजोवनि, सुख-परिमल-संजोग॥

जिय जिय गढ़ै, करै बिस्वासहि, जानै लंका लोग।
इहि सुख-हेत हरी है सीता, राघव बिपति-बियोग ॥
पुनि आयौ सीता जहँ बैठी, बन असोक के माँहि।
चारौं ओर निसिचरी घेरैं, नर जिहि देखि डराहिं ॥
बैठ्यौ जाइ एक तरुबर पर, जाकी सीतल छाहिं।
बहु निसाचरी मध्य जानकी, मलिन बसन तन माँहि ॥
बारंबार बिसूरि 'सूर' दुख, जपत नाम रघुनाहु।
ऐसी भाँति जानकी देखी, चंद गह्यौ ज्यौं राहु ॥

(लङ्काको) आँखोंसे देखकर श्रीहनुमान्‌जी चिन्ता करने लगे कि 'यह लङ्काका दुर्ग तो चारों ओरसे दानव-दलसे घिरा है, मैं इसमें कैसे जा पाऊँगा।' स्वर्णपुरी लङ्काका विस्तार सौ योजन था और उसका घेरा बीस योजनका था। (वह इतना सुन्दर नगर था) मानो विश्व-कर्माने उसे अपने हाथसे बनाकर पर्वतके शिखरपर रख दिया हो। चारों ओर मतवाले हाथी उसमें गर्जना किया करते थे और चारों दिशाओंमें छत्र लगे थे तथा पताकाएँ फहरा रही थीं। (ऐसे) नगर-को देखकर श्रीहनुमान्‌जी संदेहमें पड़ गये। तब उन्हें भगवान्‌ने महान् बल प्रदान किया। तब हनुमान्‌जी आकाश-मार्गसे उड़कर गये और नगरके बीचमें पहुँच गये। (वहाँ उन्होंने) वन, बगीचे तथा जा सकने योग्य (सुगम) एवं न जा सकने योग्य (अगम्य) तथा अप्रकट भवनोंको घूम-घूमकर देखा। (कहीं भी जानकीजीको न देखकर) अपने चित्तमें वे विचार करके कहने लगे—'हमारी प्रतिज्ञा अब हीन (भङ्ग) हो गयी। मैं श्रीरघुनाथजीकी भार्या श्रीसीताजीको देख न सका।' (शोकसे) वे पृथ्वीपर पूँछ पटकने लगे और सिर पीट-पीटकर पछाड़ खाने लगे। अनेक प्रकारके अद्‌भुत रूपवाले राक्षस वहाँ सर्वदा मदिरा पीते रहते थे और वे महाबलशाली राक्षस (मदिरा पीकर) स्थान-स्थानपर भाला चलाने, तलवार चलाने तथा बाणसे निशाना मारनेका अभ्यास करते रहते थे। (यह सब देखकर)

श्रीहनुमान्‌जी अपने हृदयमें श्रीजानकीके सम्बन्धमें (इस प्रकार) चिन्ता करने लगे—'मेरी समझसे वे (श्रीजानकीजी) अब जीवित नहीं हैं। या तो वे भागकर समुद्रमें डूब गयीं अथवा उन्होंने (शोकमें) प्राण त्याग दिया। यदि मैं उनका दर्शन किये बिना लौट जाऊँ तो स्वामी (श्रीरामजी) को कैसे मुख दिखलाऊँगा। सब वानर मेरी हँसी करेंगे कि 'तुमने अपने पिताका नाम डुबा दिया।' ऋक्षराज जाम्बवान् मुझसे अनेक प्रकारके तर्क करेंगे, उनसे तो मैं बहुत डरता हूँ। (वे कहेंगे—) 'स्वर्णपुरी लङ्काको जीतकर तुमने श्रीरामसे श्रीजानकीजीका अच्छा मिलन कराया!' जब युवराज अंगद मुझसे (श्रीजानकीजीकी) कुशल पूछेंगे, तब मैं उनसे क्या कहूंगा? मैंने तो थाह लेकर (भली प्रकार सोचकर) देख लिया कि ऐसे जीवनसे मर जाना अच्छा है। (अथवा) आज लङ्कापति रावणको मार डालूँ और लङ्काको ले जाकर ही उनको दिखा दूँ। रावणके अन्तःपुरमें चौदह सहस्र युवतियाँ हैं, श्रीरघुनाथजी उनमें जिसे चाहेंगे—ले लेंगे।' इस प्रकार एक भवनकी छायामें (अँधेरेमें छिपे) बैठे हुए वे हाथ मल-मलकर पश्चात्ताप कर रहे थे कि 'मैंने पहले तो कभी श्रीसीताजीको देखा नहीं है, वे पहचानी कैसे जायँगी? हाँ, अत्यन्त दुर्बल, दीन दशामें पड़ी, (शोकसे) कृश, अत्यन्त चिन्तित तथा श्रीरघुनाथजीका नाम जपती हुई वे होंगी। ऐसी दशामें श्रीजानकीका यदि दर्शन हो जाय तो मैं उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम करूँगा।' फिर वे महावीर जब उस भवनमें गये, जहाँ रावण रहता था (तब उन्होंने देखा कि उस भवनमें) मणियोंके खंभे बने हैं और उनमें रत्न जड़े हुए हैं, वहाँकी वायुमें सुगन्ध भरी है। रावण-के सिरपर श्वेत छत्र इस प्रकार झलमला रहा है, जैसे लक्ष्मीका बन्धन है (लक्ष्मी ही बाँधकर रखी गयी हों)। वह अन्धबुद्धि (मूर्ख) चौदह सहस्र नागकुमारियोंके साथ विलासक्रीड़ामें मग्न था। वीणा, झाँझ, मृदङ्ग तथा ताशोंका शब्द वहाँ हो रहा था तथा दूसरे भी राजसी (राजोचित) भोगपदार्थ वहाँ थे। पुष्पोंसे सजी शय्यापर एक नवयुवती सुखपूर्वक (रावणसे) लिपटी हुई पड़ी थी,

चारों ओर सुखदायक सुगन्ध फैल रही थी । (यह देखकर हनुमान्‌जी) अनेक प्रकारके तर्क-वितर्क करने लगे, ऐसा विश्वास करने लगे (कहीं ये ही तो सीता नहीं हैं ?) इसी सुखके लिये इसने सीताका हरण किया और वहाँ श्रीरघुनाथजी वियोगकी विपत्तिमें पड़े (दुखित हो रहे) हैं। (फिर सोचने लगे) कहीं लङ्काके लोग (मेरा यहाँ आना) जान तो नहीं गये (और उन्होंने श्रीजानकीजीको कहीं छिपा दिया) । फिर जहाँ अशोक-वाटिकामें श्रीसीताजी बैठी थीं, वहाँ आये । वहाँ (श्रीजानकीजीको) चारों ओरसे घेरकर ऐसी राक्षसियाँ बैठी थीं, जिनको देखकर ही मनुष्य डर जाते हैं। (वहाँ हनुमान्‌जी) एक ऐसे श्रेष्ठ वृक्षपर जाकर बैठ गये, जिसकी छाया शीतल थी (जो सघन था)। सूरदासजी कहते हैं— बहुत-सी राक्षसियोंके बीचमें श्रीजानकीजी बैठी थीं, उनके शरीरपर मैला वस्त्र था, बार-बार दुःखसे रोती हुई श्रीरघुनाथजीके नामका जप कर रही थीं। (हनुमान्‌जीने) श्रीजानकीजीको इस प्रकार देखा, जैसे चन्द्रमाको राहुने ग्रस रखा हो ।

राग मारू

[६७]

गयौ कूदि हनुमंत जब सिंधु-पारा।
सेष के सीस लागे कमठ-पीठि सौं,
धँसे गिरिबर सबै तासु भारा॥
लंक-गढ माँहि आकास मारग गयौ,
चहूँ दिसि बज्र लागे किंवारा।
पौरि सब देखि सो असोक-बन मैं गयौ,
निरखि सीता छप्यौ बृच्छ-डारा॥
सोच लाग्यौ करन, यहै धौं जानकी,
कै कौऊ और, मोहि नहिं चिन्हारा।
'सूर' आकासबानी भई तबै तहँ,
यहै बैदेहि है, करु जुहारा॥

श्रीहनुमान्‌जी जब कूदकर समुद्रके पार गये, तब उनके भारसे शेषनागके सिर कच्छप (जो शेषके भी आधार हैं) की पीठसे जा लगे और बड़े-बड़े पर्वत भी सारे-के-सारे (पृथ्वीमें) धँस गये। लङ्काके दुर्गमें चारों ओर वज्र (हीरे) के किवाड़ लगे हुए थे, उसमें हनुमान्‌जी आकाशमार्गसे गये। सम्पूर्ण नगरको देखकर (अन्तमें) वे अशोक-वाटिकामें गये और श्रीसीताजीको देखकर एक वृक्षकी डालीपर छिप गये। (वहाँ बैठकर) चिन्ता करने लगे–'मुझे पहचान तो है नहीं; पता नहीं ये ही श्रीजानकीजी हैं या कोई और (नारी) हैं। सूरदासजी कहते हैं—उस समय वहाँ आकाशवाणी हुई कि ' ये ही श्रीजनकनन्दिनी हैं। इन्हें अभिवादन करो।'

निशिचरी-वचन जानकीके प्रति

राग मारू

[६८]

समुझि अब निरखि जानकी मोहि।
बड़ौ भाग गुनि अगम दसानन, सिव बर दीनौ मोहि॥
कतिक राम कृपन, ताको पितु-मातु घटाई कानि।
तेरौ पिता जो जनक जानकी, कीरति कहौं बखानि॥
बिधि-संजोग टरत नहिं टारैं, बन दुख देख्यौ आनि।
अब रावन घर बिलसि सहज सुख, कह्यौ हमारौ मानि॥
इतनौ बचन सुनत सिर धुनि कै, बोली सिया रिसाइ।
अहो ढीठ, मति-मुग्ध निसिचरी, बैठी सनमुख आइ॥
तब रावन कौ बदन देखिहौं, दस सिरस्रोनित न्हाइ।
कै तन देउँ मध्य पावक के, कै बिलसैं रघुराइ॥
जो पै पतिव्रताब्रत तेरैं, जीवति बिछुरी काइ।
तब किन मुई, कहौ तुम मोसौं, भुजा गही जब राइ॥

अब झूठौ अभिमान करति हौ, झुकति जो उन के नाउँ।
सुखहीं रहसि मिलौ रावन कौं, अपनैं सहज सुभाउ॥
जो तू रामहि दोष लगावै, करौं प्रान कौ घात।
तुमरे कुल कौं बेर न लागै, होत भस्म-संघात॥
उन कैं क्रोध जरै लंकापति, तेरे हृदय समाइ।
तौ पै 'सूर' पतिव्रत साँचौ, जो देखौं रघुराइ॥

(एक राक्षसी, जिसे रावणने श्रीजानकीजीको समझाने भेजा था, कह रही है—) 'जानकी ! विचार करो। अब मेरी ओर देखो ! (मेरी बातपर ध्यान दो।) अपना बड़ा भाग्य समझो और ऐसा मानो कि भगवान् शंकरने ही तुम्हें वरदान दिया है; नहीं तो रावण (दूसरी किसी नारीके लिये) अगम्य है (दूसरी नारी लङ्कापतिको पा नहीं सकती)। दीन रामकी (रावणके सामने) क्या गणना, पिता-माताने ही उनको महत्त्वहीन कर दिया (देशसे निकाल दिया)। जनकनन्दिनी ! तुम्हारे पिता जो महाराज जनक हैं, उनकी कीर्तिका तो मैं वर्णन करती हूँ (वे तो बड़े यशस्वी हैं); किंतु ब्रह्माने जो संयोग रच रखे हैं, वे टालनेसे नहीं टलते (अर्थात् रामसे तुम्हारा विवाह उचित नहीं था, पर भाग्यवश हो गया)। (आते ही) तुम्हें वनवासका दुःख देखना पड़ा। अब तुम हमारा कहना मान लो और रावणके घरमें स्वाभाविक सुखका उपभोग करो।' (राक्षसीकी) इतनी बात सुनकर श्रीजानकीजीने अपना सिर पीट लिया और क्रोधपूर्वक बोलीं—'अरी ढीठ मूढ़बुद्धि राक्षसी ! तू मेरे आगे आकर बैठ गयी है ! मैं रावणके मुखको तब देखूँगी, जब उसके दसों सिर रक्तसे स्नान किये होंगे (अर्थात् धड़से कटे रावणके सिरको ही मैं देखूँगी)। या तो अपने शरीरको अग्निमें भस्म कर दूँगी या श्रीरघुनाथ ही मेरा उपभोग करेंगे।' (राक्षसी यह सुनकर व्यंगसे बोली—) 'यदि पतिव्रताका व्रत ही तुम्हें पालन करना था तो जीवन रहते (पतिसे) बिछुड़ क्यों गयीं ? मुझसे बतलाओ तो कि जब राजा रावणने तुम्हारा हाथ पकड़ा, तभी तुम मर क्यों नहीं गयीं ? अब तो

यह झूठा अभिमान करती हो जो उन (रावण) के नामसे ही खीझती हो । अपने सहज स्वभावसे (सीधी तरह) रावणसे मिलो और एकान्तमें सुख-भोग करो ।' सूरदासजी कहते हैं— (राक्षसीकी बात सुनकर श्रीजानकीजी बोलीं—) 'यदि तू श्रीरामको दोष लगायेगी (उनकी निन्दा करेगी) तो मैं (तुरंत) प्राणघात कर लूँगी और (मेरे शापसे) तेरे कुलको भस्मकी ढ़ेरी बननेमें ढेरी नहीं लगेगी । (वैसे भी) लंकापति रावण तो उन श्रीरघुनाथजीके क्रोधसे भस्म होगा ही और तभी तेरा हृदय शान्त होगा (अर्थात् तू रावणके नाशके ही यत्नमें लगी है ।) मेरा पातिव्रत तो तभी सच्चा होगा, जब मैं श्रीरघुनाथजीका दर्शन कर लूँगी ।'

निशिचरी-रावण-संवाद

राग धनाश्री

[६९]

सुनौ किन कनकपुरी के राइ ।
हौं बुधि-बल-छल करि पचि हारी, लख्यो न सीस उचाइ ॥
डोलै गगन सहित सुरपति अरु पुहुमि पलटि जग परई ।
नसै धर्म, मन-बचन-काय करि, सिंधु अचंभौ करई ॥
अचला चलै, चलत पुनि थाकै, चिरंजीवि सो मरई ।
श्रीरघुनाथ-प्रताप पतिव्रत, सीता-सत नहिं टरई ॥
ऐसी तिया हरत क्यौं आई, ताकौ यह सतिभाउ ।
मन-बच-कर्म और नहिं दूजौ, बिन रघुनंदन राउ ॥
उन कैं क्रोध भस्म ह्वै जैहौ, करौ न सीता-चाउ ।
तब तुम काकी सरन उबरिहौ, सो बलि मोहि बताउ ॥
"जो सीता सत तैं बिचलै, तौ श्रीपति काहि सँभारै ।
मोसे मुग्ध महापापी कौं, कौन क्रोध करि तारै ॥
ये जननी वे प्रभु रघुनन्दन, हौं सेवक प्रतिहार ।
सीता-राम 'सूर' संगम बिनु, कौन उतारै पार ?" ॥

(वही राक्षसी रावणके पास लौट आयी और बोली—) स्वर्ण-पुरी नरेश ! आप मेरी बात क्यों नहीं सुनते ? मैं (अपनी) बुद्धिका प्रयोग एवं (सब प्रकारका) छल-बल करके थक गयी ; किंतु सीताजीने सिर उठाकर मेरी ओर देखातक नहीं। चाहे इन्द्रके साथ आकाश हिल उठे; चाहे पृथ्वी सारे संसारके साथ उलट पड़े; चाहे लोगोंके मन, वाणी और कर्मसे धर्म नष्ट हो जाय; चाहे समुद्र (मर्यादा छोड़कर) आश्चर्य उत्पन्न कर दे, चाहे जड़ पृथ्वी चलने लगे और चलनेवाले (चेतन) जीव जड़ बन जायँ और चाहे चिरजीवी (अमर) लोग मर जायँ; किंतु श्रीरघुनाथके प्रतापसे सीताजीका सच्चा पातिव्रत भङ्ग नहीं हो सकता। ऐसी (पतिव्रता) स्त्री तुम्हारे द्वारा कैसे हरी गयी ? उनका तो यह सच्चा भाव है कि मन, वचन और कर्मसे महाराज श्रीरघुनाथजीको छोड़कर दूसरा कोई पुरुष है ही नहीं। तुम सीताकी चाह मत करो। भला मुझे बताओ तो कि (जब वे क्रोध करेंगी, तब) किसकी शरण लेनेसे तुम्हारी रक्षा होगी ? तुम तो उनके क्रोधसे भस्म ही हो जाओगे।' सूरदासजी कहते हैं (राक्षसीकी बात सुनकर रावण बोला—) 'यदि श्रीजानकीजी ही अपने पातिव्रतसे विचलित हो जायँ तो फिर भगवान् किसकी सम्हाल करेंगे ? (श्रीजानकीजीकी शक्ति एवं पातिव्रतके बलसे ही तो वे जगत्पालक हैं।) किंतु मेरे-जैसे मायामोहित महापापीको दूसरा कौन क्रोध करके (भवसागरसे) तार सकता है ? ये श्रीजानकी जगज्जननी हैं और वे श्रीरघुनाथजी स्वामी हैं; मैं तो इनका सेवक द्वारपाल हूँ। श्रीसीतारामका मिलन हुए बिना मुझे संसार-सागरसे पार कौन उतारेगा ? (इसलिये मैंने तो अपने उद्धारके लिये ही श्रीजानकीजीका हरण किया है।)'

रावण-वचन सीताके प्रति

राग मारू

[७०]

जनकसुता, तू समुझि चित्त मैं, हरषि मोहि तन हेरी।
चौदह सहस किंनरी जेती, सब दासी हैं तेरी॥

कहै तौ जनक-गेह दै पठवौं, अरध लंक कौ राज।
तोहि देखि चतुरानन मोहै, तू सुंदरि-सिरताज॥
छाँड़ि राम तपसी के मोहै, उठि आभूषन साजु।
चौदह सहस तिया मैं तोकौं, पटा बधाऊँ आजु॥
कठिन बचन सुनि स्रवन जानकी,सकी न बचन सँभारि।
तृन-अंतर दै दृष्टि तरौंधी, दियौ नयन-जल ढारि॥
पापी! जाउ जीभ गरि तेरी, अजुगुत बात बिचारी।
सिंह कौ भच्छ सृगाल न पावै, हौं समरथ की नारी॥
चौदह सहस सैन खरदूषन, हती राम इक बान।
लछिमन-राम-धनुष सन्मुख परि, काके रहिहैं प्रान॥
मेरौ हरन मरन है तेरौ, स्यौं कुटुंब-संतान।
जरिहै लंक कनकपुर तेरौ, उदवत रघुकुल-भान॥
तोकौं अवध कहत सब कोऊ, तातैं सहियत बात।
बिना प्रयास मारिहौं तोकौं, आजु रैनि, कै प्रात॥
यह राकस की जाति हमारी, मोह न उपजै गात।
परतिय रमैं, धर्म कहा जानैं, डोलत मानुष खात॥
मन मैं डरी,कानि जिनि तोरै,मोहि अबला जिय जानि।
नख-सिख-बसनसँभारि,सकुचतनु, कुच-कपोल गहिपानि॥
रे दसकंध! अंधमति, तेरी आयु तुलानी आनि।
'सूर' राम की करत अवज्ञा, डारैं सब भुज भानि॥

(स्वयं रावण अशोक-वाटिकामें आया और श्रीजानकीजीसे बोला—) जनकनन्दिनी! तुम अपने चित्तमें विचार करके (अपना हित-अहित) समझ लो और हर्षपूर्वक मेरी ओर देखो। (मेरे यहाँ) जितनी भी किन्नरियाँ हैं, वे सब चौदह हजार किन्नरियाँ तुम्हारी दासी हैं। तुम कहो तो तुम्हें लंकाका आधा राज्य देकर महाराज जनकके घर भेज दूँ। तुम्हें देखकर

तो ब्रह्माजी भी मोहित हो जायँगे, तुम सुन्दरियोंके मस्तकके मुकुटके समान (सर्वश्रेष्ठ) हो। अतः तपस्वी रामका मोह छोड़ दो, उठो ! आभूषण (अपने अङ्गोंमें) सजाओ। अपनी चौदह सहस्र रानियोंमें आज ही तुमको मैं पट्ट-महिषीका पद दे दूँ।' ऐसी कठोर बातें कानों-से सुनकर श्रीजानकीजी अपनी वाणीको रोक न सकीं। उनके नेत्रोंसे अश्रु ढुलकने लगे; नीची दृष्टि किये, बीचमें एक तिनका रखकर बोलीं—'अरे पापी ! तेरी जिह्वा गल जाय, जो तूने ऐसी मर्यादाहीन बातका विचार किया है। सिंहके भोजनको सियार नहीं पा सकता, मैं सर्व-समर्थकी स्त्री हूँ (यह भूलता क्यों है) ! खर-दूषणकी चौदह सहस्र सेना श्रीरामने एक ही बाणसे मार दी, उन श्रीराम और लक्ष्मणके धनुषके सम्मुख पड़नेपर किसके प्राण बच सकते हैं ? मेरा हरण तो समस्त कुटुम्ब और पुत्र-पौत्रादिके साथ तेरी मृत्यु (का कारण) है। श्रीरघुकुलके सूर्यके उदय होते ही (श्रीरघुनाथजीके यहाँ पहुँचते ही) तेरी स्वर्णपुरी लङ्का भस्म हो जायगी।' (यह सुनकर रावण बोला—) तुम्हें सब लोग अवध्य बतलाते हैं (सभी कहते हैं कि सीता मार डालने योग्य नहीं हैं), इसीसे मैं तुम्हारी बात सहता हूँ; मैं तो बिना किसी परिश्रमके तुम्हें आज रातमें ही या कल सवेरे मार डालूँगा। यह हमारी जाति तो राक्षसकी है, किसीके शरीरसे हमें मोह नहीं हुआ करता (स्वभावसे हमलोग निर्दय हैं)। हम तो परस्त्रियोंसे विहार करते हैं, धर्मकी बात हम क्या जानें। हम तो मनुष्योंका भक्षण करते हुए घूमते हैं।' (रावणकी यह बात सुनकर श्रीजानकीजी) अपने मनमें डरीं कि मुझे अपने मनमें अबला समझकर यह संकोच न तोड़ दे (और बल-प्रयोगपर उतारू न हो जाय।) पैरसे सिरतक उन्होंने वस्त्रको सम्हाल लिया (सब अङ्ग पूर्णतः ढक लिये); शरीर समेट लिया और वक्षःस्थल तथा मुख भुजाओंमें छिपा लिये। सूरदासजी कहते हैं—(श्रीजानकीजी बोलीं—) 'अरे दशानन ! तेरी बुद्धि अंधी हो गयी है, तेरी आयु पूरी होनेको आ गयी है (तू मरनेवाला है)। तू श्रीरामका अपमान करता है ! वे तेरी सभी भुजाओंको काट डालेंगे।'

रावण-त्रिजटा-संवाद

राग मारू

[७१]

अरे सुनि सीता कत लायौ ।
मोकौं यह समुझि आई है, तेरौ मन अघ छायो ॥
बार-बार त्रिजटी कहै, सुनि रावन मतिमंद ।
जनक-सुता-तन गारिहै तोरन कौं दसकंध ॥
गुपत मतौ रावन कहै, तूँ त्रिजटी सुनि आइ ।
जौं पै सीता सत टरै, 'सूर' तीन भुवन जरि जाइ ॥

'अरे सुन ! श्रीसीताजीको हरण करने तू क्यों ले आया ? मेरा ऐसा विचार है कि तेरे मनमें पाप भर गया है ।' इस प्रकार बार-बार त्रिजटा कहती है— 'अरे मन्दबुद्धि रावण ! सुन, श्रीजनकनन्दिनी अपना शरीर (शोकमें) गला देंगी (पर तुझे स्वीकार नहीं करेंगी) और तेरे दसों कंधोंको तोड़ने (दसों मस्तकोंके कटने) का कारण बनेंगी ।' सूरदासजी कहते हैं— तब यह अपना गुप्त विचार रावण कहने लगा— 'अरी त्रिजटा ! तू यहाँ आकर सुन; (मैं जानता हूँ कि) यदि श्रीजानकी-जी अपने पातिव्रतसे डिग जायँ तो तीनों लोक भस्म हो जायँगे (उनके पातिव्रतके प्रभावसे ही त्रिभुवन स्थित है) ।'

त्रिजटा-सीता-संवाद

राग मारू

[७२]

रावन सोच करत मन माहीं ।
सेन भोरि मंदिर कौं उलस्यौ, गयौ त्रिजटा के पाहीं ॥
दस सिर बदन सिधारियौ, बहु राछसि सुविचारि ।
कछु छल-बल करि देखिहौं जौ मानै सीता नारि ॥

त्रिजटी कहै सुबानि सौं मोहि रजायस होइ।
जनक-सुता पतिबर्त तैं और न टारै कोइ॥
हरषवंत त्रिजटो भई गई सिया कैं पास।
पूरन सुखरू पाइहै सो लाये छाँड़ि उसास॥
तिबई दुखित बई लहै देखौ मनहिं बिचारि।
जोबन चंचल थिर नहीं ज्यौं कर-अँजुरी-बारि॥
बलकल पहरन, फल भखन, त्रिन-संथर श्रीराम।
तिनहीं कहा सुख हेत सौं असुर-सुंदरि सौं काम॥
सिया-बचन त्रिजटी सुनै, अस नहिं भाष बहोरि।
'सूर' सिंघ ही सिर दियो जंबुक-कोटि करोरि॥

रावण (अपने) मनमें चिन्ता करता हुआ (अशोकवाटिकासे) भवनको लौटा, उसने (साथकी) सेना (भी) लौटा ली और स्वयं त्रिजटाके पास गया । दशानन (अपने भवनमें) लौटकर बहुत-सी राक्षसियोंके साथ विचार करने लगा—'कुछ छल-बल करके देखूँगा, कदाचित् श्रीजानकी-जैसी (पतिव्रता) स्त्री भी (मेरी बात) मान जाय।' यह सुनकर (इस आशासे कि इसी बहाने श्रीजानकीजीके पास जानेका अवसर मिलेगा) त्रिजटा बड़ी नम्रतासे बोली—'मुझे राजाज्ञा मिलनी चाहिये। श्रीजनकनन्दिनीको पातिव्रतसे दूसरा कोई हटा नहीं सकता।' (रावणकी आज्ञा पाकर) त्रिजटा प्रसन्नतापूर्वक श्रीसीताजीके पास गयी (और बोली—) आप यह बार-बार दीर्घश्वास लेना छोड़ दें, आपको पूर्ण आनन्दघन मिलेंगे।' (श्रीजानकीजी कहने लगीं—) 'त्रिजटा ! अपने बोये (किये) का फल पाकर दुखित हो रही हूँ, यह अपने मनमें विचार करके देख लो।' (फिर त्रिजटा बोली—) 'यह युवावस्था तो स्थिर है नहीं, इस प्रकार चञ्चल (नाशवान्) है जैसे अञ्जलिमें लिया जल और श्रीराम वल्कल (पेड़ोंकी छाल) पहिनते हैं, (वनके) फल खाते हैं तथा तृणकी साथरीपर (तृण बिछाकर) सोते हैं। उनसे प्रेम करके

तुम्हें क्या सुख मिलेगा ? (रावणको स्वीकार करके) असुर-सुन्दरियोंके समान तुम भी सब कामोपभोग प्राप्त करो।' सूरदासजी कहते हैं—त्रिजटाकी बात सुनकर श्रीजानकीजी बोलीं—'इस प्रकारकी बात फिर मत कहना ! (संसारमें रावण-जैसे) करोड़ों सियारोंके झुंड हैं; किंतु मैंने तो अपना मस्तक (श्रीरामरूप) सिंहको ही दिया है (मेरे तो एकमात्र वे ही स्वामी हैं) ।'

[७३]

त्रिजटा सीता पै चलि आई ।
मन मैं सोच न करि तू माता, यह कहि कै समुझाई ॥
नलकूबर कौ साप रावनहि, तो पर बल न बसाई ।
'सूरदास' मनु जरी सजीवनि, श्रीरघुनाथ पठाई ॥

त्रिजटा सीताजीके पास (बहुत निकट) चली आयी और यह समझाकर (धीरेसे जिसमें और कोई न सुन ले) कहने लगी—'माता ! तुम मनमें कोई चिन्ता मत करो। रावणको (कुबेरपुत्र) नलकूबरका शाप है (कि किसी नारीसे बलात्कार करनेका प्रयत्न करते ही वह मर जायगा); अतः तुमपर उसका बल चल नहीं सकता।' सूरदासजी कहते हैं—(त्रिजटाकी यह बात सीताजीको ऐसी प्रिय लगी) जैसे श्रीरघुनाथजीने संजीवनी बूटी भेज दी हो।

राग कान्हरौ

[७४]

धनि जननी ! तेरौ ब्रत आख्यौ ।
तूँ हौं जानत हौं- यहै भरौसौ, तेरौ पन तेरैं सत राख्यौ ॥
फिरि त्रिजटा आई सीता पैं, रावन सौं मुख कोंहि ।
तूँ सीता ब्रत राखिये, राम मिलैगो तोहि ॥

सेत छत्र रघुनाथ सिर, बैठे अद्भुत पाट।
सेतै चंदन जानकी! सोभित माथ लिलाट॥
यह सुपिनौ मोकौं भयो, अब साखी दीजै नाहि।
'सूरदास' रघुनाथ सौं रावन जैहै न्हाटि॥

सूरदासजी कहते हैं—त्रिजटा फिर रावणसे क्रोधित मुख करके (रुष्ट होकर) सीताजीके पास आ गयी (उसके समझानेसे रावणने हठ नहीं छोड़ा था। श्रीजानकीजीसे वह बोली—) 'माता! तुम धन्य हो। तुम्हारा पातिव्रत प्रशंसनीय है। तुम विश्वास करो, मैं यह जानती हूँ कि तुम्हारे प्रण (सतीत्वपर दृढ़ रहनेके आग्रह) की रक्षा तुम्हारे पातिव्रतने ही की है। माता सीता! (आगे भी) तुम अपने सतीत्व-की रक्षा करना, (निश्चय) श्रीराम तुम्हें मिलेंगे; क्योंकि मुझे ऐसा स्वप्न दिखायी पड़ा है कि श्रीरघुनाथजी अद्भुत सिंहासनपर बैठे हैं, उनके मस्तकपर श्वेत छत्र लगा है और उनके ललाटपर श्वेत चन्दनका ही तिलक शोभित है। श्रीजानकीजी! अब और कोई प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है, श्रीरघुनाथजीकी शपथ! रावण नष्ट हो जायगा।'

[७५]

सो दिन त्रिजटा! कहु कब ऐहै?
जा दिन चरन-कमल रघुपति के हरषि जानकी हृदय लगैहै॥
कबहुँक लछिमन पाइ सुमित्रा, माइ-माइ कहि मोहि सुनैहै।
कबहुँक कृपावंत कौसिल्या, बधू-बधू कहि मोहि बुलैहै॥
जा दिन कंचनपुर प्रभु ऐहैं, बिमल ध्वजा रथ पर फहरैहै।
ता दिन जनम सफल करि मानौं, मेरी हृदय-कालिमा जैहै॥
जा दिन राम रावनहि मारैं ईसहि लै दस सीस चढ़ैहैं।
ता दिन 'सूर' राम पै सीता सरबस वारि बधाई दैहै॥

सूरदासजी कहते हैं—(यह सुनकर श्रीजानकीजी बोलीं—) 'त्रिजटा! वह दिन कब आयेगा, जिस दिन जानकी हर्षपूर्वक श्रीरघुनाथजीके चरण-

कमलोंको अपने हृदयसे लगायेगी ? क्या कभी लक्ष्मण अपनी माता सुमित्राके समान मुझे पाकर 'माँ ! माँ !' इस प्रकार कहकर मुझे पुकारेंगे ? क्या कभी कृपामयी कौसल्या माता मुझे 'बहू ! बहू !' कहकर पुकारेंगी ? जिस दिन मेरे स्वामी इस स्वर्णनगरीमें आयेंगे और उनके रथपर (युद्धमें विजयकी) निर्मल ध्वजा उड़ेगी, उसी दिन मेरे हृदयका शोक दूर होगा और मैं अपने जीवनको सफल समझूँगी । जिस दिन श्रीराम रावणको मारकर उसके दसों मस्तक भगवान् रुद्रको चढ़ा देंगे, उसी दिन सीता श्रीरामपर अपना सर्वस्व न्योछावर करके (उन्हें विजयकी) बधाई देगी ।'

राग सारंग

[७६]

मैं तो राम-चरन चित दीन्हौ ।
मनसा, बाचा और कर्मना, बहुरि मिलन कौ आगम कीन्हौ ॥
डुलै सुमेरु, सेष-सिर कंपै, पच्छिम उदै करै बासर-पति ।
सुनि त्रिजटा, तौहूँ नहिं छाड़ौं, मधुर-मूर्ति रघुनाथ-गात-रति ॥
सीता करति बिचार मनहिं-मन, आजुकाल्हिकोसलपति आवैं ।
'सूरदास' स्वामी करुनामय,सो कृपालु मोहि क्यौं बिसरावैं ! ॥

(श्रीजानकीजी कहती हैं–) 'मन, वाणी और कर्मसे (सब प्रकार) मैंने तो श्रीरामके चरणोंमें अपना चित्त लगा दिया है और उनसे मिलनेकी आशा कर रही हूँ । त्रिजटा ! सुन—चाहे सुमेरु हिलने लगे, शेषनागका मस्तक काँपने लगे और सूर्य पश्चिममें उगने लगें, तब भी मधुरमूर्ति श्रीरघुनाथजीके श्रीविग्रहसे प्रेम करना मैं छोड़ नहीं सकती ।' सूरदासजी कहते हैं—मन-ही-मन श्रीजानकीजी विचार करती हैं—'श्रीरघुनाथजी आज-कलमें ही आनेवाले हैं । मेरे स्वामी तो करुणामय हैं, वे कृपालु भला, मुझे विस्मृत कैसे कर सकते हैं ।'

त्रिजटा-स्वप्न, हनुमान्-सीता-मिलन

राग धनाश्री

[७७]

सुनि सीता ! सपने की बात ।
रामचंद्र-लछिमन मैं देखे, ऐसी विधि परभात ॥
कुसुम-बिमान बैठि बैदेही, देखी राघव पास ।
स्वेत छत्र रघुनाथ-सीस पर, दिनकर-किरन-प्रकास ॥
भयौ पलायमान दानवकुल, व्याकुल सायक-त्रास ।
पजरत धुजा, पताक, छत्र, रथ, मनिमय कनक-अवास ॥
रावन-सीस पुहुमि पर लोटत, मन्दोदरि बिलखाइ ।
कुंभकरन-तन पंक लगाई, लंक बिभीषन पाइ ॥
प्रगट्यौ आइ लंक दल कपि कौ, फिरि रघुबीर दुहाइ ।
या सपने कौ भाव सिया सुनि, कबहुँ बिफल नहिं जाइ ॥
त्रिजटा-बचन सुनत बैदेही, अति दुख लेति उसास ।
हा हा रामचंद्र ! हा लछिमन ! हा कौसिल्या सास !
त्रिभुवन-नाथ नाह जो पावै, सहै सो क्यों बनबास ?
हा कैकई ! सुमित्रा जननी ! कठिन निसाचर-त्रास ॥
कौन पाप मैं पापिनि कीन्हौ, प्रगट्यौ जो इहिं बार ।
धिक-धिक जीवन है, अब यह तन, क्यौं न होइ जरि छार ॥
द्वै अपराध मोहि ये लागे, मृग हित दियौ हथियार ।
जान्यौ नहीं निसाचर कौ छल, नाघ्यौ धनुष-प्रकार ॥
पंछी एक सुहृद जानत हौं, कर्‌यौ निसाचर भंग ।
तातैं बिरमि रहे रघुनन्दन, करि मनसा-गति पंग ॥
इतनौ कहत नैन-उर फरके, सगुन जनायौ अंग ।
आजु लहौं रघुनाथ-सँदेसौ, मिटै बिरह-दुख-संग ॥

तिहिं छिन पवन-पूत तहँ प्रगट्यो, सिया अकेली जानि।
"श्रीदसरथकुमार दोउ बंधू, धरें धनुष-सर पानि॥
प्रिया-बियोग फिरत मारें मन, परें सिंधु-तट आनि।
ता सुंदरि हित मोहि पठायौ, सकौं न हौं पहिचानि॥"
बारंबार निरखि तरुवर तन, कर मोड़ति पछिताइ।
दनुज, देव, पसु, पच्छी को तू, नाम लेत रघुराइ?
बोल्यौ नहीं, रह्यौ दुरि बानर, द्रुम मैं देहि छपाइ।
कै अपराध ओड़ि तू मेरौ, कै तू देहि दिखाइ॥
तरुवर त्यागि चपल साखामृग, सन्मुख बैठ्यो आइ।
माता! पुत्र जानि दे उत्तर, कहु, किंहिं बिधि बिलखाइ?
किंनर-नाग-देव-सुर-कन्या, कासौं हुति उपजाइ?
कै तू जनक-कुमारि जानकी, राम-बियोगिनि आइ?
राम-नाम सुनि उत्तर दीन्हौ, पिता-बंधु मम होहि।
मैं सीता, रावन हरि ल्यायौ, त्रास दिखावत मोहि॥
अब मैं मरौं, सिंधु मैं बूड़ौं, चित मैं आवै कोह।
सुनो बच्छ! धिक जीवन मेरौ, लछिमन-राम-बिछोह॥
कुसल जानकी! श्रीरघुनन्दन, कुसल लच्छिमन भाइ।
तुम हित नाथ कठिन ब्रत कीन्हौ, नहिं जल-भोजन खाइ॥
मुरै न अंग कोउ जो काटै, निसिबासर-सम जाइ।
तुम घट प्रान देखियत सीता, बिना प्रान रघुराइ॥
बानर बीर चहूँ दिसि धाए, ढूँढे गिरि-बन-झार।
सुभट अनेक सबल दल साजे, परे सिंधु के पार॥
उद्यम मेरौ सफल भयौ अब, तुम देख्यौ जो निहार।
अब रघुनाथ मिलाऊँ तुम कौं सुंदरि! सोक निवारि॥

यह सुनि सिय-मन संका उपजी, रावन-दूत बिचारि।
छल करि आयौ निसिचर कोऊ, बानर-रूपहि धारि॥
स्रवन मूँदि, मुख आँचर ढाँप्यौ, अरे निसाचर, चोर!
काहे कौं छल करि-करि आवत, धर्म बिनासन मोर!
पावक परौं, सिंधु महँ बूड़ौं, नहिं मुख देखौं तोर।
पापी क्यौं न पीठि दै मोकौं, पावन-सरिस कठोर॥
जिय अति डरयौ, मोहि मति सापै, व्याकुल बचन कहंत।
मोहि बर दियौ सकल देवनि मिलि, नाम धरयौ हनुमंत॥
अंजनि-कुँवर, राम कौ पायक, ताकैं बल गजंत।
जिहिं अंगद-सुग्रीव उबारे, बध्यौ बालि बलवंत॥
लेहु मातु! सहिदानि मुद्रिका, दई प्रीति करि नाथ।
सावधान ह्वै सोक निवारहु, ओड़हु दच्छिन हाथ॥
खिन मुँदरी, खिनहीं हनुमत सौं, कहति बिसूरि-बिसूरि।
कहि मुद्रिके! कहाँ तैं छाँड़े, मेरे जीवन-मूरि?
प्रभु सौं पूछ! सँदेसौ इतनौ, जब हम वे इक थान।
सोवत काग छुयौ तन मेरौ, बरहहिं कीनौ बान॥
फोरयौ नयन, काग-नहिं छाँड़यौ, सुरपति के बिदमान।
अब वह कोप कहाँ रघुनंदन, दससिर-बेर बिलान?
निकट बुलाइ,, बिठाइ, निरखि मुख, अंचर लेत बलाइ।
चिरजीवौ सुकुमार पवन-सुत, गहति दीन ह्वै पाइ॥
बहुत भुजनि बल होइ तुम्हारे, ये अमृत फल खाहु।
अब की बेर 'सूर' प्रभु मिलवहु, बहुरि प्रान किन जाहु॥

(त्रिजटा कहती है—) 'सीताजी! स्वप्नकी बात सुनो। मैंने सबेरेके समय इस प्रकारका स्वप्न देखा है—मैंने (स्वप्नमें) श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणको देखा है तथा श्रीरामके पास पुष्पोंके विमानमें बैठी श्रीजानकीजी! तुम्हें भी देखा है। श्रीरघुनाथजीके मस्तकपर श्वेत छत्र लगा था, जिसका प्रकाश सूर्यकी किरणोंके समान था। (श्रीरामचन्द्रजीके)

बाणोंके भयसे व्याकुल होकर दानवोंकी सेना भाग रही थी। रावणकी ध्वजा-पताकाएँ, छत्र, रथ तथा मणि-जटित सोनेका महल जल रहे थे। रावणके (कटे हुए) मस्तक पृथ्वीपर लुढ़क रहे थे और रानी मन्दोदरी विलाप कर रही थी। कुम्भकर्णने शरीरमें कीचड़ लगा रखी थी। लङ्काका राज्य विभीषण पा गये थे। लङ्कामें आकर वानरोंका दल प्रगट हो गया और श्रीरघुनाथजीकी दुहाई फिर गयी (विजय-घोषणा हो गयी)। श्रीसीताजी ! सुनो—इस स्वप्नका जो तात्पर्य है, वह कभी व्यर्थ नहीं जायगा।' त्रिजटाकी बात सुनकर श्रीजनक-नन्दिनीने अत्यन्त दुःखसे लंबी श्वास ली (और कहा—)'हा (स्वामी) श्रीराम ! हा लक्ष्मण ! हा सास कौसल्या ! जिसे त्रिभुवननाथ स्वामी मिले हों, वह क्योंकर वनवास (का कष्ट) सह सकती है ! हा कैकेयी ! हा सुमित्रा माता ! मुझे तो राक्षसका बड़ा कठिन भय प्राप्त हो रहा है। (पता नहीं) मुझ पापिनीने कौन-सा पाप किया था, जो इस बार (फल देनेके लिये) प्रकट हुआ है। मेरे जीवनको धिक्कार है। मेरा यह शरीर अब जलकर भस्म क्यों नहीं हो जाता ? मुझे तो अपने ये दो अपराध जान पड़ते हैं— (प्रथम तो) स्वर्ण-मृगको मारनेके लिये मैंने प्रभुको हथियार दिया (मृगको मारनेका आग्रह किया) और (दूसरे) मैं राक्षस (रावण) का छल न समझ सकी, सुतरां (लक्ष्मणद्वारा) धनुषसे खींची रेखाका उल्लङ्घन करके बाहर निकल आयी। एक पक्षी (गीध) को मैं अपना सुहृद् (हितैषी) जानती हूँ। राक्षसने उसका अङ्ग-भङ्ग कर दिया (पक्ष काट दिये)। (लगता है कि भक्त-पक्षीका भी मुझसे अपराध हो गया।) इसीसे श्रीरघुनाथ यहाँ आनेसे रुके हुए हैं, अपने मनकी गति उन्होंने रोक ली है (अन्यथा इच्छा करते ही वे यहाँ पहुँचनेमें समर्थ हैं)।' इतना कहते ही (बायाँ) नेत्र और वक्षःस्थल फड़क उठे, अङ्गोंने शुभ शकुन प्रकट किया। (इससे श्रीजानकीजीने समझ लिया) 'आज मैं श्रीरघुनाथजीका संदेश पाऊँगी, वियोगके दुःखका सङ्ग छूट जायगा।' उसी समय श्रीजानकीजीको अकेली समझकर श्रीहनुमान्‌जीने (बोलकर) वहाँ अपनेको प्रकट किया (वे साक्षात् नहीं प्रकट हुए, डालपर छिपे-छिपे ही बोले—) 'महाराज दशरथके पुत्र दोनों भाई हाथोंमें धनुष-बाण

लिये तथा अपनी प्रियतमाके वियोगसे मनमारे हुए (दुखित) समुद्र-के किनारे (सागर-तटीय प्रदेशमें) आकर ठहरे हैं। अपनी उसी सुन्दरी पत्नीके लिये मुझे उन्होंने भेजा है; किंतु मैं (उनकी भार्याको) पहचाननेमें असमर्थ हूँ।' (यह शब्द सुनकर श्रीजानकी) बार-बार वृक्षकी ओर देखती हैं तथा हाथ मलकर पश्चात्ताप करती हैं। (उन्होंने कहा–) 'राक्षस, देवता, पशु या पक्षी तू कौन है, जो श्रीरघुनाथका नाम ले रहा है ?' (इसपर भी) हनुमान्‌जी बोले नहीं, वृक्षमें अपने शरीरको छिपाये वे छिपे ही रहे। (तब श्रीजानकीजीने कहा–) 'या तो तू मेरे शापको स्वीकार कर या दिखायी दे ! (अर्थात् तू दिखायी नहीं देगा तो मैं शाप दे दूँगी ।)।' (यह सुनते ही) चञ्चल वानररूपधारी हनुमान्‌जी वृक्षको छोड़कर सम्मुख आकर बैठ गये (और बोले—) 'माता ! तुम मुझे अपना पुत्र समझकर मेरी बातका उत्तर दो। बताओ, तुम इस प्रकार क्यों रो रही हो ? किन्नर, नाग, गन्धर्व, देवता आदिमें तुम किसकी कन्या हो ? किससे तुम्हारी उत्पत्ति हुई थी ? अथवा तुम श्रीरामकी वियोगिनी पत्नी महाराज श्रीजनकजीकी पुत्री श्रीजानकी हो ?' श्रीरामका नाम सुनकर (श्रीजानकीजीने) उत्तर दिया—'तुम (चाहे जो हो) मेरे लिये पिता और भाईके समान हो। मेरा नाम सीता है। रावण मुझे चुराकर (यहाँ) ले आया है और अब मुझे (अनेक प्रकारसे) भय दिखलाता है। अब मेरे चित्तमें क्रोध आता है कि समुद्रमें डूबकर मर जाऊँ। हे पुत्र ! सुनो, श्रीराम-लक्ष्मणके वियोगमें मेरे जीवित रहनेको धिक्कार है।' (इतनी बात सुनकर हनुमान्‌जी बोले—) 'माता जानकी ! श्रीरघुनाथजी कुशलपूर्वक हैं, भैया लक्ष्मणजी भी कुशलपूर्वक हैं। आपके लिये प्रभुने बड़ा कठिन व्रत ले रखा है, वे न जल पीते हैं न भोजन करते हैं। उनका शरीर ऐसा (निर्जीवप्राय) हो रहा है कि कोई अङ्गोंको काटे तो भी वह मुड़ेगा (हिलेगा) नहीं। रात्रि भी दिनके समान (जागते हुए) ही बीत रही है। श्रीजानकीजी ! उनके प्राण तो तुम्हारे शरीरमें दिखायी पड़ते हैं, श्रीरघुनाथजी तो बिना प्राणके हो रहे हैं। अनेक वीर वानर चारों दिशाओंमें दौड़ रहे हैं; वे पर्वतों, वनों एवं झाड़ियोंमें तुमको ढूँढ़ रहे हैं।

अनेक श्रेष्ठ वीर (अपने साथ) पूरी सेना सजाये समुद्रके उस पार पड़े हैं। मेरा परिश्रम अब सफल हो गया जो (यहाँ आकर) मैंने तुम्हारा भलीभाँति दर्शन कर लिया। त्रिभुवनसुन्दरी माता ! अब शोक दूर करो, मै तुम्हें श्रीरघुनाथजीसे मिला दूँगा।' (हनुमान्‌जीकी) यह (बात) सुनकर उन्हें रावणका दूत समझकर श्रीसीताजीके मनमें संदेह उत्पन्न हुआ कि यह कोई राक्षस छलसे वानरका रूप बनाकर यहाँ आया है। उन्होंने कान बंद कर लिये, अञ्चलसे मस्तक ढक लिया (और बोलीं—) 'अरे राक्षस ! अरे चोर ! मेरा धर्म नष्ट करनेके लिये तू क्यों बार-बार यहाँ छल करके आता है ? मैं अग्निमें जल जाऊँगी, समुद्रमें डूब जाऊँगी; किंतु तेरा मुख नहीं देखूँगी। अरे पापी ! मुझसे पीठ क्यों नहीं दे लेता ? (मेरी ओरसे मुँह क्यों नहीं मोड़ लेता ?)तेरा हृदय पत्थरके समान कठोर है।' (श्रीजानकीजीकी बातें सुनकर हनुमान्‌जी) हृदयमें डरने लगे कि ये कहीं मुझे शाप न दे दें। (और इस प्रकार) व्याकुलताभरे वचन बोले—'सभी देवताओंने मिलकर मुझे वरदान दिया है और मेरा नाम हनुमान् रक्खा है। मै माता अञ्जनाका पुत्र हूँ और श्रीरामका दूत हूँ। उनके बलसे ही मैं गर्जना करता हूँ (मुझमें अपना कोई बल नहीं है)। जिस प्रभुने अङ्गद और सुग्रीवकी रक्षा की तथा बलवान् वालीको मार दिया, हे माता ! उसी प्रभुने प्रेमपूर्वक अपनी अँगूठी मुझे दी है, इस प्रमाण-चिह्नको तुम लो—(अपने) दाहिने हाथमें (इसे) ले लो। (अब) सावधान होकर शोकको दूर भगा दो।' (मुद्रिका लेकर श्रीजानकीजी) क्षणमें उस अगूँठीको देखती हैं और क्षणमें हनुमान्‌जीकी ओर देखती हैं। वे रो-रोकर कहने लगीं—'मुद्रिके ! बता तो मेरे जीवनकी जड़ी (मेरे जीवनस्वरूप) प्रभुको तूने कहाँ छोड़ा ? प्रभुसे मेरा यह संदेश पूछना कि जब मै और वे एक ही स्थानपर विश्राम कर रहे थे, तब एक कौएने मेरे शरीरको छू दिया था, इसपर प्रभुने कुशका बाण बना लिया और देवराज इन्द्रके रहते हुए काग (बने इन्द्रपुत्र जयन्त) को छोड़ा नहीं; उसका (एक) नेत्र फोड़ दिया। श्रीरघुनाथजीका वह

क्रोध रावणकी बार कहाँ नष्ट हो गया ?' सूरदासजी कहते हैं—(श्रीजानकीजीने हनुमान्‌जीको) पास बुलाकर बैठा लिया, उनका मुख देखकर (पुत्रके समान स्नेहसे) अञ्चलसे बलैया लेने (मुख पोंछने) लगीं। अत्यन्त दीन होकर उनके पैर पकड़ने लगीं और बोलीं—'सुकुमार पवनकुमार! चिरजीवी हो! तुम्हारी भुजाओंमें बहुत बल हो! ये (उपवनके) अमृतके समान फल खाओ। इस बार मुझे स्वामीसे मिला दो; फिर प्राण क्यों न चले जायँ।'

हनुमान्‌द्वारा सीता-समाधान

राग मारू

[७८]

जननी! हौं अनुचर रघुपति कौ।
मति माता करि कोप सरापै, नहिं दानव ठग मति कौ॥
आज्ञा होइ, देउँ कर-मुँदरी, कहौं संदेसौ पति कौ।
मति हिय बिलख करौ सिय, रघुबर हतिहैं कुल दैयत कौ॥
कहौ तो लंक उखारि डारि देउँ, जहाँ पिता संपति कौ।
कहौ तौ मारि-सँहारि निसाचर, रावन करौं अगति कौ॥
सागर-तीर भीर बनचर की, देखि कटक रघुपति कौ।
अबै मिलाऊँ तुम्हैं 'सूर' प्रभु, राम-रोष डर अति कौ॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीहनुमान्‌जी कहने लगे—) 'जननी! मैं श्रीरघुपतिका सेवक हूँ। माता! तुम क्रोध करके मुझे शाप मत दो, मैं ठग बुद्धिवाला (छली) राक्षस नहीं हूँ। तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं प्रभुकी अँगूठी तुम्हे दूँ और तुम्हारे पतिका संदेश कहूँ। श्रीजानकीजी! अपने हृदयको दुखी मत करो! श्रीरघुनाथजी राक्षस-कुलका नाश कर देगें। आप आज्ञा करें तो सम्पत्तिके पिता (रत्नाकर या लक्ष्मीजीके पिता) समुद्रमें लङ्काको उखाड़कर डाल दूँ। अथवा आप कहें तो मार-मारकर सारे राक्षसोंका संहार कर दूँ और रावणको नरक भेज दूँ। समुद्रके उस पार वानरोंकी भीड़ हो रही है, आप श्रीरघुनाथजीकी सेनाका निरीक्षण करें। मुझे तो

केवल श्रीरामजीके क्रोधका अत्यन्त भय है (वे कहीं रुष्ट न हो जायँ कि मैंने ही क्यों रावणको मार दिया) नहीं तो (मेरे साथ चलो, तुम्हें) अभी ही स्वामीसे मिला दूँ ।

[७९]

अनुचर रघुनाथ कौ. तव दरस काज आयौ ।
पवन-पूत कपिस्वरूप, भक्तनि मैं गायौ ॥
आयसु जो होइ जननि, सकल असुर मारौं ।
लंकेस्वर बाँधि राम-चरननि तर डारौं ॥
तपसी तप करैं जहाँ, सोई बन झाँखौं ।
जाकी तुम बैठी छाहँ, सोई द्रुम राखौं ॥
चढ़ि चलौ जो पीठि मेरी, अबहिं लै मिलाऊँ ।
'सूर' श्रीरघुनाथजू की, लीला नित्य गाऊँ ॥

(श्रीहनुमान्‌जी कहने लगे—) 'मैं श्रीरघुनाथजीका सेवक हूँ और आपका दर्शन करने यहाँ आया हूँ । भक्त लोग वानररूपधारी, पवन-पुत्र कहकर मेरा वर्णन करते हैं । माता ! यदि आपकी आज्ञा हो तो सभी राक्षसोंको मार डालूँ और रावणको बाँधकर श्रीरामके चरणोंमें डाल दूँ । जहाँ तपस्वी लोग तपस्या करते हैं, उसी (दण्डकवन) की झाँकी आपको करा दूँ । आप जिस वृक्षकी छायामें बैठी हैं; उसी वृक्षको (इस भूमिके साथ उठाकर) वहाँ रख दूँ । आप यदि मेरी पीठपर चढ़कर चलें तो अभी ले जाकर प्रभुसे मिला दूँ ।' श्रीसूरदासजी कहते हैं (जिनके ऐसे समर्थ दूत हैं, उन) श्रीरघुनाथजीकी लीलाका मैं नित्य गान करता हूँ ।

राग मलार

[८०]

बनचर ! कौन देस तें आयौ ?
कहाँ वे राम, कहाँ वे लछिमन, क्यौं करि मुद्रा पायौ ?

हौं हनुमंत, राम कौ सेवक, तुम सुधि लैन पठायौ।
रावन मारि, तुम्हें लै जातौ, रामाज्ञा नहिं पायौ॥
तुम जनि डरपौ मेरी माता, राम जोरि दल ल्यायौ।
'सूरदास' रावन कुल-खोवन सोवत सिंह जगायौ॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीजानकीजीने पूछा)—'हे कपि ! तुम किस देशसे आये हो ? वे श्रीराम कहाँ हैं ? वे लक्ष्मण कहाँ हैं ? (जिनका तुम वर्णन कर रहे हो।) यह अँगूठी तुमको कैसे प्राप्त हुई ?' (श्रीहनुमान्‌जी बोले—) 'मैं श्रीरामजीका सेवक हनुमान् हूँ। प्रभुने आपका समाचार जाननेके लिये मुझे भेजा है। मैं तो रावणको मारकर आपको ले जाता; किंतु श्रीरामकी ओरसे (ऐसा कार्य करनेकी) आज्ञा नहीं मिली है। मेरी माँ ! आप अब डरें मत ! श्रीराम सेना एकत्र करके आ ही गये हैं। रावण तो अपने कुलका नाश करनेवाला है, उसने सोते हुए सिंहको जगा दिया है।'

राग मारू

[८१]

तुम्हैं पहिचानति नाहीं बीर !
इन नैननि कबहूँ नहिं देख्यौ, रामचंद्र के तीर॥
लंका बसत दैत्य अरु दानव, तिन के अगम सरीर।
तोहि देखि मेरौ जिय डरपत, नैननि आवत नीर॥
तब कर काढ़ि अँगूठी दीन्ही, जिहिं जिय उपज्यौ धीर।
'सूरदास' प्रभु लंका कारन, आए सागर तीर॥

(श्रीजानकीजी हनुमान्‌जीसे कहती हैं–) 'भाई ! मैं तुम्हें पहिचानती नहीं। अपनी इन आँखोंसे तुम्हें कभी श्रीरघुनाथजीके पास देखा नहीं। लङ्कामें दैत्य और दानव (दिति एवं दनुके वंशज राक्षस) रहते हैं, उनके शरीर अगम्य हैं (मायासे वे कब कैसा रूप बना लेंगे, इसका कुछ ठिकाना नहीं)। (इसलिये) तुम्हें देखकर मेरा हृदय डर रहा है और मेरे नेत्रोंमें

जल भरा आता है।' सूरदासजी कहते हैं—तब (हनुमान्‌जीने) अँगूठी निकालकर दे दी, जिससे (श्रीजानकीजीके मनमें) धैर्य उत्पन्न हुआ। (श्रीहनुमान्‌जी बोले—)'प्रभु लङ्का-विजय करनेके लिये समुद्रके किनारे आ गये हैं।'

हनुमान्‌का सीताके प्रति

[८२]

जानकी ! हौं रघुपति कौ चेरौ।
बीरा दै रघुनाथ पठायौ, सोध करन कौं तेरौ॥
दस और आठ पदम बनचर लै चाहत हैं गढ़ घेरौ।
तिहारे कारन स्याम मनोहर, निकट दियौ है डेरौ॥
अब जिन सोच करौ मेरी जननी ! जनम-जनम हौं चेरौ।
'सूरदास'प्रभु तुम्हरे मिलन कौं, सारद रंक कित फेरौं॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीहनुमान्‌जीने कहा—) '(माता) सीताजी ! मै श्रीरघुनाथजीका सेवक हूँ। श्रीरघुनाथजीने मुझे बीड़ा (उत्तरदायित्व) देकर आपका पता लगानेके लिये भेजा है। अठारह पद्म वानर लङ्कादुर्गको (चढ़ाई करके) घेर ही लेना चाहते हैं। नव-घनसुन्दर श्रीरामजीने आपको छुड़ानेके लिये पास ही पड़ाव डाला है। प्रभु आपसे मिलनेको उत्सुक है, अतः मेरी माता ! अब आप चिन्ता मत करें। मैं तो जन्म-जन्मका आपका दास हूँ; मुझ कंगाल (दीन) से आप अपना शरद्-चन्द्रके समान मुख क्यों फेर रही हैं ?'

[८३]

जानकी ! मन संदेह न कीजै।
आए राम-लषन प्रिय तेरे, काहै प्राननि दीजै॥
जामवंत, सुग्रीव, बालिसुत, आए सकल नरेस।
मोहि कह्यौ तुम जाहु खबरि कौं, अब जिनि करहु अँदेस॥

रावन के दस सीस तोरि कै, कुटुँब समेत बहैहौं ।
तैंतिस कोटि देवता बंधन, तिनहि समस्त छुड़ैहौं ॥
आयसु दीजै मातु ! मोहि अब, जाइ प्रभुहि लै आऊँ ।
'सूरदास' हौं जाइ नाथ पहँ, तेरी कुसल सुनाऊँ ॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीहनुमान्‌जीने कहा—) '(माता) जानकी ! अपने मनमें संदेह मत करो। तुम्हारे प्रिय श्रीराम-लक्ष्मण पास आ गये हैं, अपने प्राण देनेकी बात क्यों सोचती हो। जाम्बवान्, अङ्गद, सुग्रीवादि सभी (वानर एवं ऋक्ष-) नरेश आ रहे हैं; उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि 'तुम समाचार लेने आगे जाओ !' अतः आप अब कोई चिन्ता न करें। रावणके दसों मस्तक काटकर कुटुम्बके साथ उसका नाश कर दूँगा और उसके बन्धनमें (परवशतामें) जो तैंतीस करोड़ देवता हैं, आपके साथ उन सबको भी (बन्धनसे) छुड़ा दूँगा। माता ! आप अब मुझे आज्ञा दें, मैं प्रभुके पास जाकर उन्हें आपका कुशल-समाचार सुनाऊँ और उन त्रिभुवननाथको यहाँ ले आऊँ।'

राग सारंग

[८४]

कहौ कपि ! कैसैं उतरे पार ?
दुस्तर अति गंभीर बारिनिधि, सत जोजन बिस्तार ॥
इत-उत दैत्य क्रुद्ध मारन कौं, आयुध धरैं अपार ।
हाटकपुरी कठिन पथ, बानर आए कौन अधार ?
राम-प्रताप, सत्य सीता कौ, यहै नाव-कनधार ।
तिहि अधार छिन मैं अवलंघ्यौ, आवत भई न बार ॥
पृष्ठभाग चढ़ि जनक-नंदिनी, पौरुष देखु हमार ।
'सूरदास' लै जाउँ तहाँ, जहँ रघुपति कंत तुम्हार ॥

[श्रीजानकीजीने पूछा—) 'कपि ! समुद्र तो सौ योजन विस्तृत, अत्यन्त गम्भीर और पार होनेमें दुष्कर है; तुम उसके पार कैसे उतरे ?

यहाँ (लङ्कामें) और वहाँ (मार्गमें) भी क्रोधमें भरे हथियार लिये अपार राक्षस मारनेको तत्पर रहते हैं। इस स्वर्णपुरी लङ्काका मार्ग (भी) बड़ा कठिन है, कपिवर ! तुम किस आधारसे यहाँ पहुँच गये ?' सूरदासजी कहते हैं—(यह सुनकर हनुमान्‌जी बोले—) 'श्रीरघुनाथजीका प्रताप और माता जानकीका सत्य (पातिव्रत)—ये ही मेरे लिये नौका और कर्णधार बने, उनके आधारसे (अर्थात् श्रीरघुनाथजीके प्रताप तथा आपके पातिव्रतके प्रभावसे) एक क्षणमें मैंने समुद्र पार कर लिया, मुझे आनेमें देर लगी ही नहीं। यदि आपको मेरा पराक्रम देखना हो तो श्रीजनकराजकुमारीजी ! आप मेरी पीठपर बैठ जायँ, जहाँ आपके स्वामी श्रीरघुनाथजी हैं, वहाँ मैं आपको ले जाऊँगा'

राग मारू

[८५]

हनुमत ! भली करी, तुम आए ।
बारंबार कहति बैदेही, दुख-संताप मिटाए ॥
श्रीरघुनाथ और लछिमन के समाचार सब पाए ।
अब परतीति भई मन मेरैं, संग मुद्रिका लाए ॥
क्यौं करि सिंधु पार तुम उतरे, क्यौं करि लंका आए ।
'सूरदास' रघुनाथ जानि जिय, तव बल इहाँ पठाए ॥

सूरदासजी कहते हैं कि श्रीजानकीजी (प्रसन्न होकर) बार-बार कहने लगीं—'हनुमान् ! तुम यहाँ आये, यह बड़ा अच्छा किया। तुमने मेरा सब दुःख और संताप दूर कर दिया। श्रीरघुनाथजी और लक्ष्मणलालके सब समाचार (तुमसे) प्राप्त हुए। अब मेरे मनमें (तुमपर) विश्वास हो गया है; (क्योंकि) तुम साथमें (प्रभुकी) अँगूठी ले आये हो ! भला, तुम समुद्र पार कैसे हुए ? (इस) लङ्कामें तुम कैसे आ गये ? (मैं समझ गयी) श्रीरघुनाथजीने अपने हृदयमें तुम्हारा बल समझकर ही तुम्हें यहाँ भेजा है।'

राग कान्हरौ

[८६]

सुनु कपि, वे रघुनाथ नहीं ?
जिन रघनाथ पिनाक पिता-गृह तोर्‍यौ निमिष मही ॥
जिन रघुनाथ फेरि भृगुपति-गति डारी काटि तहीं ।
जिन रघनाथ-हाथ खर-दूषन-प्रान हरे सरहीं ॥
कै रघुनाथ तज्यौ प्रन अपनौ, जोगिनि दसा गही ?
कै रघुनाथ दुखित कानन, कै नृप भए रघुकुलहीं ॥
क रघनाथ अतुल-बल राच्छस दसकंधर डरहीं ?
छाँड़ी नारि बिचारि पवन-सुत, लंक-बाग बसहीं ॥
कै हौं कुटिल, कुचील, कुलच्छनि, तजी कंत तबहीं ।
'सूरदास' स्वामी सौं कहियौ, अब बिरमाहिं नहीं ॥

सूरदासजी कहते हैं–(श्रीजानकीजी कहने लगीं–) 'सुनो हनुमान् ! अब वे श्रीरघुनाथजी नहीं रहे, जिन श्रीरघुनाथजीने मेरे पिताके घर (जनकपुरमें मेरे लिये) शंकरजीके पिनाक-धनुषको एक पलमें ही तोड़ दिया, जिन श्रीरघुनाथजीने उलटकर वहींपर परशुरामजीकी दिव्य गति काट दी (नष्ट कर दी), जिन श्रीरघुनाथजीने अपने हाथों एक ही बाणके द्वारा खर-दूषणके प्राण हरण कर लिये (वे श्रीरघुनाथजी अब बदल गये-से लगते हैं)। या तो श्रीरघुनाथजीने अपनी (दुष्ट-दलनकी) प्रतिज्ञा छोड़ दी और योगियोंकी (किसीको भी दण्ड न देने की) दशा (नियम) स्वीकार कर लिया है, अथवा श्रीरघुनाथजी वनमें दुखी हो गये हैं (हताश हो गये हैं), अथवा (अयोध्या लौटकर) रघुकुलके नरेश हो गये हैं, अथवा हे पवनकुमार ! श्रीरघुनाथजी अतुलनीय बली राक्षस रावण-से डरते हैं, विचार करके अपनी स्त्रीको (मुझे) उन्होंने छोड़ दिया है और (कहीं) लङ्काके ही बगीचोंमें रहते हैं, अथवा मेरे नाथने मुझे कुटिल, मलिन, तथा कुलक्षणी समझकर त्याग दिया है। तुम मेरे स्वामीसे कहना कि अब और विलम्ब न करें।'

राग सारंग

[८६]

जननी ! हौं रघुनाथ पठायौ ।
रामचंद्र आए की तुम कौं दैन बधाई आयौ ॥
हौं हनुमंत, कपट जिनि समझौ, बात कहत सतभाई ।
मुँदरी दूत धरी लै आगै, तब प्रतीति जिय आई ॥
अति सुख पाइ उठाइ लई, तब बार-बार उर भेंटै ।
ज्यौं मलयागिरि पाइ आपनी जरनि हृदै की मेटै ॥
लछिमन पालागन कहि पठयौ, हेत बहुत करि माता ।
दई असीस तरनि सन्मुख ह्वै, चिरजीवौ दोउ भ्राता ॥
बिछुरन कौ संताप हमारौ, तुम दरसन दै काट्यौ ।
ज्यौं रवि-तेज पाइ दसहूँ दिसि, दोष कुहर कौ फाट्यौ ॥
ठाढ़ौ बिनती करत पवन-सुत, अब जो आज्ञा पाऊँ ।
अपने देखि चले कौ यह सुख, उनहूँ जाइ सुनाऊँ ॥
कल्प समान एक छिन राघव, क्रम-क्रम करि हैं बितवत ।
तातैं हौं अकुलात, कृपानिधि ह्वैहैं पैंडौ चितवत ॥
रावन हति, लै चलौं साथ ही, लंका धरौं अपूठी ।
यातैं जिय सकुचात, नाथ की होइ प्रतिज्ञा झूठी ॥
अब ह्याँ की सब दसा हमारी, 'सूर' सो कहियो जाइ ।
बिनती बहुत कहा कहौं, जिहिं बिधि देखौं रघुपति-पाइ ॥

(श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं—) 'माता ! मुझे श्रीरघुनाथजीने भेजा है । मैं तुम्हें श्रीरामचन्द्रजीके आनेकी बधाई (शुभ समाचार) देने आया हूँ । मेरा नाम हनुमान् है, इसमें कपट मत समझो, मैं सच्चे भावसे सब बातें कह रहा हूँ ।' (यह कहकर) दूत श्रीहनुमान्‌जीने (श्रीरामकी दी हुई) अँगूठीको (श्रीजानकीजीके) आगे रख दिया, तब (उनके) मनमें विश्वास हुआ । अत्यन्त आनन्दित होकर उन्होंने

अँगूठी उठा ली और फिर बार-बार उसे हृदयसे लगाने लगीं, जैसे मलयागिरि चन्दनको पाकर (उससे) अपने हृदयकी जलन मिटा रही हों। (हनुमान्‌जीने फिर कहा–) माता ! लक्ष्मणजीने बड़े प्रेमसे चरण-वन्दन कहला भेजा है।' (यह सुनकर) सूर्यके सम्मुख होकर आशीर्वाद देते हुए बोलीं—'दोनों भाई चिरजीवी हों। (पवनकुमार !) तुमने दर्शन देकर मेरे वियोगके संतापको (उसी प्रकार) दूर कर दिया है, जैसे सूर्यके प्रकाशको पाकर दसों दिशाओंमें फैला कुहरेका दोष (अन्धकार) फट गया। (मिट गया) हो।' (संदेश देकर) पवनकुमार खड़े होकर प्रार्थना करने लगे—'अब यदि मैं आपकी आज्ञा पा जाऊँ तो अपने यहाँ आने तथा आपको देख जानेका यह आनन्द-समाचार जाकर उन लोगों (श्रीराम-लक्ष्मण-सुग्रीवादि) को भी सुना दूँ। श्रीरघुनाथजी एक-एक क्षणको एक-एक कल्पके समान धीरे-धीरे (बड़े कष्टसे) व्यतीत करते हैं; मैं इसीलिये शीघ्रता कर रहा हूँ कि वे कृपानिधान मेरा मार्ग देखते होंगे। रावणको मारकर मैं आपको साथ ही ले चलता और लङ्काको उलटकर धर देता; किंतु मनमें इसलिये संकोच कर रहा हूँ कि मेरे स्वामीकी (रावणको मारनेकी) प्रतिज्ञा झूठी हो जायगी।' सूरदासजी कहते हैं (श्रीजानकी-जीने यह सुनकर कहा—) 'यहाँकी मेरी उपर्युक्त सब दशा जाकर प्रभुसे कह देना। मैं अब और अधिक क्या प्रार्थना करूँ। (ऐसा करना जिससे) श्रीरघुनाथके श्रीचरणोंके दर्शन कर लूँ।'

सीता-संदेश श्रीरामके प्रति

राग कान्हरौ

[८८]

यह गति देखे जात, सँदेसौ कैसैं कै जु कहौं ?
सुनु कपि ! अपने प्रान कौ पहरौ, कब लगि देति रहौं ॥
ये अति चपल, चल्यौ चाहत हैं, करत न कछू बिचार।
कहि धौं प्रान कहाँ लौं राखौं, रोकि देह मुख द्वार ?

इतनी बात जनावति तुम सौं, सकुचति हौं हनुमंत !
नाहीं 'सूर' सुन्यौ दुख कबहूँ, प्रभु करुनामय कंत ॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीजानकीजीने कहा--) 'कपि ! तुम मेरी यह दशा देखे ही जा रहे हो, अब और संदेश मैं किस प्रकार सुनाऊँ ? बताओ ! अपने प्राणोंका पहरा मैं कबतक देती रहूँ ? ये प्राण तो अत्यन्त चञ्चल हैं, चले ही जाना चाहते हैं, कुछ भी विचार नहीं करते (कि शरीरमें रहनेसे प्रभुका मिलन होगा)। अब बताओ तो ! भला, शरीरके मुख्य द्वारोंको रोककर कबतक मैं इन्हें रोके रहूँ ? हनुमान् ! तुमसे इतनी बात प्रकट करनेमें भी मैं संकुचित हो रही हूँ; क्योंकि मेरे स्वामी करुणामय हैं, मेरे उन नाथने कभी दुःख सुना भी नहीं है। (मेरे दुःखका समाचार मिलनेसे उन्हें बहुत कष्ट होगा ।'

राग मारू

[८९]

कहियौ कपि ! रघुनाथ राज सौं, सादर यह इक बिनती मेरी ।
नाहीं सही परति मोपै अब, दारुन त्रास निसाचर केरी ॥
यह तौ अंध बीसहूँ लोचन, छल-बल करत आनि मुख हेरी ।
आइ सृगाल सिंह-बलि चाहत, यह मरजाद जाति प्रभु तेरी ॥
जिहिं भुज परसुराम-बल करष्यौ, ते भुज क्यौं न सँभारत फेरी।
'सूर' सनेह जानि करुनामय, लेहु छुड़ाइ जानकी चेरी ॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीजानकीजीने हनुमान्‌जीसे कहा—)'कपि ! महाराज श्रीरघुनाथजीसे मेरी यह एक प्रार्थना आदरपूर्वक सुना देना कि राक्षसका दारुण त्रास अब मुझसे सहा नहीं जाता । यह (रावण) तो बीसों नेत्रोंसे अंधा (सर्वथा विवेकहीन) है, आकर मेरा मुख देखकर (अनेक प्रकारके) छल-बल करता है । यह सियार आकर (आप) सिंहका भाग चाहता है, प्रभो ! यह तो आपकी मर्यादा जा रही है । जिस भुजबलसे

आपने परशुरामजीका बल भी खींच लिया (उनके बलके गर्वको नष्ट कर दिया), अपनी भुजाके उसी बलको फिर क्यों नहीं सम्हालते ? हे करुणामय ! मेरा प्रेम समझकर मुझे यहाँसे छुड़ा लो। यह जानकी आपकी ही दासी है।'

[९० [

मैं परदेसिनि नारि अकेली।
बिनु रघुनाथ और नहिं कोऊ, मातु-पिता न सहेली॥
रावन भेष धर्यौ तपसी कौ, कत मैं भिच्छा मेली।
अति अज्ञान मूढ़ मति मेरी, राम-रेख पग पेली॥
बिरह-ताप तन अधिक जरावत, जैसैं दव द्रुम-बेली।
'सूरदास' प्रभु बेगि मिलाऔ, प्रान जात हैं खेली॥

सूरदासजी कहते हैं-- (श्रीजानकीजी हनुमान्‌जीसे कह रही हैं--) मैं दूसरे देशकी रहनेवाली (यहाँके लोगोंसे अपरिचित) अकेली स्त्री हूँ। माता-पिता या सखियाँ आदि मेरा श्रीरघुनाथजीको छोड़कर और कोई आश्रय नहीं। रावणने (पञ्चवटीमें) तपस्वीका वेष धारण कर लिया था; किंतु मैंने उसे भिक्षा क्यों दी। मैं अज्ञानी हूँ, मेरी बुद्धि मूढ़ है जो (श्रीलक्ष्मणद्वारा खींची) राम-नामसे अभिमन्त्रित रेखाका मैंने उल्लङ्घन किया। जैसे दावाग्नि वृक्षों एवं लताओंको भस्म करता है, वैसे ही (प्रभुके) वियोगका संताप मेरे शरीरको अत्यन्त जला रहा है। मेरे प्राण खेल जा रहे हैं, मुझे शीघ्र प्रभुसे मिला दो।'

सीता परितोष

राग मारू

[९१]

तू जननी ! अब दुख जनि मानहि।
रामचंद्र नहिं दूरि कहूँ, पुनि भूलिहुँ चित्त चिंता नहिं आनहि॥

अबहिं लिवाइ जाउँ सब रिपु हति, डरपत हौं आज्ञा-अपमानहिं ।
राख्यौ सुफल सँवारि, सान दै, कैसे निफल करौं वा बानहि ?
हैं केतिक ये तिमिर-निसाचर, उदित एक रघुकुल के भानहिं ।
काटन दै दस सीस बीस भुज, अपनौ कृत येऊ जो जानहिं ॥
देहिं दरस सुभ नैननि कहँ प्रभु, रिपुकौं नासि सहित संतानहि ।
'सूर' सपथ मोहि, इनहि दिननि मैं, लै जु अइहौं कृपानिधानहि ॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीहनुमान्जीने कहा—) 'माता ! आप अब दुखी न हों । श्रीरघुनाथजी कहीं दूर नहीं हैं, अब आप भूलकर भी चित्तमें चिन्ता न लायें । (मैं तो) सब शत्रुओंको मारकर आपको अभी (साथ ही) लिवा जाऊँ, किंतु (प्रभुकी) आज्ञाके अपमानसे डरता हूँ । (प्रभुने अपने बाणकी) तीक्ष्ण नोकको सम्हालकर, सान चढ़ाकर रखा है, मैं उस बाणको निष्फल कैसे करूँ । एक श्रीरघुकुलके सूर्य (श्रीरामके) उदय होनेपर (यहाँ आनेपर) ये अन्धकाररूपी राक्षस हैं कितने (किस गणनामें) । दस सिर और बीस भुजाएँ (रावणकी आप प्रभुको) काटने दें, ये (राक्षस) भी तो अपने किये (दुष्कर्मके फल) को जान लें । प्रभु शत्रुको उसकी संतानोंके साथ नष्ट करके आपके नेत्रोंको मङ्गलमय दर्शन देंगे । मैं शपथपूर्वक कहता हूँ, इन्हीं दिनों मैं कृपानिधान प्रभुको ले आऊँगा !'

राग राजैश्री

[९२]

अगम पंथ अति दूरि जानकी, मोहि पंथ-श्रम ब्याप्यौ ।
कछू भयौ छुधा रत तबहीं सत जोजन जल माप्यौ ॥
मात ! रजायस देहु मोहि तौ देखौं बन जाइ ।
किछु माँगत फल पाइये, फाँदत भुजबल होइ ॥
मूल-मूल लंकेस के बैठे हनू असोच ।
जाउ पुत्र मनसा फुरौ, भलो होउ कै पोच ॥

तब मन मैं फूल्यौ हनू, प्रगट्यौ बन-उद्यान।
आपुन सूरज देखि हैं 'सूर' जु रामचंद्र की आन॥

(श्रीहनुमान्जी कहते हैं--) 'माता सीताजी ! मार्ग बड़ा दुर्गम था, बहुत दूर आना था, मुझे मार्ग चलनेसे थकावट आ गयी है। मुझे तो उसी समय कुछ भूख लग गयी थी, जब मैंने सौ योजन समुद्र पार किया था। (अतः) माता ! आप आज्ञा दें तो वनमें (अशोकवाटिकामें) जाकर देखूँ। (रक्षकोंसे) माँगनेपर कुछ फल मिल सकते हैं और उछलने-कूदनेसे भुजाओंमें कुछ बल आयेगा (थकावट दूर होगी)।' (इस प्रकार कहते हुए) रावणकी जड़की भी जड़ लङ्काके भी अन्तः-उद्यानमें हनुमान्जी चिन्ताहीन (निर्भय) बैठे हैं। (यह देखकर श्रीजानकीजीने कहा--) 'पुत्र ! जाओ ! तुम अपने इच्छानुसार कार्य करो, फिर अच्छा हो या बुरा (प्रभु तुम्हारी रक्षा करेंगे)।' यह सुनकर श्रीहनुमान्जी आनन्दमें भर गये और अशोकवाटिकाके उपवनमें प्रगट हो गये। सूरदासजी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजीकी शपथ, ये (हनुमान्जी) स्वयं सूर्यको देखेंगे (जबतक सूर्यका अस्तित्व है तबतक अमर रहेंगे; अभी तो इनके लिये कोई भय है ही नहीं)।

अशोक-वन-भङ्ग

राग मारू

[९३]

हनुमत-बल प्रगट भयौ, आज्ञा जब पाई।
जनक-सुता-चरन बंदि, फूल्यौ न समाई॥
अगनित तरु-फल सुगंध-मृदुल-मिष्ट-खाटे।
मनसा करि प्रभुहि अर्पि, भोजन करि डाटे॥
द्रुम गहि उतपाटि लिए, दै-दै किलकारी।
दानव बिन प्रान भए, देखि चरित भारी॥
बिहबल-मति कहन गए, जोरैं सब हाथा।
बानर-बन बिघन कियौ, निसिचर-कुल-नाथा॥

वह निसंक, अतिहिं ढीठ, बिडरै नहिं भाजै।
मानौ बन-कदलि मध्य, उनमत गज गाजै॥
भानै मठ, कूप, बाइ, सरवर कौ पानी।
गौरि-कंत पूजत जहँ, नूतन जल जानी॥
पहुँची तब असुर-सैन, साखामृग जान्यौ।
मानो जल-जीव सिमिट जाल मैं समान्यौ॥
तरुवर तब इक उपाटि, हनुमत कर लीन्यौ।
किंकर कर पकरि बान तीनि खंड कीन्यौ॥
जोजन-बिस्तार सिला पवन-सुत उपाटी।
किंकर करि बान-लच्छ अंतरिच्छ काटी॥
आगर इक लोह-जटित, लीन्ही बरिबंड।
दुहूँ करनि असुर हयौ, भयौ मांस-पिंड॥
दुर्धर परहस्त संग आइ, सैन भारी।
पवन-पूत दानव-दल, ताड़े दिसि चारी॥
रोम-रोम हनूमंत, लच्छ-लच्छ बान।
तहाँ-तहाँ दीसत, कपि करत राम-आन॥
मंत्री-सुत पाँच सहित अछयकुँवर सूर।
सैन सहित सबै हते, झपटि कै लंगूर॥
चतुरानन-बल सँभारि, मेघनाद आयौ।
मानौ घन पावस मैं, नगपति है छायौ॥
देख्यौ जब, दिव्य बान निसिचर कर तान्यौ।
छाँड़्यौ तब 'सूर' हनू ब्रह्म-तेज मान्यौ॥

जब श्रीजानकीजीकी आज्ञा मिल गयी, तब उनके चरणोंमें प्रणाम करके हनुमानजी अत्यन्त आनन्दित हुए और उनका पराक्रम प्रकट हो गया। अगणित वृक्षोंके सुगन्धित, कोमल, खट्टे और मीठे फल मनसे (ही) प्रभुको अर्पित करके (पहले उन्होंने) डटकर भोजन किया,

फिर बार-बार किलकारी मारकर पेड़ोंको पकड़-पकड़कर उखाड़ने लगे। उनका यह भारी (भयानक) कार्य देखकर (उपवनके रक्षक) सब राक्षस (भयसे) प्राणहीन-से हो गये। सब हाथ जोड़े व्याकुल-बुद्धि (रावणके पास) यह समाचार कहने गये (और बोले--) 'हे राक्षस-कुलके स्वामी ! एक बंदरने सारे अशोकवनको नष्ट कर दिया। वह निःशङ्क है, अत्यन्त ढीठ है, न तो बिदकता है (न भगानेसे) भागता है, ऐसा लगता है जैसे जंगली केलेके वृक्षोंको रौंदकर उनके बीचमें कोई उन्मत्त गजराज चिग्घाड़े मारता हो। जिस सरोवरके जलको नवीन जल समझकर आप जहाँ (नित्य) शंकरजीकी पूजा करते हैं, वहाँ भवनोंको, कुओंको, बावलियोंको वह तोड़ रहा है तथा उस सरोवरके जलको भी भ्रष्ट कर रहा है।' तब (रावणके भेजनेसे) वहाँ असुरसेना पहुँची (यह देखकर) हनुमान्‌जीको ऐसा लगा, जैसे जलके सब जीव एकत्र होकर (मरनेके लिये) जालमें आ गये हों (अर्थात् यह राक्षस-दल एकत्र होकर मरनेके लिये उनके पास आ गया, यही उन्हें लगा)। तब हनुमान्‌जीने एक वृक्ष उखाड़कर हाथमें ले लिया; किंतु किंकर राक्षसने हाथमें बाण लेकर (बाणके द्वारा) उस वृक्षको काटकर तीन टुकड़े कर दिये। फिर पवनकुमारने एक योजन विस्तारवाली शिला उखाड़कर फेंकी; किंतु किंकरने बाणका निशाना लगाकर उसे आकाशमें ही टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तब बलनिधान महावीरजीने एक लोहेसे मढ़ा डंडा उठाया और दोनों हाथोंमें लेकर असुर किंकरको इस प्रकार मारा कि वह (पिसकर) मांसका लोथड़ा बन गया। दुर्धर तथा प्रहस्त नामके राक्षसनायकोंके साथ जो बड़ी भारी सेना आयी थी, श्रीपवनकुमारने चारों ओरसे (कूद-कूदकर) उस राक्षस-दलपर प्रहार किया। श्रीहनुमान्‌जीके रोम-रोममें लाखों बाण लगे थे (लेकिन उन बाणोंकी उन्हें कोई पीड़ा नहीं थी; जहाँ-जहाँ राक्षस भाग-कर जाते थे,) वहाँ-वहाँ श्रीरामकी दुहाई (जयनाद) करते हनुमान्‌जी उन्हें दीखते थे। मन्त्रियोंके पाँच पुत्रोंके साथ (रावणका पुत्र) शूरवीर

अक्षयकुमार भी आया; किंतु अपनी पूँछ फटकारकर हनुमान्‌जीने सेना-के साथ उन सबको मार दिया। (अन्तमें) मेघनाद ब्रह्माजी (के वरदान) के बलको सम्हालकर (धनुषपर ब्रह्मास्त्र चढ़ाकर) इस प्रकार आया जैसे वर्षाऋतुमें पर्वतपर मेघ छा रहे हों। सूरदासजी कहते हैं कि जब हनुमानजीने देखा कि राक्षस मेघनादने दिव्यास्त्र (ब्रह्मास्त्र) का संधान किया है, तब उन्होंने अपना बल छोड़ दिया (मूर्च्छित हो गये), इस प्रकार उन्होंने (जान-बूझकर शक्ति रहते) ब्रह्मतेजका सम्मान किया।

हनुमान्-रावण-संवाद

राग सारंग

[९४]

राजमद सकल दृष्टि है छाई।
महाराज रघुपति सौं तोरत, सीता है हरि लायौ काई॥
रावन अजहुँ न जानहो रामचंद्र कौ भेव।
अपनीं ही बुधि बल चलत, नहिं छाँडत कठिन कुटेव॥
रामचन्द्र आएँ बिनै कहाँ कहौं अब तोहि।
अबहीं कहा कह्यौ आयौ जानैं मोहि॥
बड़ौ धीठ अति पवनसुत, समझि कहत नहिं बात।
बिभीषन मोहि बरजई, नातरि मारौं लात॥
रे हनुमंत तुं कवन कैसैं लंका आयौ।
धर-अंबर यह राक्षसो, कैसैं जीवन पायौ॥
अपनो काल न जानही, कहै और की बात।
अबहीं रघुपति आइहैं लंका कौ उतपात॥
वुहै राम तन साँथरे, लछिमन ताके संग।
मो जीवत नहिं आवई, रे बंदर मतिमंद॥
बाय पित्त कफ कंठ तब ब्याकुल वचन न कहंत।
एकहि बानहिं राम के सब राषिस भसमंत॥

कटुक बचन हनुमत सुने, किल क्यौं लेत उसास।
अधर कंपि कर सिर धुनैं, असुर सेन दल पास॥
मंदोदरि बिनती करै, सुनि असुरनि के ईस।
सीता प्रभु कौ दीजियै, ह्वैहौ बिना भुज बीस॥
यह किन बोली कटक मैं, बात कहत इहाँ आइ।
पवनपूत कै बाँधि कैं देखि-देखि पछिताइ॥
हनुमत तबहीं बोलियौ, मोहि सकै को राखि।
लै आऊँ रघुनाथ कौं, 'सूर' कहौ यह भाखि॥

(मेघनादद्वारा राजसभामें लाये जानेपर हनुमान्‌जी रावणसे कहते हैं—) 'राजमदसे तुम्हारी पूरी दृष्टि ढक गयी है (तुम अंधे हो रहे हो), क्यों तुम श्रीजानकीजीको हरण करके ले आये और अब महाराज श्रीरघुनाथसे अकारण शत्रुता कर रहे हो ? रावण ! अब भी तुम श्रीरामचन्द्रजीका रहस्य (उनका माहात्म्य) नहीं जानते, अपनी ही बुद्धि और बलके अनुसार चलते (व्यवहार करते) हो और कठिन कुटेव (पाप करनेका बुरा अभ्यास) नहीं छोड़ते । अब श्रीरामचन्द्रजीके यहाँ आये बिना मैं तुमसे क्या कहूँ; अबतक मैं क्या कह आया हूँ (अबतक तो मैंने कुछ कहा या किया नहीं), प्रभुके आनेपर तुम मुझे (मेरे पराक्रमको) जान सकोगे।' (यह सुनकर रावण बोला—) 'यह पवनपुत्र बड़ा ढीठ है, समझकर बात नहीं कहता । विभीषण मुझे मना कर रहे हैं, नहीं तो मैं इसे लात मारता। अरे हनुमान् ! तू है कौन ? लङ्कामें कैसे आ गया ? यहाँ पृथ्वी और आकाशमें सर्वत्र राक्षस (पहरा देते) हैं, तू जीवित कैसे रह सका ?' (यह रावणकी बात सुनकर हनुमान्‌जी बोले—) 'तू अपनी मृत्युको तो जानता नहीं, दूसरेकी (मृत्युकी) बात कहता है। अभी श्रीरामचन्द्रजी यहाँ आ जायँगे और लङ्काको ध्वंस कर देंगे।' (रावण बोला—) 'वही तो राम है, जो तिनके बिछाकर सोता है और उसके साथ लक्ष्मण है। अरे मन्दबुद्धि बन्दर ! मेरे जीवित रहते वह (लङ्का) नहीं आ

सकता ।' (तब हनुमान्‌जी बोले—) 'तेरे कण्ठको वात, पित्त, कफ (त्रिदोष) ने रोक लिया है (अर्थात् तुझे संनिपात हो गया है) इसीसे व्याकुल होकर तू (पागलोंके समान) अटपटी बातें कह रहा है । श्रीरामके एक ही बाणसे सब राक्षस भस्म हो जायँगे ।' (रावणके) कठोर वचन सुनकर हनुमान्‌जीने दीर्घ श्वास लेकर किलकारी मारी, उनके ओठ फड़कने लगे, हाथोंसे अपना सिर (क्रोधसे) पीटने लगे । राक्षसीसेनाके अनेक दल उनके पास (उन्हें घेरे) थे । तब रानी मन्दोदरी प्रार्थना करने लगी कि 'हे असुरोंके स्वामी ! सुनो । श्रीसीताजीको प्रभुको दे दो । अन्यथा बीस भुजाओंसे रहित हो जाओगे ।' (पत्नीकी बात सुनकर रावण गर्जा–) 'यह क्यों बोली ? सेनामें यह आयी क्यों कि यहाँ आकर ऐसी बातें कहती हैं ?' (मन्दोदरी चुप हो गयी; किन्तु) श्रीपवनकुमारको बन्धनमें पड़ा देखकर बार-बार पश्चात्ताप करने लगी । सूरदासजी कहते हैं—उसी समय हनुमान्‌जीने (सबको) सम्बोधित करके यह कहा—'मुझे बाँधकर कौन रख सकता है । मैं श्रीरघुनाथजीको यहाँ ले आऊँगा ।'

राग मारू

[९५]

सीतापति-सेवक तोहि देखन कौं आयौ ।
का कैं बल बैर तैं जु राम तैं बढ़ायौ ॥
जे-जे तुव सूर सुभट, कीट सम न लेखौं ।
तो कौं दसकंध अंध, प्राननि बिनु देखौं ॥
नख-सिख ज्यौं मीन जाल, जड़्यौ अंग-अंगा ।
अजहुँ नाहिं संक धरत, बानर मति-भंगा ॥
जोइ-सोइ मुखहिं कहत, मरन निज न जानै ।
जैसैं नर संनिपात भएँ बुध बखानैं ॥

तब तू गयौ सून भवन भस्म, अंग पोते।
करते बिन प्रान तोहिं, लछिमन जौ होते॥
पाछे तैं हरी सिया, न मरजाद राखी।
जौ पै दसकंध बली, रेख क्यौं न नाखी॥
अजहूँ सिय सौंपि, नतरु बीस भुजा भानै।
रघुपति यह पैज करी, भूतल धरि पानैं॥
ब्रह्मबान कानि करी, बल करि नहिं बाँध्यौ।
कैसैं परताप घटै, रघुपति आराध्यौ॥
देखत कपि-बाहु-दंड तन प्रस्वेद छूटे।
जै-जै रघुनाथ कहत, बंधन सब टूटे॥
देखत बल दूरि करथौ, मेघनाद गारौ।
आपुन भयौ सकुचि 'सूर' बंधन तैं न्यारौ॥

(श्रीहनुमान्‌जी रावणसे कह रहे हैं—) 'मैं श्रीजानकीनाथका सेवक हूँ, तुझे देखनेके लिये यहाँ आया हूँ। तूने किसके बलपर श्रीरामसे बैर बढ़ाया है? क्योंकि तेरे जितने शूरवीर सेनानायक हैं, उन्हें तो (अकेला) मैं (ही) कीड़ोंके समान भी नहीं समझता। अरे अंधे रावण! तुझे भी मैं निष्प्राण (मृतप्राय) ही देखता हूँ।' (तब रावण बोला--)'जैसे मछली जालमें पड़ी हो, ऐसे तेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग (बन्धनसे) जकड़े हैं; अरे नष्टबुद्धि बंदर! इतनेपर भी तू शङ्कित नहीं होता? चाहे जो कुछ मुखसे बक रहा है, अपनी मृत्युको जानता नहीं? बुद्धिमान् लोग कहते हैं कि संनिपात होनेपर मनुष्य ऐसे ही बकने लगते हैं, जैसे तू बोल रहा है।' (तब श्रीहनुमान्‌जीने कहा--) 'उस समय (पञ्चवटीमें) सूनी कुटियामें तू शरीरमें भस्म पोतकर (साधुका वेश बनाकर) गया था; यदि लक्ष्मणजी वहाँ होते तो (तभी) तुझे प्राणहीन कर देते। तूने (वीरोंकी) मर्यादा भी नहीं रखी, उनके पीछे सीताजीका

हरण किया। अरे दशानन! यदि तू बली है तो वह (लक्ष्मणजीकी खींची) रेखा तूने क्यों पार नहीं की? अब भी श्रीजानकीजीको (श्रीरामको) सौंप दे, नहीं तो वे तेरी बीसों भुजाएँ काट देंगे। श्रीरघुनाथजीने हाथसे पृथ्वीका स्पर्श करके यह प्रतिज्ञा कर ली है। (तू मेरे बन्धनकी बात करता है? तो सुन—) किसीने बलपूर्वक मुझे नहीं बाँधा है, केवल ब्रह्मास्त्रका मैंने सम्मान किया है।' (श्रीहनुमान्‌जीने) श्रीरघुनाथजीकी आराधना की है; अतः उनका प्रताप कैसे घट सकता है। उनके भुजदण्डको देखकर (भयसे रावणके) शरीरसे पसीना निकलने लगा। हनुमान्‌जीके 'जय-जय श्रीरघुनाथ' कहते ही सब बन्धन टूट गये। उनके बलको देखकर मेघनादका (अपने बलका) गर्व दूर हो गया। सूरदासजी कहते हैं—स्वयं संकुचित होकर (छोटा रूप बनाकर) हनुमान्‌जी बन्धनसे अलग हो गये।

लंका-दहन

राग मारू

[९६]

मंत्रिनि नीकौ मंत्र बिचारयौ।
राजन कह्यौ, दूत काहू कौ, कौन नृपति है मारयौ॥
इतनी सुनत बिभीषन बोले, बंधु पाइ परौं।
यह अनरीति सुनी नहिं स्रवननि, अब नइ कहा करौं॥
हरी बिधाता बुद्धि सबनि की, अति आतुर ह्वै धाए।
सन अरु सूत, चीर-पाटंबर, लै लंगूर बँधाए॥
तेल-तूल पावक-पुट धरि कै, देखन चहैं जरौ।
कपि मन कह्यौ भली मति दीनी, रघुपति-काज करौं॥
बंधन तोरि, मोरि मुख असुरनि, ज्वाला प्रगट करी।
रघुपति-चरन-प्रताप 'सूर' तब, लंका सकल जरी॥

(रावणके) मन्त्रियोंने अच्छी सलाह सोची (उन्होंने रावणसे कहा—) 'महाराज ! बताइये तो, किस नरेशने किसीके दूतको मारा है ? (आप भी दूतको न मारें। इसकी पूँछ जला दें।)' यह बात सुनकर विभीषणजी बोले—'भाई ! मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, ऐसा अन्याय कहीं होते कानोंसे सुना नहीं गया, अब आप नवीन बात क्यों करते हैं ?' (रावणने दूतको मारनेकी बात तो छोड़ दी; किन्तु) विधाता (भाग्य) ने सब राक्षसोंकी बुद्धि हरण कर ली थी (वे परिणाम नहीं समझ पाते थे)। वे अत्यन्त आतुरतापूर्वक दौड़े और सन, सूत, रेशमी वस्त्र एवं चिथड़े—सब लाकर हनुमान्‌जीकी पूँछमें बाँध दिये। उस लिपटी हुई रूई आदिको तेलसे भिगाकर उसमें अग्नि लगाकर वे श्रीहनुमान्‌जीको भस्म होते देखना चाहते थे। (यह देखकर) हनुमान्‌जीने अपने मनमें कहा—'भगवान्‌ने इन्हें अच्छी बुद्धि दे दी। श्रीरघुनाथजीका (लङ्का नष्ट करनेका) काम अब मैं करूँगा। राक्षसोंने (हनुमान्‌जीके) बन्धनोंको तोड़कर तथा (झुलसनेके भयसे) मुँह फेरकर अग्नि प्रज्वलित कर दी। सूरदासजी कहते हैं—श्रीरघुनाथजीके चरणोंके प्रतापसे सम्पूर्ण लङ्का भस्म हो गयी !

राग सारंग

[९७]

रावन मंत्र ये हमाही।
बंदर सुबस होइ कैसैऊँ मति सोचत सब याही ॥
चल तैं पापी तिहिं कही, ररकत है मतिमंद।
अब काकौ मुख देखिहै, जौ पासि परैगी कंठ॥
बचन एक बहुमत कहै, सुनि रावन मतिमंद।
पास कंठ कहि क्यौं परै, ताकै रघुपति कंध।
तौ याकौ बाँधि प्रजा पौरि-पौरि प्रति राखि।
एकैं बंधन सब मिलै सो, जनक-सुता-सौं भाखि ॥

जितौ सौं कछु जानकी, प्रात कह्यौ हौ आइ।
सो कपि लंकापति गह्यौ, मारत दुःख दिखाइ॥

बीच-बीच मैं नर रुई सीचत घृत अरु तेल।
पूँछहि अंत न पावहीं राखिस लानें खेलि॥

जौ कबहूँ रघुनाथ हित मो मन भयौ न भंग।
तौ पावक जलरूप ह्वै जरौ न कपि कौ अंग॥

कछु यक डरप्यौ नाथ तें, कछू हनू कौ दाप।
पावक ज्वाल न छाँड़ई, डरप्यौ सीय-सराप॥

पूँछ न जरयौ रोम नहिं डाढ्यो,फिरि देख्यौ भरमाइ।
कछु रघुनाथ दया करी, सीता सत्त सहाइ॥
इहाँ गवन कपि तैं कियौ, तातैं कारन कौन।
काके हित तामस भरयौ, फिरयौ निहारत भौन॥
जनक सुता के कारनैं प्रभु आयस दीनौ मोहि।

कौतूहल लंका-धनी ! हौं देखन आयौ तोहि॥
श्रवन बचन सुनि परजरयौ रिस करि कै भूपाल।
आपन ही मुदगर धरे, करि लोचन बिकराल॥
बिभीषन बिनती करै, अस न होइ अजगुत्त।
जुग-जुग गारी वैठिहैं सनमुख मारे दुत्त॥
अरे सुभट केतिक जुरे तोसे राघव पास।
पवन-पूत साँची कहै, छोरि कंठ दै सास॥
हलद्ल्यौ सब सेवकन मैं, अरु पौरुष बल हीन।
वो छौकार पुजानि कैं, प्रभु मोहि रजायस दीन॥
पद्म अष्टदस सेन मैं तिनहिन बल-मरजाद।
ते तूँ रावन देखिहै 'सूर' सु कवन बिबाद॥

(रावणके मंत्री) परस्पर सबसे उपाय पूछते हैं (और कहते हैं—) 'महाराज रावणने हम सबसे सलाह माँगी है कि यह बंदर कैसे वशमें हो ।' उस पापी रावणने (हनुमान्‌जीसे) कहा—'अरे मन्द बुद्धि ! चल तो । क्यों व्यर्थमें तंग करता है; अब जब गलेमें फाँसी पड़ेगी, तब किसका मुख देखेगा ? (कौन तेरी सहायता करेगा ?)' (तब माल्यवान्-जैसे किसी) विचारवान्‌ने कहा—'अरे मन्दबुद्धि रावण ! बता तो, उस (कपि) के गलेमें फाँसी कैसे पड़ सकती है ? उसके कंधोंपर (उसके रक्षक) तो श्रीरघुनाथजी हैं। इस बातकी इच्छा चाहे तू द्वार-द्वार प्रत्येक प्रजाजनसे कर ले (नगरके सब राक्षसोंको इस कपिको पकड़नेमें लगा दे); परन्तु यह तो एक ही बन्धनमें भली प्रकार मिल सकता है, यदि श्रीजनकनन्दिनीकी शपथ इसे दिला दे ।' (तात्पर्य यह कि श्रीजानकीजीकी शपथ देकर ही इसे पकड़ सकते हो, बलसे इसे पकड़ा नहीं जा सकता ।) इधर (दूसरी ओर अशोकवाटिकामें) श्रीजानकीसे सबेरे आकर किसीने कुछ कहा कि उस बंदरको तो लंकानरेशने पकड़ लिया और दुःख दिला-दिलाकर उसे मार रहे हैं। बीच-बीचमें लोग (उसकी पूँछमें) रूई लपेटकर तेलसे भिगाते हैं; (परंतु आश्चर्य है कि) पूँछका अन्त नहीं पा रहे हैं। राक्षसोंके लिये तो (इस प्रकार बंदरको जलाना) एक खेल मिल गया है ।' (यह सुनकर श्रीजानकीजीने यह संकल्प किया—) 'यदि कभी श्रीरघुनाथजीके प्रति मेरे मनका स्नेह टूटा न हो तो अग्नि जलके समान शीतल हो जायँ ! कपिका अङ्ग न जले !' अग्निदेव कुछ तो श्रीरघुनाथजीसे डर गये, कुछ हनुमान्‌जीका दबाव था (उन्हें भस्म न करनेका वरदान वे दे चुके थे) और श्रीजानकीजीके शापसे भी वे भयभीत हो गये (अतः हनुमान्‌जीके ऊपर) अपनी ज्वाला (उष्णता) नहीं छोड़ते थे। कुछ श्रीरघुनाथजीने दया की और श्रीजानकीजीका सतीत्व सहायक हो गया, इससे हनुमान्‌जीकी पूँछ नहीं जली; (लङ्कामें) चारों ओर घूमते हुए पूरा नगर उन्होंने देखा

(जलाया); किंतु उनका एक रोम भी नहीं झुलसा। (रावणने उनसे पूछा—) 'कपि ! तू यहाँ किस लिये आया ? किस कारणसे क्रोधमें भरकर प्रत्येक घरको देखता घूमता रहा ?' (श्रीहनुमान्‌जीने कहा—) 'श्रीजनकनन्दिनीजीका पता लगानेके लिये प्रभुने मुझे आज्ञा दी थी। लङ्कानरेश ! कौतूहलवश मैं तुझे देखने यहाँ आया हूँ।' राजा रावण यह बात कानसे सुनकर क्रोधसे जल उठा, विकराल नेत्र करके उसने (हनुमान्‌जीको मारनेके लिये) अपने हाथोंसे ही मुद्‌गर उठाया। तब विभीषणने प्रार्थना की—'ऐसी अनुचित चेष्टा नहीं करनी चाहिये। दूतको सम्मुख (प्रत्यक्ष) मार देनेपर युग-युग-तक आपको गाली मिलती रहेगी।' (तब रावणने पूछा—) 'पवन-कुमार ! सच बता, तेरे समान कितने योधा रामचन्द्रके पास एकत्र हुए हैं। राक्षसो ! इसका कण्ठ खोल दो। इसे श्वास लेने दो। (जिससे यह उत्तर दे सके)।' सूरदासजी कहते हैं—(तब हनुमान्‌जीने कहा—) 'प्रभुके सेवकोंमें मैं सबसे छोटा तथा पुरुषार्थ और बलसे रहित हूँ। अपने सेवकोंमें सबसे छोटा समझकर प्रभुने मुझे (यहाँ आनेकी) आज्ञा दी है। अठारह पद्म सेनामें उन प्रभुका ही बल तथा उन्हींकी मर्यादा है। (पूरी सेना प्रभुके बलसे बलवान् है और उनके पूर्णतः नियन्त्रणमें है।) अब विवादकी क्या बात है, रावण ! तू उस सब सेनाको अब देखेगा ही।'

[९८]

जारौं गढ़ आजु, जैसैं रावन भै मानै।
सीतापति-सेवक मुहि आयौ को जानै॥
एक-एक रोम हनु छल छल छवाना।
त्यौं-त्यौं कपि करत हैं रामचन्द्र आना॥
एक भेट उन की लै उनहीं कौं दीजै।
ज्यौं-ज्यौं लंगूर जरै, त्यौं-त्यौं कपि छूजै॥

रामचंद बिपति-दहन कबहूँ नहिं फूले।
सीता-दुख परम कठिन ब्यापति अनखूले॥
दूत सखन कनक-भवन इहि तजि निधि हारे।
तिवमद्रि पवनपूत बिषम ज्वाल जारे॥
बीच-बीच धूर धूम बीच-बीच झंका।
बिच-बिच देखियत 'सूर' स्याम-बरन लंका॥

(श्रीहनुमान्‌जीने सोचा—) 'लङ्कादुर्गको आज जला दूँ, जिससे रावण (कुछ तो) भयभीत हो जाय। (नहीं तो) श्रीजानकीनाथका सेवक मैं यहाँ आया था, यह कोई कैसे जानेगा।' (इस प्रकार सोचकर हनुमान्‌जीने इतना विशाल रूप धारण किया कि) उनका एक-एक रोम फड़कने लगा, हनुमान्‌जी बढ़कर आकाशमें छा गये, बार-बार वे कपिश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीकी जयध्वनि करने लगे। (वे सोचने लगे—) यह अग्निकी एक भेंट इन (राक्षसों) से लेकर इनको ही दे देना चाहिये। जैसे-जैसे पूँछमें अग्नि बढ़ती थी, वैसे-वैसे कपि-शिरोमणि धूम मचाते (अधिक वेगसे कूदते) थे। श्रीरामचन्द्रजीकी विपत्ति ही जो कभी फूली (प्रकट हुई) नहीं थी, मानो अग्निके रूपमें प्रकट हो गयी। बिना कष्टके ही श्रीजानकीजीका कठिन दुःख (अग्नि बनकर लङ्कामें) व्याप्त हो गया। पवनकुमारने रामदूतके सखा (विभीषण) के एक घरको छोड़कर समुद्रसे घिरे त्रिकूट पर्वतपर बसे सभी स्वर्ण-भवनोंको विषम ज्वालासे जला दिया। सूरदासजी कहते हैं—बीच-बीचमें धुएँके अंबार उठ रहे थे, उनके बीच-बीचमें लपटें उठ रही थीं और उनके बीच-बीचमें जलकर) काली हुई लङ्का दिखायी पड़ती थी।

राग धनाश्री

[९९]

सोचि जिय पवन-पूत पछिताइ।
अगम अपार सिंधु दुस्तर तरि, कहा कियौ मैं आइ॥

सेवक कौ सेवा-पन एतौ, आज्ञाकारी होइ।
बिन आज्ञा मैं भवन पजारे, अपजस करिहैं लोइ॥
वे रघुनाथ चतुर कहियत हैं, अंतरजामी सोइ।
या भय भीत देखि लंका मैं, सीय जरी मति होइ॥
इतनी कहत गगन-बानी भइ, हनू! सोच कत करई।
चिरंजीवि सीता तरुवर तर, अटल न कबहूँ टरई॥
फिरि अवलोकि'सूर' सुख लीजे, पुहुमी रोम न परई।
जाके हिय अंतर रघुनंदन, सो क्यौं पावक जरई॥

हनुमान्‌जी यह विचार करके पश्चात्ताप करने लगे कि 'अगम्य अपार दुस्तर समुद्रको पार करके यहाँ आकर मैंने यह क्या किया? सेवकका सेवा-व्रत तो इतना ही है कि वह आज्ञाका पालन करनेवाला हो। मैंने प्रभुकी बिना आज्ञाके ही भवनोंको जला दिया, इसलिये लोग मुझे अपयश देंगे (मेरी निन्दा करेंगे); किन्तु वे श्रीरघुनाथजी चतुर कहे जाते हैं, वे अन्तर्यामी हैं। (वे मेरे हृदयके भावको जानकर रोष नहीं करेंगे।) किंतु मैं तो यह देखकर डर रहा हूँ कि कहीं लङ्कामें सीताजी भी न जल गयी हों। सूरदासजी कहते हैं—(हनुमान्‌जीके) इतना कहते ही आकाशवाणी हुई—'हनुमान्! चिन्ता क्यों कर रहे हो? श्रीजानकीजी चिरंजीवी हैं, वे वृक्षके नीच अविचल बैठी हैं, वहाँसे हिलीतक नहीं हैं। उनका फिर दर्शन करके आनन्द प्राप्त करो, उनका तो एक रोम भी पृथ्वीपर गिर नहीं सकता। भला, जिसके हृदयमें श्रीरघुनाथजी हैं, वे अग्निमें कैसे जल सकती हैं।'

राग मारू

[१००]

लंका हनूमान सब जारी।
राम-काज, सीता की सुधि लगि, अंगद-प्रीति बिचारी॥

जा रावन की सकति तिहूँ पुर, कोउ न आज्ञा टारी ।
ता रावन के अछत, अछयसुत-सहित सैन संहारी ॥
पूँछ बुझाइ गए सागर-तट, जहँ सीता की बारी ।
कर दंडवत, प्रेम पुलकित ह्वै, कह्यो सुनि राघव-प्यारी ॥
तुम्हरेंहि तेज-प्रताप रही बचि, तुम्हरी यहै अटारी ।
'सूरदास' स्वामी के आगैं, जाइ कहौं सुख भारी ॥

श्रीरामजीका कार्य करने, श्रीसीताजीका समाचार लेने तथा श्रीअङ्गदजीके प्रिय कार्यका विचार करके (लङ्का आकर) हनुमान्‌जीने सारी लङ्का जला दी । जिस रावणमें ऐसी शक्ति थी कि तीनों लोकोंमें कोई भी उसकी आज्ञा टाल नहीं सकता था, उस रावणके रहते-रहते उसके पुत्र अक्षयकुमारको सेनासहित उन्होंने मार डाला । सूरदासजी कहते हैं—(नगर जलाकर) समुद्रके किनारे जलमें पूँछ बुझाकर वे वहाँ गये, जहाँ सीताजीकी (अशोक-वाटिका) थी । दण्डवत् प्रणिपात करके प्रेमसे पुलकित होते हुए बोले—'श्रीरामकी प्रियतमे जानकीजी ! आप सुनें; आपके ही तेज और प्रतापसे आपका यह (अशोकवनका) भवन बच गया है (शेष सारी लङ्का जल गयी । अब मुझे आज्ञा दीजिये) । मै स्वामीके पास जाकर यह अत्यन्त सुख-पूर्ण समाचार कहूँ ।'

श्रीजानकीका संदेश

[१०१]

कपि ! तुम यह संदेसौ कहियौ ।
रघुपति ! तुम पत पतिव्रत हमर करुनानाथ ! सोध अब लहियौ ॥
बिनती करियौ नाथ सौं, जहाँ सुलछिमन लाल ।
वह सायक किन संभरौ, तीन लोक कौ काल ॥
मोहि चिंता नहिं आपनी, तुमही हँसिहैं लोग ।
मानौ राघव बल नहीं रावन मारन जोग ॥

सकल सराहत देव-मुनि राघौ-लछिमन बान।
मानौ वे निःपाल भए, देखि हमारैं जान॥
छत्री ह्वै आयुध गहैं, गनैं सुभट समकीय।
ताहि अछित कैसैं बसै जाके घर की तीय॥
जौ पै राघौ सुठि सही आयसु देते मोहि।
तौऊ अर्ध निमेष मैं अब लै जातौं तोहि॥
हीन-गात कपि देखियै, बात कहत बलबीर।
क्यौं सरितापति लाँघिहै अब गवनै मैं भीर॥
माता मरम न जानई, मोहि दिखावत सिंधु।
सबहि लंक उतपाटतो, जौ न होत सौबंध॥
अरुन नैन, बिकराल मुख, पर्बत तुलिय सरीर।
'सूर' साधु सीता कहै, साँचौ हनुमत बीर॥

(श्रीजानकीजी कहती हैं—) 'हनुमान् ! तुम यह संदेश (जाकर) कह देना कि हे रघुनाथजी ! मेरे पातिव्रत्यकी रक्षामें ही आपकी प्रतिष्ठा है; अतः हे करुणामय स्वामी ! अब मेरी सुधि (शीघ्र) लीजिये। जब श्रीलक्ष्मणलाल पास हों, तब प्रभुसे प्रार्थना करना कि आप अपने उस बाणको क्यों नहीं सम्हालते, जो त्रिलोकीका काल (तीनों लोकोंको नष्ट करनेमें समर्थ) है। मुझे अपनी (अपने दुःखकी) चिन्ता नहीं है; (चिन्ता तो यह है कि) लोग यह कहकर तुम्हारी हँसी उड़ायेंगे कि श्रीरघुनाथमें रावणको मारने योग्य बल ही नहीं ज्ञात होता। (लोग कहेंगे—) 'सभी देवता और मुनिगण श्रीराम एवं लक्ष्मणके बाणकी प्रशंसा करते हैं; किन्तु हमारी समझसे तो वे पालनमें असमर्थ हो गये जान पड़ते हैं। क्षत्रिय होकर जिसने हथियार धारण करके भी समान बलशाली शूरकी गणना की (उसका भय माना) तथा जिसके घरकी स्त्री हरी गयी हो; उसके रहते (उसके राज्यमें) कोई कैसे बसे। उसकी प्रजा निश्चिन्त कैसे रह सकती है)' (यह सुनकर हनुमान्‌जीने कहा—)

'यदि श्रीरघुनाथजीने सचमुच भली प्रकार (स्पष्ट) आज्ञा मुझे दे दी होती तो आधे क्षणमें ही मैं अभी आपको यहाँसे ले जाता ।' (श्रीजानकीजी मन-ही-मन संदेह करने लगीं—) इस वानरका शरीर तो बहुत छोटा दीखता है और बातें यह बड़े बलवान् वीरों जैसी कर रहा है; भला, यह समुद्रको कैसे पार कर सकेगा ! अब तो इसके लौटनेमें ही भय हो गया (क्योंकि रावण इसे जान गया) है ।' (जानकीजीके मनका भाव समझकर हनुमान्‌जीने भी सोचा—) 'माता श्रीजानकीजी (मेरी शक्तिका) रहस्य तो जानती नहीं, मुझे समुद्र दिखला रही हैं (कि तुम समुद्र पार कैसे जा सकोगे । अरे ! यदि मुझपर उस (प्रभुकी मर्यादा) का बन्धन न होता तो मैं पूरी लङ्काको ही उखाड़ फेंकता ।' सूरदासजी कहते हैं— (यह सोचकर हनुमान्‌जीने अपना रूप प्रकट किया ।) उनके लाल-लाल नेत्र, बड़ा विकराल मुख और पर्वतके समान विशाल देह प्रकट हो गया । (यह देखकर श्रीजानकीजीने कहा— 'साधु ! साधु ! हनुमान् ! तुम सच्चे वीर हो ।'

राग सारंग

[१०२]

अबहीं जननि चलौ, लै जाऊँ।
कितौ यक सिंधु अगम गोपद-सौ तिरबे कहा डराऊँ ॥
चढ़ि मम जठर पानि ग्रीवा गहि उपै अकासहि जाऊँ।
जसैं सोध न लहै निसाचर, बीच बिलंब न लाऊँ ॥
तुमहि परसि रघुपति के पायनि सनमुख ह्वै सिर नाऊँ।
उद्यम सुफल होइ सब मेरौ, तीन लोक जस पाऊँ ॥
श्रीरघुनाथ-पतिव्रत मेरै, सुनौ बच्छ सतिभाऊँ ।
हम अबला पर-पुरुष पीठ पर कैसैं धरियै पाऊँ ॥
जौ तुम कौं पकरौं उतिरबे कौ होइ चतुर-गुन चाऊ ।
बूड़ौं सिंधु कौन मिति करिहौ, जौ पूछै रघराऊ ॥

तुमहिं चलत निसहर सुधि पावै, देइ आपनौ दाऊ।
रोकै जाइ सिंधु कौ मारग, जुरै मेघ ज्यूँ बाऊ॥
एकै सुभट लच्छ क्यौं जीतै, तुम सिर मेलै घाऊ।
जाते तुम दुख होइ पवन-सुत, सो लालच बहि जाऊ॥
निरमोलिक मनि छोरि गूँथि जो, दीनी हनुमत हाथ।
जाऔ पुत्र ! जहाँ रघुनंदन, कहौ बिपति कै गाथ॥
काहे कौं प्रभु 'सूर' धनुष लियौ, अरु बाँध्यौ कटि भाथ।
यह पापी, तुम पतित-उधारन, कहाँ बिलंबे नाथ॥

(श्रीहनुमान्‌जीने कहा—) 'माता ! आप (साथ) चलें, अभी ले जाऊँ। यह एक समुद्र भला, क्या अगम्य होगा, यह तो गायके खुरसे बने गड्ढेके समान है; इसे पार करनेमें क्या भय करूँ। आप मेरी पीठपर चढ़कर हाथोंसे मेरा गला पकड़ लें, मैं उड़कर (कूदकर) आकाशमें चला जाता हूँ और बीचमें थोड़ा भी विलम्ब नहीं करूँगा, जिससे राक्षसराज रावणको कुछ भी पता न लग सके। आपका स्पर्श करके (आपको साथ लेकर) श्रीरघुनाथजीके चरणोंके सम्मुख होकर (प्रसन्नतासे) मस्तक झुकाऊँ (प्रणाम करूँ) मेरा सब उद्योग सफल हो जाय, त्रिलोकीमें मैं यश प्राप्त करूँ।' (श्रीजानकीजीने यह सुनकर कहा—) 'पुत्र ! सच्चे भावसे कहती हूँ, सुनो ! श्रीरघुनाथके प्रति मेरा (सच्चा) पतिव्रतका भाव है, स्त्री होकर मैं (जान-बूझकर) दूसरे पुरुषकी पीठपर पैर कैसे रख सकती हूँ। यदि मैं तुम्हें पकड़ भी लूँ तो (शीघ्र-से-शीघ्र) समुद्र पार करनेके लिये चौगुनी उमंग (मेरे मनमें) होगी। (ऐसी दशामें कहीं हाथ छूट जाय, तो) मेरे समुद्रमें डूब जानेपर, यदि श्रीरघुनाथ पूछेंगे (कि जानकी कहाँ हैं ?) तब तुम क्या उत्तर दोगे ? अथवा तुम्हारे चलनेका समाचार (किसी प्रकार) राक्षस (रावण) पा जाय तो अपना दाव वह हाथसे जाने देगा ? (अपितु बदला लेनेका प्रयत्न अवश्य करेगा)। वह जाकर समुद्रका

मार्ग रोक लेगा, वायुकी प्रेरणासे मेघोंके समान उसकी प्रेरणासे उसकी सेना एकत्र हो जायगी । अकेला वीर लाखोंको कैसे जीत सकता है, वह तुम्हारे मस्तकपर आघात करेगा; अतः हे पवनकुमार ! जिससे तुम्हें दुःख हो (विपत्तिमें पड़ना पड़े), वह लोभ बह जाय (नष्ट हो जाय) ।' (यह कहकर श्रीजानकीजीने) मस्तकमें गूँथी हुई अमूल्य चूड़ामणि खोलकर श्रीहनुमान्‌जीके हाथपर रख दी (और बोलीं—) 'हे पुत्र ! जहाँ श्रीरघुनाथजी हैं, वहाँ जाओ और उनसे मेरी विपत्ति-कथा कहो । (जब मेरा उद्धार नहीं करना था, तब) प्रभुने क्यों हाथमें धनुष लिया और कटिमें तरकस बाँधा ।' सूरदासजी यहीं अपने सम्बन्धमें भी कहते हैं—'प्रभो ! यह 'सूर' तो पापी है और आप पतितोंका उद्धार करनेवाले हैं; (फिर आकर मेरा उद्धार क्यों नहीं करते ?) कहाँ रुककर विलम्ब कर रहे हैं ?'

राग जैतश्री

[१०३]

लंक हनुमंत तोरि सुहनवंत सीता पैं जाय ।
कछु बिलख्यौ, कछु हरषवंत ह्वै हरये बैठो आय ॥
फिरि आयौ उद्यान मैं, कह्यो जु सुचित सँदेस ।
अब हौं यहँ लै आयहौं श्रीरघुनाथ नरेस ॥
धनि राघव बल परखिहैं धनि अंजनी सुमाइ ।
ऐसे समरथ दूत बिनु कैसें काज सिराय ॥
पूँछ जरैं जीवन नहीं, मगन भयौ श्री जोय ।
लै आऊँ रघुनाथ कौं, मात रजायस होय ॥
देखैं ही गति जात है, कहा कहौं कहि तोहि ।
कहियौ श्रीरघुनाथ सौं असुर सँतावत मोहि ॥
पूँछ बुझाई लहर करि रावन कैं बिदिमान ।
तौऊँ जरत बुझाइहौं रामचंद्र कैं बान ॥

सौ जोजन तहाँ सिखर अति, चढ़ौ हनू तहाँ धाय।
फाँदत जंघा-बल भयौ रह्यौ पतालहि जाय॥
उपै हनू आकास महँ मनहुँ धनुष कौ बान।
आगम अंगद कौं भयौ, पवनपूत पहिचान॥
आवत भई न बार कपि, जैसैं कंठ उसास।
मानौ दिनकर की कला बिथुरत भयौ प्रकास॥
देखन कौं कपि अलनले चढ़े सिखर पर धाय।
जामवंत अंगद तहाँ प्रथम पहूँचे आय॥
सिला एक चाकरि तहाँ, लै बैठे सब बीर।
सबै कथा कारन कह्यौ, क्यौं लाँघ्यौ सागर-तीर॥
पवन-पूत! साँची कहो, तूँ आयौ सिय देखि।
कितौ कि रावन और दल, गज-बाजीन बिसेषि॥
गढ ऊँचौ, लंका घनो, तहाँ असुर कौ राज।
अतिबल रावन तहाँ बसै, सब भूपति सिरताज॥
बिभीषन मन मिलन कौ हौं जानत हनमान।
'सूर' सुहर रघुनाथ की रावन कैं बिदिमान॥

श्रीहनुमान्‌जीने लङ्काको (जलाकर) नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और फिर माता सीताजीके पास आनन्दपूर्वक जाकर कुछ तो दुखी हुए (श्रीजानकीजीको देखकर) और कुछ हर्षित हुए (रावणका मान-मर्दन करके) तथा धीरेसे समीप जाकर बैठ गये। (उन्होंने श्रीजानकीजीसे कहा—) 'मैं उपवनमें घूम आया, अब आप स्वस्थ चित्तसे अपना संदेश कहें। अब मैं महाराज श्रीरघुनाथजीको यहाँ ले आऊँगा।' (श्रीजानकीजी बोलीं—) 'बलके पारखी श्रीरघुनाथजी धन्य हैं और तुम्हारी श्रेष्ठ माता अञ्जनादेवी (जिन्होंने तुम्हारे-जैसे शूरको उत्पन्न किया) धन्य हैं! ऐसे समर्थ दूतके बिना भला, (लङ्काविजय-जैसा) काम कैसे पूर्ण हो सकता है' श्रीहनुमान्‌जीकी पूँछके जल जानेपर (हनुमान्‌जीका) जीवित

रहना सम्भव नहीं था; परन्तु श्रीजानकीजीका दर्शन करके वे मग्न हो गये। (बोले—) 'माता ! मुझे आज्ञा मिले, मैं श्रीरघुनाथजीको ले आऊँ !' (श्रीसीताजीने कहा—) 'तुम तो मेरी दशा देखे ही जा रहे हो, तुमसे अब और मुँहसे क्या कहूँ। श्रीरघुनाथजीसे कहना कि मुझे असुर (रावण) सता रहा है।' रावणके विद्यमान रहते ही (हनुमान्‌जीने समुद्रकी) लहरोंमें पूँछ (की अग्नि) बुझा दी (और बोले—) 'माता ! श्रीरामचन्द्रके बाणोंद्वारा आपकी जलन भी (रावणका वध करके) दूर करु दूँगा।' वहाँ सौ योजन ऊँचा एक पर्वत शिखर था, हनुमान्‌जी दौड़कर उसपर चढ़ गये। परंतु जङ्घापर जोर देकर जब वे कूदने लगे, वह पर्वत (धँसकर) पातालमें चला गया। श्रीहनुमान्‌जी आकाशमें इस प्रकार उड़े जा रहे थे, जैसे धनुषसे छूटा बाण जा रहा हो। (समुद्रके दूसरे तटसे) युवराज अङ्गदने लक्षणोंसे पवनपुत्रको पहचान लिया। (इधर) कपिश्रेष्ठ (हनुमान्‌जी) को आनेमें वैसे ही देरी नहीं लगी, जैसे गलेमें आकर जम्हाईको आनेमें देर नहीं लगा करती। (उनके आनेसे वानर-समूहमें ऐसी प्रसन्नता हुई) मानो प्रातःकाल सूर्यकी किरणके फैलनेसे प्रकाश हो गया हो। (श्रीहनुमान्‌जीको) देखनेके लिये सभी वानर उतावले होकर पर्वत शिखरपर जा चढ़े, उनमें भी (सबसे) पहले जाम्बवान् और अङ्गद ही पहुँचे थे। एक चौड़ी शिला देखकर उसपर सब वीर वानर बैठ गये। तब (हनुमान्‌जीने) किस प्रकार समुद्रको पार किया, यह सब बात कारणसहित बतायी। (जाम्बवान् आदिने पूछा—) 'पवनकुमार ! सच-सच बताओ, तुम श्रीजानकीजीको देखकर आये हो ? रावण कितना बलवान् है ? हाथी और घोड़ोंसहित उसकी सेना कितनी है ?' सूरदासजी कहते हैं— (हनुमान्‌जीने बताया) लङ्काका दुर्ग बहुत ऊँचा है, नगर घना बसा है, वहाँ राक्षसोंका ही प्रभुत्व है। समस्त राजाओंमें श्रेष्ठ अत्यन्त बलवान् रावण वहाँ निवास करता है। अनुमान से मैं यह जानता हूँ कि विभीषणका मन प्रभुसे मिलनेका है।

रावणके विद्यमान रहते ही (लङ्कामें) श्रीरघुनाथजीकी प्रशंसा फैल गयी है।'

मन्दोदरीका रावणके प्रति

[१०४]

आज रघुबीर को दूत आयौ।
जारि लंका सकल, मारि राच्छस बहुत,
सीय-सुधि लै कुसल फिर सिधायौ॥
कहत मंदोदरी, सुनहु दसकंध पिय!
बड़ौ अपमान करि गयौ तेरौ।
अजहुँ मन समझिकै, मूढ़! मिलि राम सौं,
'सूर' मतिमंद कह्यौ मान मेरौ॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीहनुमान्‌जीके चले जानेपर) मन्दोदरी कहती है—'प्रियतम दशानन! सुनो। आज यहाँ श्रीरघुनाथका दूत आया था, उसने सारी लङ्का जला दी, बहुत-से राक्षसोंको मार दिया और (इतनेपर भी) श्रीजानकीजीका समाचार लेकर सकुशल लौट गया। वह तुम्हारा बहुत अपमान कर गया (किंतु तुम उसका कुछ भी बिगाड़ न सके)। अरे नादान! अब भी मनमें विचार करो! ओ मन्दबुद्धि! मेरा कहना मानो और श्रीरामचन्द्रजीसे जाकर मिलो!'

सीताका चूड़ामणि-प्रदान

राग सारंग

[१०५]

मेरी केती बिनती करनी।
पहिलैं करि प्रनाम, पाइनि परि, मनि रघुनाथ-हाथ लै धरनी॥

मंदाकिनि-तट फटिक-सिलापर, मुख-मुख जोरि तिलक की करनी।
कहा कहौं, कछु कहत न आवै, सुमिरत प्रीति होइ उर अरनी॥
तुम हनुमंत, पवित्र पवन-सुत, कहियौ जाइ जोइ मैं बरनी।
'सूरदास' प्रभु आनि मिलावहु, मूरति दुसह दुःख-भय हरनी॥

सूरदासजी कहते हैं—(हनुमान्‌जी जब लौटनेको उद्यत हुए, तब श्रीजानकीजीने कहा—) 'मेरी ओरसे प्रभुसे प्रार्थना करना। पहले (मेरी ओरसे) उनके चरणोंमें पड़कर प्रणाम करना और तब चूड़ामणि श्रीरघुनाथके हाथपर रख देना। क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता—(चित्रकूटमें) मन्दाकिनीके किनारे स्फटिक-शिलापर बैठे हुए प्रभु मेरे मुखके पास मुख ले आकर जब (मुझे) तिलक लगा रहे थे, उस समयकी प्रीतिका स्मरण करके हृदयमें संताप होता है। हनुमान्! तुम तो पवित्र पवनकुमार हो, तुमसे) यह बात कहनेमें भी मुझे संकोच नहीं हुआ;) मैंने जो कुछ कहा, (वह वैसा ही) प्रभुसे जाकर कह देना! (अब और क्या कहूँ,) असहनीय दुःख और भयको दूर करनेवाली तो प्रभुकी मूर्ति ही है (उनके दर्शनसे ही दुःख और भय दूर होगा), अतः प्रभुको ले आकर (शीघ्र) मिला दो।

हनुमान्-प्रत्यागमन

राग मारू

[१०६]

हनूमान अंगद के आगैं लंक-कथा सब भाषी।
अंगद कही, भली तुम कीनी, हम सब की पति राखी॥
हरषवंत ह्वै चले तहाँ तें, मग मैं बिलम न लाई।
पहुँचे आइ निकट रघुबर के, सुग्रिव आयौ धाई॥
सबनि प्रनाम कियौ रघुपति कौं अंगद बचन सुनायौ।
'सूरदास' प्रभु-पद-प्रताप करि, हनू सोय-सुधि ल्यायौ॥

श्रीहनुमान्‌जीने अङ्गदसे लङ्काका सब समाचार कहा । (उसे सुनकर) अङ्गदने कहा—'तुमने बहुत अच्छा किया, हम सबोंकी लाज बचा ली ।' फिर सब हर्षित होकर वहाँसे चले, उन्होंने मार्गमें विलम्ब नहीं किया । जब श्रीरघुनाथजीके समीप आ पहुँचे, तब (आगेसे) दौड़कर सुग्रीव उनसे मिले । सूरदासजी कहते हैं—सबने श्रीरघुनाथजीको प्रणाम किया, फिर अङ्गद बोले—'प्रभुके चरणोंके प्रतापसे हनुमान्‌जी श्रीजानकीजीका समाचार ले आये ।'

[१०७]

हनु ! तैं सब कौ काज सँवार्‌यौ ।
बार-बार अंगद यौं भाषै, मेरौ प्रान उबार्‌यौ ॥
तुरतहिं गमन कियौ सागर तैं, बीचहिं बाग उजार्‌यौ ।
कीन्हौ मधुबन चौर चहूँ दिसि, माली जाइ पुकार्‌यौ ॥
धनि हनुमत, सुग्रीव कहत हैं, रावन कौ दल मार्‌यौ ।
'सूर' सुनत रघुनाथ भयौ सुख, काज आपनौ सार्‌यौ ॥

बार-बार अङ्गद इस प्रकार कहने लगे—'हनुमान् ! तुमने सब काम पूरा कर दिया और मेरे प्राण बचा लिये ।' सब वानर तुरंत ही समुद्र-किनारेसे चल पड़े, बीच (मार्ग) में ही (फलादि खाकर सुग्रीवका) बगीचा उन्होंने उजाड़ डाला । उस मधुवनको उन लोगोंने चारों ओरसे चौपट कर दिया, इससे (उपवनके) रक्षकोंने जाकर (सुग्रीवसे) पुकार की । (सब बातें सुनकर) सुग्रीव कहने लगे—'हनुमान् धन्य हैं, जिन्होंने रावणकी सेनाको मारा ।' सूरदासजी कहते हैं कि अपना कार्य पूर्ण हुआ सुनकर श्रीरघुनाथजीको भी आनन्द हुआ ।

हनुमान्-राम-संवाद

राग मारू

[१०८]

कहौ कपि ! जनक-सुता-कुसलात ।
आवागमन सुनावहु अपनौ, देहु हमैं सुख-गात ॥

सुनौ पिता ! जल अंतर ह्वै कै, रोक्यौ मग इक नारि।
धर-अंबर लौं रूप निसाचरि, गरजी बदन पसारि॥
तब मैं डरपि कियौ छोटौ तनु, पैठ्यौ उदर मँझारि।
बरभर परी, दियौ उन पैंड़ौ, जीती पहिली रारि॥
गिरि मैनाक उदधि मैं अद्भुत, आगैं रोक्यौ जात।
पवन पिता कौ मित्र न जान्यौ, धोखैं मारी लात॥
तबहूँ और रह्यौ सरितापति आगैं जोजन सात।
तुव प्रताप परली दिसि पहुँच्यौ, कौन बढ़ावै बात॥
लंका पौरि-पौरि मैं ढूँढ़ी अरु बन-उपबन जाइ।
तरु असोक तर देखि जानकी, तब हौं रह्यौ लुकाइ॥
रावन कह्यौ सो कह्यौ न जाई, रह्यौ क्रोध अति छाइ।
तबहीं अवधि जानि कै, राख्यौ मंदोदरि समुझाय॥
पुनि हौं गयौ सुफल-बारी मैं देखी दृष्टि पसारि।
असी सहस किंकर-दल तेहि के, दौरे मोहि निहारि॥
तुव प्रताव तिन कौं छिन भीतर जूझत लगी न बार।
उन कौं मारि तुरत मैं कीन्ही मेघनाद सौं रार॥
ब्रह्म-फाँस उन लई हाथ करि, मैं चितयौ कर जोरि।
तज्यौ कोप, मरजादा राखी, बँध्यौ आपही भोरि॥
रावन पै लै गए सकल मिलि, ज्यौं लुब्धक पसु जाल।
करुवौ बचन स्रवन सुनि मेरौ, अति रिस गही भुवाल॥
आपुन ही मुगदर लै धायौ, करि लोचन बिकराल।
चहुँ दिसि 'सूर' सोर करि धावैं, ज्यौं करि हेरि सृगाल॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीरघुनाथजी हनुमान्‌जीसे पूछने लगे-)
'कपिवर ! श्रीजनकनन्दिनीकी कुशल कहो। अपने जाने और लौटनेका

समाचार सुनाओ और हमें अपने शरीरका सुखद स्पर्श कराओ !' (श्रीहनुमान्‌जी बोले—) 'मेरे पिताके समान प्रभु ! सुनो । (जब मैं समुद्र पार करने लगा, तब) जलके भीतरसे एक स्त्रीने मुझको रोका । उस राक्षसीका शरीर पृथ्वीसे आकाशतक फैला था, वह मुख फैलाकर गर्जना करने लगी । तब मैंने डरकर अपने शरीरको छोटा बना लिया और उसके पेटमें घुस गया । (मेरे पेटमें जाकर उछल-कूद करनेसे) उसके पेटमें खलबली मच गयी, तब उसने मार्ग दे दिया; इस प्रकार पहला युद्ध मैंने जीत लिया । समुद्रमें एक मैनाक नामक अद्भुत पर्वत रहता है, उसने भी मुझे आगे जानेसे रोका; मैं नहीं जानता था कि वह मेरे पिता पवनका मित्र है, अतः धोखेमें मैंने उसे एक लात मार दी । किन्तु उससे आगे भी सात योजन समुद्र (पार करनेको) शेष था; अब बातको कौन बढ़ाये, आपके प्रतापसे (उसे भी पार करके) मैं दूसरे तटपर पहुँच गया । लङ्काके एक-एक द्वारमें (प्रत्येक भवनमें) तथा वनों एवं उपवनोंमें जा-जाकर मैंने ढूँढ़ा । अशोकवाटिकामें जब मैंने एक वृक्षके नीचे बैठी श्रीजानकीजीको देखा, तब (अवसरकी प्रतीक्षामें) छिपकर बैठ गया । (उसी समय वहाँ आकर) रावणने (श्रीजानकीजीसे) जो कुछ कहा, वह तो मुझसे कहा नहीं जाता है, (उसकी बात सुनकर) मेरे शरीरमें क्रोध छा गया है (मैं वहीं रावणको मार देनेको उतावला हो गया था; किंतु) उसी समय मन्दोदरीने (रावणद्वारा दी हुई एक महीनेकी) अवधि पूरी हुई न समझकर समझाकर रावणको रोक लिया । फिर मैं फलोंके उत्तम बगीचेमें गया, वहाँ चारों ओर दृष्टि फैलाकर देखा तो रावणके अस्सी सहस्र सेवक उसके रक्षक थे, वे सब मुझे देखते ही (मारने) दौड़ पड़े; किन्तु आपके प्रतापसे उनसे युद्ध करनेमें एक क्षणका विलम्ब भी नहीं हुआ । उन सबोंको मारकर मैं तुरंत ही मेघनादसे युद्ध करने लगा । उसने अपने हाथमें जब ब्रह्मपाश लिया, तब मैंने हाथ जोड़कर उस पाशको देखा (प्रणाम किया) और क्रोधको छोड़कर उसकी मर्यादाकी

रक्षा की, स्वयं ही मूर्च्छित होकर बन्धनमें पड़ गया। जैसे व्याध पशुको जालमें फँसाकर ले जाय, वैसे ही सब राक्षस मिलकर मुझे (बाँधकर) रावणके पास ले गये। मेरे कठोर वचन सुनकर राजा रावण बहुत क्रुद्ध हुआ, भयंकर नेत्र बनाकर स्वयं ही हाथमें मुद्गर लेकर मुझे मारने दौड़ा। चारों ओरसे राक्षस चिल्लाते हुए इस प्रकार दौड़ते थे, जैसे हाथीको देखकर सियार दौड़े।

[१०९]

कैसैं पुरी जरी कपिराइ।
बड़े दैत्य कैसैं कै मारे, अंतर आप बचाइ?
प्रगट कपाट बिकट दीन्हें है, बहु जोधा रखवारे।
तेंतिस कोटि देव बस कीन्हे, ते तुम सौं क्यौं हारे॥
तीनि लोक डर जाके काँपैं, तुम हनुमान न पेखे?
तुम्हरैं क्रोध स्राप सीता कैं, दूरि जरत हम देखे॥
हौ जगदीस, कहा कहौं तुम सौं, तुम बल-तेज मुरारी।
'सूरजदास' सुनो सब संतो! अबिगत की गति न्यारी॥

(श्रीरघुनाथजीने पूछा—) 'कपिराज! लङ्का नगरी जली कैसे? बड़े राक्षसोंको तुमने कैसे मारा? और उनके बीचमें अपनेको कैसे बचाया? वहाँ तो प्रत्यक्ष ही बड़े भारी किवाड़ लगे रहे होंगे और बहुत-से योद्धा वहाँ नगर-रक्षक होंगे। (जिस रावणने) तैंतीस करोड़ देवताओंको अपने वशमें कर रखा है, वह तुमसे कैसे हार गया? हनुमान्! तीनों लोक जिसके भयसे काँपते हैं, उसने तुम्हें नहीं देखा?' (प्रभुकी बात सुनकर नम्रतासे हनुमान्‌जी बोले—) तुम्हारे क्रोध और जानकीके शाप (की अग्नि) से लङ्काके भवनोंको जलते हुए हमने दूरसे देखा था। हे मुर असुरके नाशक प्रभु! आप तो (साक्षात्) जगदीश्वर हैं; मैं आपसे क्या कहूँ, (मैने तो कुछ किया नहीं); आपके बल और प्रतापसे ही सब कुछ हुआ।' सूरदासजी कहते हैं—सब सज्जनो! सुनो। अविज्ञातगति प्रभुकी गति ही

निराली है। (सचमुच लङ्का प्रतापसे ही जली; किंतु अपने सेवक हनुमान्‌जीको उन्होंने सुयश दिया।)

लङ्काकाण्ड

सिन्धु तट-वास

राग मारू

[११०]

सीय-सुधि सुनत रघुबीर धाए।
चले तब लखन, सुग्रीव, अंगद, हनू,
जामवँत, नील, नल सबै आए॥
भूमि अति डगमगी, जोगिनी सुनि जगी,
सहस-फन सेस कौ सीस काँप्यौ।
कटक अगिनित जुर्‍यौ, लंक खरभर पर्‍यौ,
सूर कौ तेज धर-धूरि-ढाँप्यौ॥
जलधि-तट आइ रघुराइ ठाढ़े भए,
रिच्छ-कपि गरजि कै धुनि सुनायौ।
'सूर' रघुराइ चितए हनूमान दिसि,
आइ तिन तुरतहीं सीस नायौ॥

श्रीसीताजीका समाचार पाकर श्रीरघुनाथजी (लङ्कापर) चढ़ दौड़े। उनके पीछे-पीछे लक्ष्मणजी, सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, जाम्बवान्, नील, नल आदि भी चले—सारी वानरसेना उनके साथ आयी। (उस दलके चलनेसे) भूमि डगमगाते (हिलने लगी)। सहस्र फणवाले शेषनागका मस्तक काँपने लगा, योगिनियाँ कोलाहल सुनकर (युद्धकी आशासे) सजग हो गयीं। गणना न हो सके, इतनी सेना एकत्र हुई।

(इस समाचारसे) लङ्कामें खलबली मच गयी । (सेनाके चलनेसे उड़ी हुई) पृथ्वीकी धूलिने सूर्यको ढक दिया । श्रीरघुनाथजी समुद्रके किनारे आकर खड़े हुए । रीछ और वानर गर्जनाका शब्द करने लगे । सूरदासजी कहते हैं—उस समय श्रीरघुनाथजीने हनुमान्‌जीकी ओर देखा, (और) उन्होंने तुरन्त (प्रभुके) पास आकर मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ।

हनुमंत वचन

राग केदारौ

[१११]

राघौ जू ! कितिक बात, तजि चिंत ।
केतिक रावन-कुंभकरन-दल, सुनियै देव अनंत ॥
कहौ तौ लंक लकुट ज्यौं फेरौं, फेरि कहूँ लै डारौं ।
कहौ तौ परबत चाँपि चरन तर, नीर-खार मैं गारौं ॥
कहौ तौ असुर लँगूर लपेटौं, कहौ तौ नखनि बिदारौं ।
कहौ तौ सैल उपारि पेड़ि तैं, दै सुमेरु सौं मारौं ॥
जेतिक सैल-सुमेरु धरनि मैं, भुज भरि आनि मिलाऊँ ।
सप्त समुद्र देउँ छाती तर, एतिक देह बढ़ाऊँ ॥
चली जाउ सैना सब मोपर, धरौ चरन रघुबीर ।
मोहि असीस जगत-जननी की, नवत न बज्र-सरीर ॥
जितिक बोल बोल्यौ तुम आगैं, राम ! प्रताप तुम्हारे ।
'सूरदास' प्रभु की सौं साँचे, जन करि पैज पुकारे ॥

सूरदासजी कहते हैं—(प्रभुके पास आकर श्रीहनुमान्‌जीने कहा—) 'श्रीरघुनाथजी ! आप चिन्ता त्याग दें, यह (लङ्का-विजय) है कितनी बात। हे अनन्त स्वरूप देव ! सुनिये, रावण, कुम्भकर्ण और उनकी सेना किस गिनतीमें है । आप आज्ञा दें तो लङ्काको (उखाड़कर) डंडेकी

भाँति चारों ओर घुमा दूँ और फिर घुमाकर कहीं फेंक दूँ। कहें तो त्रिकूट पर्वतको पैरोंसे दबाकर पानीके नीचे (समुद्रतलमें) गला दूँ। आप कहें तो राक्षस रावणको अपनी पूँछमें लपेट लूँ, अथवा आज्ञा दें तो उसे नखोंसे फाड़ डालूँ। आप कहें तो त्रिकूट पर्वतको जड़से उखाड़कर सुमेरुपर दे पटकूँ। पृथ्वीपर सुमेरु आदि जितने भी पर्वत है, सबको भुजाओंसे समेटकर यहाँ इकट्ठे कर दूँ (उनके भारसे लङ्काको पीस दूँ)। अपने शरीरको इतना बढ़ा लूँ कि सातों समुद्र मेरी छातीसे नीचे रह जायँ। (फिर) श्रीरघुनाथजी ! आप मेरे ऊपर चरण रख दें और सारी सेना मेरे ऊपर चलकर समुद्र पार कर ले। मुझे जगज्जननी (श्रीजानकीजी) का आशीर्वाद प्राप्त है; (इससे) मेरा शरीर वज्रका हो गया है, वह (सेनाके भारसे) झुकेगा नहीं। श्रीरामजी ! आपके सम्मुख मैंने (अभी) जो कुछ कहा है, हे स्वामी ! आपकी शपथ करके आपका यह सेवक प्रतिज्ञा-पूर्वक कहता है कि आपके प्रतापसे वह सब सत्य है।'

राग मारू

[११२]

रावन-से गहि कोटिक मारौं।
जो तुम आज्ञा देहु कृपानिधि ! तौ यह परिहस सारौं॥
कहौ तौ जननि जानकी ल्याऊँ, कहौ तौ लंक बिदारौं।
कहौ तौ अबहीं पैठि, सुभट हति, अनल सकल पुर जारौं॥
कहौ तौ सचिव-सबंधु सकल अरि, एकहिं-एक पछारौं।
कहौ तौ तुव प्रताप श्रीरघुबर, उदधि पखाननि तारौं॥
कहौ तौ दसौ सीस, बीसौ भुज, काटि छिनक मैं डारौं।
कहौ तौ ताकौं तृन गहाइ कै, जीवत पाइनि पारौं॥
कहौ तौ सैना चारु रचौं कपि, धरनी-व्यौम-पतारौं।
सैल-सिला-द्रुम बरषि व्यौम चढ़ि, सत्रु-समूह सँहारौं॥

बार-बार पद परसि कहत हौं, हौं कबहूँ नहिं हारौं।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे बचन लगि, सिव-बचननि कौं टारौं॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीहनुमान्‌जीने दृढ़तासे कहा—) 'हे कृपानिधान! यदि आप आज्ञा दें तो (एक तो क्या) रावण-जैसे करोड़ों राक्षसोंको पकड़कर मार दूँ—यह कार्य मैं हँसी-हँसीमें (बिना श्रमके) पूर्ण कर डालूँ। आप कहें तो श्रीजानकीजीको यहाँ ले आऊँ अथवा आज्ञा दें तो लङ्काको ध्वस्त कर डालूँ। आप कहें तो अभी लङ्कामें जाकर सारे बलवान् राक्षसोंको मारकर पूरे नगरको अग्नि लगाकर भस्म कर दूँ। आप आज्ञा दें तो शत्रुके सभी बन्धु-बान्धव एवं मन्त्रियोंको एक-दूसरेसे टकराकर मार दूँ। अथवा श्रीरघुनाथजी! आप आज्ञा दें तो आपके प्रतापसे समुद्रपर पत्थरोंको तैरा दूँ। आप कहें तो एक क्षणमें रावणके दसों मस्तक एवं बीसों भुजाएँ काट डालूँ। अथवा आप आज्ञा दें तो उसे जीवित ही दाँतोंमें तृण दबवाकर आपके चरणोंमें लाकर गिरा दूँ। आप कहें तो वानरसेनाका सुन्दर व्यूह बनाऊँ और उन्हें पृथ्वी, आकाश तथा पातालमें सर्वत्र विस्तृत कर दूँ, अथवा (स्वयं ही) आकाशमें जाकर पर्वतोंके शिलाखण्ड तथा वृक्षोंकी वर्षा करके शत्रु-दलका संहार कर दूँ। मैं बार-बार आपके चरणोंका स्पर्श करके (शपथ-पूर्वक) कहता हूँ कि कभी भी पराजित नहीं होऊँगा। आपकी आज्ञाकी रक्षाके लिये शंकरजीके वचनको भी (जो कि उन्होंने रावणको दिया है कि तुम केवल मनुष्योंसे मारे जा सकते हो) अन्यथा कर दूँगा।'

[११३]

हौं प्रभु जू कौ आयसु पाऊँ।
अबहीं जाइ, उपारि लंक गढ़, उदधि पार लै आऊँ॥
अबहीं जंबूद्वीप इहाँ तैं, लै लंका पहुँचाऊँ।
सोखि समुद्र उतारौं कपि-दल, छिनक बिलंब न लाऊँ॥

अब आवैं रघुबीर जीति दल, तो हनुमंत कहाऊँ।
'सूरदास' सुभ पुरी अजोध्या, राघव सुबस बसाऊँ॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीहनुमान्‌जीने फिर कहा—)' प्रभो! यदि मैं आपकी आज्ञा पा जाऊँ तो अभी (उस पार) जाकर लङ्काके दुर्गको उखाड़कर समुद्रके इस पार ले आऊँ। अथवा जम्बूद्वीपको ही यहाँसे ले जाकर इसी क्षण लङ्का पहुँचा दूँ। सारे समुद्रका जल पीकर कपिदलको पार उतार दूँ, इसमें क्षणभरकी भी देर न करूँ। (आप जो आज्ञा दें, वह करूँ।) श्रीरघुनाथजी (आप) राक्षसदलको अभी-अभी जीतकर आ जायँ, तब मैं अपना नाम हनुमान् कहलाऊँ। मङ्गलमय अयोध्यापुरीको श्रीराघवेन्द्रको अधीनतामें पुनः भरी-पूरी कर दूँ (लङ्का-विजय कराके आपको अयोध्या पहुँचा दूँ)।'

[११४]

जौ पै राम रजा हौं पाऊँ।
न करौं संक लंक गढ़ की कछु, सायर खोद बहाऊँ॥
बढ़ूँ सरीर, पेट परिमित कर, सकल कटक पहुँचाऊँ।
कहौ तौ रावन कुल समेत सब बिधिहिं चरन तर लाऊँ॥
हौं सेवक हरि! ऐसौ तुम्हरौ, निज मुख कर का गाऊँ।
सुर और असुर सबै जुर आवैं, रन नहिं पीठ दिखाऊँ॥
रावन मारि, सिया घर लाऊँ, तुम्हरौ दास कहाऊँ।
'सूरदास' मुख हौ सौं कहि हौं, तुमही आन दिखाऊँ॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीहनुमान्‌जीने कहा—) 'श्रीरघुनाथजी! यदि आपकी आज्ञा पा जाऊँ तो लङ्काके दुर्गको कुछ भी परवा न करके उसे खोदकर समुद्रमें बहा दूँ। अपने पेटको सीमित करके शेष सारे शरीरको इतना बढ़ा दूँ कि पूरी वानर-सेनाको (हाथसे उठाकर) लङ्कामें पहुँचा दूँ। अथवा आप आज्ञा दें तो रावणको उसके कुलके साथ सब

प्रकारसे आपके चरणोंके नीचे लाकर डाल दूँ (आपकी शरण लेनेको विवश कर दूँ) मैं अपने मुखसे अपनी बड़ाई क्या करूँ; किंतु प्रभो! मैं आपका ऐसा सेवक हूँ कि यदि सभी देवता और दैत्य एकत्र होकर आ जायँ तो भी युद्धमें उन्हें पीठ नहीं दिखाऊँगा। रावणको मारकर श्रीजानकीजीको घर (आपके पास) ले आऊँ, तब आपका सेवक कहलाऊँ। अभी तो मैंने यह मुखसे ही कहा है; किन्तु (आप आज्ञा दें तो यह सब) करके आपको दिखा दूँ।'

[११५]

जौ हौं नैक रजायस पाऊँ।
तौ दस सीस बीस पैंड़े करि काटि जानकी लाऊँ॥
बिना कहे अंकुस मेरे सिर, तातैं करत न आगी।
बात उठाय धरौं नँहि राखौं और दिनन कौं लागी॥
अजहू जौ तुम कहौ कृपानिधि, तौ छिन भीतर मारौं।
आप जिवत कत इतनि बात कौं तुमहि का करौं पारौं॥
तूँ बलबीर धीर अंतक सम, अरु सबहीं बिधि लायक।
राख्यौ न्यौति बहुत दिन ते यह छुधा-कंप अति सायक॥
जाकौ रस एकहि मन मो तन आदि मध्य अरु अंत।
इहाँहू की सब लाज हमारी तो लागी हनुमंत॥
संग्या समै त्रोन जुत कीन्ही छाड़ौ कछू नदीवैं।
'सूर' समुद्र इतनि मागैं पाउँ, यह कृत मोही कीवैं॥

(श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं—) 'यदि मैं थोड़ी-सी आज्ञा पा जाऊँ तो बीस पद (बीस छलाँग) में ही रावणके दसों मस्तक काटकर श्रीजानकीजीको ले आऊँ। आपकी आज्ञाके बिना तो मेरे सिरपर आपका अंकुश (नियन्त्रण) है, इससे आगे बढ़कर कुछ कर नहीं पाता। अन्यथा बात उठाकर (प्रस्ताव करके) उसे दूसरे दिनों (भविष्य) के लिये उठाकर

रख नहीं छोड़ता। हे कृपानिधान! यदि आप अब भी आज्ञा दे दें तो एक क्षणमें रावणको मार डालूँ। अपने जीते-जी इतनी-सी (तुच्छ) बातके लिये आपको समुद्रपार क्या ले जाऊँ।' (यह सुनकर प्रभुने कहा—) हनुमान्! तुम कालके समान बलवान्, शूरवीर तथा धैर्यशाली हो और सभी प्रकार योग्य हो, किंतु भूखसे काँपते हुए अपने बाणको बहुत दिनोंसे मैंने (तृप्त करनेके लिये) निमन्त्रण दे रखा है। जिसके चित्तका प्रेम एकमात्र मेरे प्रति ही प्रारम्भमें, मध्यमें और अन्तमें (सदा-सर्वदासे) है, उन (श्रीजानकीजी) की और मेरी भी यहाँकी सब लज्जा हनुमान्! तुमसे ही है। (तुम्हीं हमारी लज्जाकी रक्षा करोगे, यह मुझे विश्वास है।)' सूरदासजी कहते हैं—प्रभुने (समुद्रसे) प्रार्थनाके समय बाणको तरकसमें रख लिया और बोले—'समुद्र! माँगनेसे मैं इतना पाऊँ (इतनी मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लो) कि हे नदियोंके स्वामी! कुछ मार्ग छोड़ दो। यह लङ्का-विजयका काम तो मेरे किये ही बनेगा (इसे करना ही है)।'

राग सारंग

[११६]

रघुपति, बेगि जतन अब कीजै।
बाँधै सिंधु सकल सैना मिलि, आपुन आयसु दीजै॥
तब लौं तुरत एक तौ बाँधौ, द्रुम-पाखाननि छाइ।
द्वितिय सिंधु सिय-नैन-नीर ह्वै जब लौं मिलै न आइ॥
यह बिनती हौं करौं कृपानिधि, बार-बार अकुलाइ।
'सूरजदास' अकाल-प्रलय प्रभु, मेटौ दरस दिखाइ॥

सूरदासजी कहते हैं—(समुद्रद्वारा सेतु बाँधनेका उपाय बता दिये जानेपर श्रीहनुमान्जी प्रार्थना कर रहे हैं—) श्रीरघुनाथजी! अब शीघ्र (पार जानेका) उपाय कीजिये। आप आज्ञा दीजिये, जिससे सेनाके सब लोग मिलकर (झटपट) समुद्रपर पुल बना दें। वृक्षों और पत्थरोंको

बिछाकर तबतक ही झटपट यह एक समुद्र बाँध लीजिये, जबतक श्रीजानकीजीके नेत्रोंके आँसू दूसरा समुद्र बनकर इसमें आकर मिल नहीं जाते। (उसके मिल जानेपर तो प्रलय ही हो जायगी।) इसीसे हे कृपानिधान ! मैं व्याकुल होकर बार-बार प्रार्थना कर रहा हूँ कि (श्रीजानकीजीको) दर्शन देकर हे स्वामी ! असमयमें होनेवाली प्रलय तो मिटा (रोक) दो।'

विभीषण रावण-संवाद

राग मारू

[११७]

लंकापति कौं अनुज सीस नायौ।
परम गंभीर,रनधीर दसरथ-तनय,कोप करि सिंधुके तीर आयौ॥
सीय कौंलै मिलौ,यह मतौ भलौ,कृपा करि ममबचन मानि लीजै।
ईस कौ ईस,करतार संसार कौ, तासु पद-कमल पर सीस दीजै॥
कह्यौ लंकेस दै ठेस पग की तबै, जाहि मति-मूढ़,कायर, डरानौ।
जानि असरन-सरन,'सूर'के प्रभू कौं, तुरतहीं आइ द्वारैं तुलानौ॥

छोटे भाई विभीषणने लङ्कापति रावणको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया (और निवेदन किया—) 'अत्यन्त गम्भीर तथा युद्धमें धैर्यशाली, महाराज दशरथके कुमार (श्रीराम) क्रोध करके समुद्रके किनारे आ गये हैं। अतः आप श्रीजानकीजीको लेकर उनसे मिलें (संधि कर लें), यही उत्तम राय है; कृपा करके मेरी यह बात मान लीजिये। वे समर्थोंमें परम समर्थ–सर्वेश्वर हैं, विश्वके निर्माता हैं, उनके चरण-कमलपर मस्तक रख दीजिये।' तब रावण पैरकी ठोकर देकर बोला—'अरे मूढ़मति ! अरे कायर ! तू डर गया है, (अतः यहाँसे) चला जा !' सूरदासजी कहते हैं—तब मेरे स्वामी (श्रीराम) को अशरण-शरण समझकर विभीषण तुरंत आकर उनके (शिविरके) द्वारपर खड़े हो गये।

राग सारंग

[११८]

आइ बिभीषन सीस नवायौ ।
देखतहीं रघुबीर धीर, कहि लंकापती, बुलायौ ॥
कह्यौ सो बहुरि कह्यौ नहिं रघुबर, यहै बिरद चलि आयौ ।
भक्त-बछल करुनामय प्रभु कौं, 'सूरदास' जस गायौ ॥

विभीषणने आकर मस्तक झुकाया (प्रणाम किया) । यह देखते ही धैर्यशाली श्रीरघुनाथजीने 'लङ्कापति' कहकर उन्हें सम्बोधित किया । श्रीरघुनाथजीका तो (सदासे) यही व्रत चला आ रहा है कि उन्होंने जो कह दिया (वह हो गया) उसे दुबारा कहनेकी कभी आवश्यकता नहीं पड़ी । (अतः प्रभुने जब, विभीषणको लङ्कापति कह दिया, तब लङ्का तो उनकी हो चुकी ।) सूरदासजी कहते हैं—ऐसे भक्तवत्सल करुणामय स्वामीका मैं यशोगान करता हूँ ।

राम-प्रतिज्ञा

राग मारू

[११९]

तब हौं नगर अजोध्या जैहौं ।
एक बात सुनि निस्चय मेरी, राज्य बिभीषन दैहौं ॥
कपि दल जोरि और सब सैना, सागर सेतु बँधैहौं ।
काटि दसौ सिर, बीस भुजा, तब दसरथ-सुत जु कहैहौं ॥
छिन इक माँहि लंक गढ़ तोरौं, कंचन-कोट ढहैहौं ।
'सूरदास' प्रभु कहत बिभीषन, रिपु हति सीता लैहौं ॥

(श्रीरघुनाथजीने प्रतिज्ञा करते हुए कहा—) 'सब लोग मेरा एक बातका निश्चय सुन लें—मैं तब अयोध्या जाऊँगा, जब (लङ्काका) राज्य विभीषणको दे लूँगा । कपियोंके समूह तथा अन्य प्रकारकी (भी) सारी

सेनाको एकत्र करके समुद्रपर पुल बँधवाऊँगा। जब रावणके दसों मस्तक, बीसों भुजा काट दूँ, तभी महाराज दशरथका पुत्र कहलाऊँगा। एक क्षणमें लङ्काके दुर्गको नष्ट कर दूँगा, स्वर्णके परकोटोंको ध्वस्त कर दूँगा।' सूरदासजीके प्रभुने विभीषणसे कहा—'शत्रुको युद्धमें मारकर सीताजीको ले आऊँगा।'

रावण-मन्दोदरी-संवाद

[१२०]

वे लखि आए राम रजा।
जल के निकट आइ ठाढ़े भए, दीसति बिमल ध्वजा॥
सोवत कहा चेत रे रावन! अब क्यों खात दगा?
कहति मँदोदरि, सुनु पिय रावन! मेरी बात अगा॥
तृन दसननि लै मिलि दसकंधर, कंठनि मेलि पगा।
'सूरदास' प्रभु रघुपति आए, दहपट होइ लँका॥

सूरदासजी कहते हैं कि रानी मन्दोदरीने कहा—'प्यारे रावण! मेरी बात आगेसे सुन! (इसपर पहले ध्यान दे।) वे (दूत) महाराज श्रीरामको देख आये हैं। समुद्रके समीप आकर वे (श्रीरघुनाथ) खड़े हैं, उनकी निर्मल ध्वजा (शुभ्र पताका) यहाँसे दीख रही है। अरे रावण! सोता क्यों है? सावधान हो! धोखा क्यों खाता है? हे दशानन! दाँतोंमें तिनके दबाकर तथा गलेमें पगहा—रस्सी डालकर (इस भावसे कि प्रभो! मैं तुम्हारी गाय हूँ, मुझे क्षमा करो!) मिल (शरणमें जा!) अन्यथा वे सबके स्वामी श्रीरघुनाथ आ गये हैं, लङ्का चौपट हो जायगी।'

[१२१]

देखि हो कंत! रघुनाथ आयौ।
छिप्यौ ससि, सूर अति चकृत भयौ,
धूर सों पूर आकास छायौ॥

तब न मानौ कह्यौ, आपने मद रह्यौ,
देह के गर्ब अभिमान बाढ़ौ ॥
सुन अहो कंत ! अब कठिन भयौ छूटिबौ,
गहे भुज बीस कर काल गाढ़ौ ॥
सिंधु गंभीर दल, छाँड़ि दै मुग्ध बल,
तैं न कीनी कहूँ टेक गाढ़ी ॥
बचै क्यौं डूबत माँझ लग्यौ धक्का जो,
लंक-सी नाव द्वै टूक फाड़ी ॥
कहत सुन 'सूर' तू गिन्यौ पंछीन मैं,
आन अजगरन पर आज खेलै ॥
भजैं क्यौं उबरिहै बाज हनुमान पै,
मूठ जब जानकीनाथ मेलै ॥

सूरदासजी कहते हैं—(रानी मन्दोदरीने कहा—) 'मेरे स्वामी ! देखो, श्रीरघुनाथजी आ गये। (उनकी सेनाके चलनेसे उड़ती) धूलिसे पूरा आकाश ढक गया है, चन्द्रमा छिप गया। (और उनके तेजसे सूर्य भी अत्यन्त चकित हो गया है। उस समय (जब हनुमान् आये थे) तुमने मेरा कहना नहीं माना। शरीरके बलके गर्वमें तुम्हारा अहंकार बढ़ा हुआ था, अपने ही मदसे तुम मतवाले हो रहे थे; किन्तु कंत ! सुनो। अब तो भयंकर कालने आकर (अपने) हाथोंसे तुम्हारी बीसों भुजा पकड़ ली हैं, उससे छुटकारा कठिन हो गया है। पहले तो तुमने कभी ऐसा कड़ा हठ नहीं किया था, अब अपने बलका गर्व छोड़ दो। (श्रीरघुनाथजीकी) सेना तो समुद्रके समान गहरी है, अब उसमें डूबनेसे तुम कैसे बचोगे ? मध्यमें ही धक्का लगा और लङ्का-जैसी नौकाको दो टुकड़े करके उसने फाड़ दिया (युद्धसे पूर्व ही हनुमान्‌ने लङ्का जला दी)। मैं सत्य कहती हूँ, सुनो ! तुम्हारी गणना तो पक्षियों-जैसी है (आकाशमें तुम उड़ सकते हो) और आज यहाँ अजगरोंसे (वानर-

दलसे) शत्रुता कर रहे हो; किंतु श्रीजानकीनाथ जब अपने हाथसे हनुमान्‌रूपी बाजको उड़ायेंगे (उन्हें आज्ञा देंगे) तुम भागकर भी कैसे बच सकोगे !'

राग मारू

[१२२]

लंका लीजति है रे रावन।
तुम जिन की हरि ल्याये सीता ते कहत है आवन ॥
जा सागर कौ गरब करत है, सो दूधनि मैं जावन।
आवत रामचंद्र सर साँधें, ज्यौं बरखा घन सावन ॥
तूँ मेरौ समझायौ न समझत, बहुत सहैगौ ताँवन।
'सूर' राम कौ लै मिलि सीता ! हाथ जोरि परि पावन ॥

सूरदासजी कहते हैं—(मन्दोदरीने कहा—) 'अरे रावण ! अब वे लङ्का ले ही लेनेवाले हैं। जिनकी पत्नी श्रीसीताजीको तुम हरण करके ले आये हो, वे अब आना ही चाहते हैं। जिस समुद्रका तुम्हें बहुत गर्व है (कि कोई समुद्र कैसे पार करेगा) वह तो (उनके पराक्रमरूपी) दूधमें जावनके समान (तुच्छ) है। जैसे श्रावणका बादल (उमड़ता-घुमड़ता) आता है, वैसे ही श्रीरामचन्द्र धनुषपर बाण चढ़ाये आ रहे हैं (वे वर्षाके समान बाणोंकी झड़ी लगा देंगे)। तुम मेरे समझानेसे समझते नहीं हो, अतः बहुत कष्ट सहोगे। (अच्छा यही है कि) श्रीजानकीजीको लेकर श्रीरामसे मिलो और हाथ-जोड़कर उनके श्रीचरणोंपर गिर पड़ो।'

[१२३]

तैं कत सीता हरि आनी।
जनक-सुता जगत-मात राम-नारि मैं जानी ॥

लंक-सौ गढ़ गर्ब करत, राकस कुल कानी।
कोट बोट मोह मेटि राम लैहैं रजधानी॥
दनुज-दल जर मरिहैं धौं कहि रमा ससाँनी।
राम-मार दनुज 'सूर' रैनि सी बिहानी॥

(मन्दोदरी कहती है रावणसे—) 'तुम श्रीसीताजीको हरण करके लाये ही क्यों ? वे श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या श्रीजानकीजी तो जगन्माता हैं, यह मैं समझ गयी। तुम लङ्का-जैसे दुर्गका गर्व करते हो और राक्षसकुलपर भरोसा रखते हो; किंतु श्रीराम तुम्हारा यह भारी दुर्ग ध्वस्त करके राजधानीपर अधिकार कर लेंगे।' सूरदासजी कहते हैं—श्रीजानकीके इन निःश्वासोंमें राक्षसोंका समूह जल मरेगा। श्रीरामजीके प्रहारसे राक्षस वैसे ही नष्ट हो जायँगे जैसे सवेरा होनेपर रात्रि नष्ट हो जाती है।'

[१२४]

सरन परि मन-बच-कर्म बिचारि।
ऐसौ और कौन त्रिभुवन मैं, जो अब लेइ उबारि॥
सुनु सिख कंत ! दंत तृन धरि कै, स्यौं परिवार सिधारौ।
परम पुनीत जानकी सँग लै कुल-कलंक किन टारौ॥
ये दस सीस चरन पर राखौ, मेटो सब अपराध।
हैं प्रभु कृपा-करन रघुनंदन, रिस न गहैं पल आध॥
तोरि धनुष, मुख मोरि नृपनि कौ, सीय-स्वयंबर कीनौ।
छिन इक मैं भृगुपति-प्रताप-बल करषि, हृदय धरि लीनौ॥
लीला करत कनक-मृग मार्यौ, बध्यौ बालि अभिमानी।
सोइ दसरथ-कुल-चंद अमित-बल, आए सारँग-पानी॥
जाके दल सुग्रीव सुमंत्री, प्रबल जूथपति भारी।
महा सुभट रनजीत पवन-सुत, निडर बज्र-बपु-धारी॥

करिहै लंक पंक छिन भीतर, बज्र-सिला लै धावै।
कुल-कुटुंब-परिवार सहित तोहि, बाँधत बिलम न लावै॥
अजहूँ बल जनि करि संकर कौ, मानि बचन हित मेरौ।
जाइ मिलौ कोसल-नरेस कौं भ्रात बिभीषन तेरौ॥
कटक-सोर अति घोर दसौं दिसि, दीसति बनचर-भीर।
'सूर' समुझि, रघुबंस-तिलक दोउ उतरे सागर तीर॥

सूरदासजी कहते हैं—(मन्दोदरीने कहा—) 'विचार करके मन, वाणी तथा कर्मसे (श्रीरघुनाथजीकी) शरणमें जा पड़ो। भला, तीनों लोकोंमें (दूसरा) ऐसा कौन है, जो अब तुम्हें बचा लेगा। मेरे स्वामी ! मेरी शिक्षा सुनो; दाँतोंमें घास लेकर अपने पूरे परिवारके साथ (श्रीरामजीके) पास चलो, परम पवित्र श्रीजानकीजीको अपने साथ ले लो। (जगन्माताका हरण करके) कुलमें लगे कलङ्कको (श्रीरघुनाथजीकी शरणमें जाकर) दूर क्यों नहीं कर देते। अपने ये दसों मस्तक उनके श्रीचरणोंपर रखकर अपने सब दोष दूर कर दो। वे श्रीरघुनाथजी तो कृपा ही करनेवाले (कृपामूर्ति) हैं, आधे क्षणके लिये भी (तुमपर) क्रोध नहीं करेंगे। जिन्होंने (स्वयंबर-सभामें) शंकरजी-का धनुष तोड़कर, सम्पूर्ण नरेशोंका मान-मर्दन करके श्रीजानकीजीसे स्वयंवरके नियमानुसार विवाह किया, जिन्होंने एक क्षणमें परशुरामजीका प्रताप और बल खींचकर अपने हृदयमें धारण कर लिया (उन्हें निष्प्रभ कर दिया), जिन्होंने खेल-खेलमें स्वर्णमृग बने मारीचको मार दिया और अहंकारी वालीका संहार किया, वे ही महाराज श्रीदशरथ-कुलचन्द्र अपार बलशाली शार्ङ्गधनुषधारी (श्रीराम) आ गये हैं। उनके दलमें सुग्रीव-जैसे श्रेष्ठ मन्त्री हैं, अत्यन्त बलवान् विशालकाय अन्य सेना-नायक तथा बड़े ही उत्तम योद्धा, वज्र-शरीरधारी, निर्भय, संग्राम-विजयी पवनकुमार हैं। वे वज्र-जैसी शिला लेकर दौड़ेंगे और क्षणभरमें लङ्काको कीचड़ बना देंगे (धूलिमें मिला देंगे)। तुम्हें अपने समस्त कुल एवं कुटुम्ब-परिवारके साथ बाँधनेमें वे देर नहीं

करेंगे। इसलिये तुम मेरी हितभरी बात मान लो। अब भी शंकरजीका (उनके वरदान एवं सहायताका) बल मत करो! तुम्हारा भाई विभीषण श्रीकोसलनरेश रघुनाथजीसे मिल गया है (वह तुम्हारे वरदानका सब रहस्य बता देगा)। यह समझ लो कि दोनों रघुवंश-तिलक श्रीराम-लक्ष्मण समुद्र-किनारे उतर गये हैं (पड़ाव डाले पड़े हैं) और उनको सेनाकी अत्यन्त भयंकर गर्जना दसों दिशाओंमें गूँज रही है, वानर-भालुओंकी भीड़ (यहींसे) दिखलायी पड़ रही है।

[१२५]

काहे कौं परतिय हरि आनी!
यह सीता जो जनक की कन्या, रमा आपु रघुनन्दन-रानी॥
रावन मुग्ध, करम के हीने, जनक-सुता तैं तिय करि मानी।
जिनके क्रोध पुहुमि-नभ पलटैं, सूखै सकल सिंधु कर पानी॥
मूरख सुख-निद्रा नहिं आवै, लैहैं लंक बीस भुज भानी।
'सूर' न मिटै भाल की रेखा, अल्प-मृत्यु तुव आइ तुलानी॥

सूरदासजी कहते हैं—(मन्दोदरीने कहा—) 'तुम दूसरेकी स्त्री हरण करके लाये ही क्यों? ये श्रीजनकनन्दिनी, श्रीरघुनाथजीकी रानी सीता तो साक्षात् लक्ष्मी हैं। अरे भाग्यहीन मूर्ख रावण! इन श्रीजनक-कुमारीको तुमने सामान्य स्त्री समझ लिया! जिन (श्रीरघुनाथजी) के क्रोधसे पृथ्वी और आकाश दोनों उलट सकते हैं तथा समुद्रका पूरा जल सूख सकता है, अरे मूर्ख! (उनसे शत्रुता करके किसीको) सुखपूर्वक नींद नहीं आती। वे तेरी बीस भुजाओंको तोड़कर लङ्कापर अधिकार कर लेंगे; किंतु (किया क्या जाय) ललाटकी (भाग्यकी) रेखा तो मिटती नहीं, अकाल-मृत्यु तेरे सिरपर नाच रहा है (इसीसे कोई बात तेरी समझमें नहीं आती)।'

[१२६]

तोहि कवन मति रावन! आई।
जाकी नारि सदा नवजोबन, सो क्यों हरै पराई॥
लंक-सौ कोट देखि जनि गरबहि, अरु समुद्र-सी खाई।
आजु-काल्हि, दिन चारि-पाँच मैं, लंका होति पराई॥
जाके हित सैना सजि आए, राम-लछन दोउ भाई।
'सूरदास' प्रभु लंका तोर, फेर राम दुहाई॥

सूरदासजी कहते हैं—(मन्दोदरीने कहा—) 'रावण ! यह तुम्हें कौन-सी बुद्धि आयी ? (इतने विचारहीन तुम कैसे हुए ?) अरे, जिसकी पत्नी (मै) सदा नवयुवती रहती हो, वह दूसरेकी स्त्रीका हरण क्यों करें। तुम लङ्काके समान (अजेय) दुर्गको तथा समुद्रके समान खाईको देखकर गर्व मत करो। आज, कल या चार-ही-पाँच दिनोंमें यह लङ्का दूसरेकी होनेवाली है, क्योंकि जिस लङ्काके लिये श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई सेना सजाकर आये हैं, उस लङ्काको वे समर्थ श्रीराम ध्वस्त करके छोड़ेंगे और यहाँ अपनी विजय-घोषणा करेंगे !'

[१२७]

आयौ रघुनाथ बली, सीख सुनो मेरी।
सीता लै जाइ मिलौ, बात रहै तेरी॥
तैं जु बुरौ कर्म कियौ, सीता हरि ल्यायौ।
घर बैठैं बैर कियौ, कोपि राम आयौ॥
चेतत क्यौं नाहिं मूढ़, सुनि सुबात मेरी।
अजहूँ नहिं सिंधु बँध्यौ, लंका है तेरी॥
सागर कौ पाज बाँधि, पार उतरि आवैं।
सैना कौ अंत नाहिं, इतनौ दल ल्यावैं॥

देखि तिया ! कैसौ बल, करि तोहि दिखराऊँ ।
रीछ-कीस बस्य करौं, रामहि गहि ल्याऊँ ॥
जानति हौं, बली बालि सौं न छूटि पाई ।
तुम्हैं कहा दोष दीजै, काल-अवधि आई ॥
बलि जब बहु जज्ञ किए, इंद्र सुनि सकायौ ।
छल करि लइ छीनि मही, बामन ह्वै धायौ ॥
हिरनकसिप अति प्रचंड, ब्रह्मा-बर पायौ ।
तब नृसिंह-रूप धर्यौ, छिन न बिलँब लायौ ॥
पाहन सौं बाँधि सिंधु, लंका-गढ़ घेरैं ।
'सूर' मिलि बिभीषनैं, दुहाइ राम फेरैं ॥

सूरदासजी कहते हैं—(मन्दोदरीने कहा—) 'बलवान् श्रीरघुनाथजी आ गये हैं, अतः (अब भी) मेरी शिक्षा मानो । श्रीजानकीजीको लेकर उसने जाकर मेल कर लो, जिससे तुम्हारी बात (सम्मान) रह जाय । तुमने यह (बहुत ही) बुरा कर्म किया जो श्रीसीताजीको हरण करके ले आये; घर बैठे (अकारण) तुमने शत्रुता कर ली, जिससे श्रीराम क्रोध करके चढ़ आये हैं । अरे मूर्ख ! अब भी सावधान क्यों नहीं होता ? यह मेरी हितभरी बात सुन ले । अब भी समुद्र बँधा नहीं है, अभी लङ्का तुम्हारी है, (अभी अवसर है, नहीं तो) समुद्रपर पुल बाँधकर वे इस पार उतर आयेंगे और इतना दल साथ ले आयेंगे कि उस सेनाका कोई पार ही नहीं होगा ।' (यह सुनकर रावण बोला–) 'रानी ! तुम देखना तो सही कि मैं तुम्हें कैसा पराक्रम करके दिखाता हूँ । रीछ और वानरोंको वशमें कर लूँगा और रामको पकड़ लाऊँगा ।' (तब मन्दोदरीने कहा–) 'मैं (तुम्हारे बलको) जानती हूँ; (एक) बलवान् वाली था (उसने जब तुम्हें पकड़ा था, तब) उससे तुम अपनेको छुड़ा नहीं सके थे (उस

वालीको श्रीरामने मार दिया है) किंतु तुम्हें दोष भी क्या दिया जाय, तुम्हारी मृत्युका समय ही पास आ गया है (इसीसे तुम्हारी बुद्धि भ्रमित हो रही है)। जब दैत्यराज बलिने बहुत-से यज्ञ कर लिये, तब इन्द्र उनके यज्ञोंका वर्णन सुनकर शङ्कित हो उठे (बलि कहीं सदाके लिये मेरा इन्द्रत्व न छीन लें)। किंतु प्रभु वहाँ वामनरूप धारण करके दौड़े गये और छल करके (बलिसे) सारी पृथ्वी छीन ली। हिरण्यकशिपु अत्यन्त प्रचण्ड (अदम्य) था। उसने ब्रह्माजीसे वरदान पाया था; किंतु (उसके बधके लिये) प्रभुने एक क्षणका (भी) विलम्ब नहीं किया, नृसिंह रूप धारण कर लिया। वे ही प्रभु श्रीराम पत्थरोंसे समुद्रको बाँधकर लङ्काके दुर्गको घेर लेंगे और विभीषणसे मिल करके यहाँ अपनी विजय-घोषणा करेंगे।'

राग धनाश्री

[१२८]

रे पिय ! लंका बनचर आयौ।
करि परिपंच हरी तैं सीता, कंचन-कोट ढहायौ॥
तब तैं मूढ़ मरम नहिं जान्यौ, जब मैं कहि समुझायौ।
बेगि न मिलौ जानकी लै कै, रामचंद्र चढ़ि आयौ॥
ऊँची धुजा देखि रथ ऊपर, लछिमन धनुष चढ़ायौ।
गहि पद'सूरदास'कहै भामिनि,राज बिभीषन पायौ॥

(मन्दोदरीने कहा—) 'प्रियतम ! तुमने छल-प्रपञ्च करके श्रीसीताजीका हरण किया, इसीलिये वानर हनुमान् लङ्कामें आये और उन्होंने स्वर्णके गढ़को ध्वस्त किया। जब मैंने समझाया, तब भी मूर्खतावश तुमने कुछ भेद नहीं समझा। अब भी श्रीजानकीको लेकर झटपट क्यों नहीं मिल लेते, अन्यथा श्रीरामचन्द्रजी चढ़ आये हैं (उन्होंने चढ़ाई कर दी है) रथके ऊपर (उस) ऊँची ध्वजाको देखो !

और लक्ष्मणने धनुष चढ़ा लिया है।' सूरदासजी कहते हैं कि (रावणका) पैर पकड़कर रानी मन्दोदरी कहती है—(लङ्काका) 'राज्य तो विभीषण ने पा लिया (प्रभु उसे राजतिलक तो कर चुके, अब तुम सीताजीको देकर अपके प्राण तो बचा लो)।'

राग सारंग

[१२९]

सुनि प्रिय तोहि कथा सुनाऊँ।
यह परमोद बसत जिय मैं गति, कत बैकुण्ठ नसाऊँ॥
अधरम करतहिं गए जन्मसत, अब कैसैं सिर नाऊँ।
वह परतीति पैज रघुपति की, सो कैसैं बृथा गवाऊँ॥
जौ गुरजन सुनाम नहिं धरते, तौ किति सिंधु बहाऊँ।
मैं पायो सिव कौ निरमायल, सो कैसैं चरन छुवाऊँ॥
जौ सनकादिक श्राप न देते, तौ न कनकपुर आऊँ।
जौ 'सूरज' प्रभु-त्रिया न हरतौ, क्यौंऽब अभै पद पाऊँ॥

सूरदासजी कहते हैं—(मन्दोदरीकी बात सुनकर रावणने कहा—) 'प्रिये! सुनो, तुम्हें पूरी बात सुनाता हूँ। मेरे हृदयमें यह प्रमोद (आनन्द) निवास करता है कि (श्रीरामद्वारा मारे जाकर) परमगति पाऊँगा; फिर मैं अपने वैकुण्ठका नाश क्यों करूँ? इसी प्रकार अधर्म करते सैकड़ों जन्म बीत गये हैं, अब कैसे प्रभुको मस्तक झुकाऊँ (उनकी शरणमें जाने योग्य मैं हूँ कहाँ)? मेरे मनमें तो श्रीरघुनाथजीकी उस प्रतिज्ञापर विश्वास है (कि उन्होंने पृथ्वीको राक्षसहीन करनेको कहा है, शरणमें जाकर) उसे व्यर्थ क्यों करूँ? यदि गुरुजन मेरा यह सुन्दर नाम (जगत्को रुलानेवाला—रावण) न रखते तो मैं क्यों (रक्त और आँसूका) समुद्र बहाता (मुझे तो अपने नामको सार्थक करना है)। फिर मैंने तो भगवान् शंकरके निर्माल्यरूपमें ये मस्तक पाये हैं (इन्हें शंकरजीको-

काटकर चढ़ा चुका था, मुझे ये निमाल्यरूपमें मिले हैं) इन्हें (श्रीरामके) चरणोंसे कैसे स्पर्श कराऊँ ? यदि सनकादिकुमार (वैकुण्ठ जाकर मुझे) शाप न देते तो (भगवान्के पार्षदरूपको छोड़कर) मैं इस स्वर्णपुरीमें क्यों आता ? यदि मैं प्रभुकी स्त्रीका हरण न करता तो अभयपद मुझे कैसे मिलता ? (मुझे तो इसी बहाने अभयपद—मोक्ष पाना है ।)'

राग कान्हरौ

[१३०]

जनि बोलहि मंदोदरि रानी ।
तेरी सौं, कछु कहत न बनई, मोहि राम बिपरीति कहानी ॥
सुनि बावरी ! सुगधि मति तेरी, जनकसुता तैं त्रिय करि जानी ।
यह सीता निरभै कौ बोहित, सिंधु सुरूप बिषै कौ पानी ॥
मोहि गवन सुरपुर कौं कोबे अपनैं काजकौं मैं हरि आनी ।
'सूरदास' स्वामी केवट बिन, क्यौं उतरै रावन अभिमानी ॥

सूरदासजी कहते हैं—(रावणने कहा—) 'रानी मन्दोदरी ! तू ऐसी बात मत कह । तेरी शपथ, मेरी और श्रीरामकी शत्रुताका वृत्तान्त (उसका रहस्य) कुछ कहा नहीं जाता । अरी पगली ! सुन, तेरी बुद्धि तो मोहित हो रही है, तूने श्रीजनकनन्दिनीको साधारण स्त्री समझा है ! यह श्रीसीताजी तो विषय-वासनारूपी जलसे भरे संसार-सागरसे अभयपद (मोक्ष) की प्राप्तिके लिये जहाजके समान हैं । मुझे (इन्हें निमित्त बनाकर) सुरपुर (वैकुण्ठ) जाना है—अतः अपने कामसे मैं इन्हें हरण करके ले आया हूँ । इनके स्वामी श्रीराम-जैसे केवटके बिना अभिमानी रावण (संसार-सागरसे) कैसे पार उतर सकता है ।'

राग मारू

[१३१]

रावन ! तेरो मृत्यु तुलानी ।
जानति हौं, तबही तैं सोता तैं अपनैं हरि आनी ॥

राघव-से प्रभु बरन सैं दुर्जन! कनक अवास।
मोहि न देखत आवई, तौ लौं कंठ उसास॥
लच्छि होइ तौ दीजिये, नाम लेत संसार।
लच्छि-बिहीनै पुरुष कौं मारत, मरत सिंगार॥
अब तोकौं याही बनै, बिना जीव की बात।
'सूरदास' तो पन रहै रामचन्द्र के हाथ॥

(मन्दोदरी कहती हैं—) 'रावण! तेरी मृत्यु आ गयी है, मैं जानती हूँ कि इसीलिये तुम श्रीजानकीजीको हरण करके अपने यहाँ ले आये हो। परम प्रभु श्रीरघुनाथजीसे शत्रुता करके अरे दुर्जन! तू स्वर्णपुरीमें रहना चाहता है? लेकिन मुझे तो यह भी देखनेमें नहीं आता कि तवतक (श्रीरघुनाथजीके आनेतक) तुम्हारे कंठमें श्वास भी रहेगी। (तवतक तुम जीवित रह सकोगे)।' (यह सुनकर रावणने कहा—) 'अपने पास लक्ष्मी हो, तब दान किया जाता है और उससे संसार नाम लेता है (संसारमें यश होता है); जो पुरुष लक्ष्मीहीन है, उसे तो सभी मारते (तिरस्कृत करते) हैं। मर जाना ही उसके लिये शोभाकी बात है। (श्रीजानकीजी साक्षात् लक्ष्मी हैं, अपने जीवित रहते मैं उन्हें दूँगा नहीं)।' सूरदासजी कहते हैं—(मन्दोदरीने कहा—) 'अब तुमसे यह विना जीवनकी (मरनेकी) बात ही बन सकती है (मरनेके अतिरिक्त तुम्हारे लिये कोई उपाय रहा नहीं)। श्रीरामचन्द्रजीके हाथों ही तुम्हारा प्रण रहेगा (उनके हाथों मरनेपर ही तुम्हारी सद्गति होगी)।'

राग सारंग

(१३२)

सुक-सारन द्वै दूत पठाए।
बानर-बेष फिरत सैना मैं, जानि बिभीषन तुरत बँधाए॥
बोचहिं मार परी अति भारी, राम-लछन तब दरसन पाए।
दीनदयालु बिहाल देखि कै, छोरी भुजा, कहाँ तैं आए॥

हम लंकेस-दूत प्रतिहारी, समुद्र-तीर कौं जात अन्हाए।
'सूर' कृपाल भए करुनामय, अपनै हाथ दूत पहिराए॥

(रावणने) शुक और सारन—ये दो दूत (श्रीरामकी सेनाका भेद लेने) भेजे थे। वे वानरोंका रूप बनाकर सेनामें घूम रहे थे; किन्तु विभीषणने उन्हें पहचानकर तुरंत बन्दी करा दिया। (श्रीराम-लक्ष्मण-तक पहुँचनेसे पूर्व) बीच (मार्ग) में ही बहुत भारी मार उनपर पड़ी, तब कहीं उन्हें प्रभुके दर्शन मिले। दीनदयाल प्रभुने उन्हें व्याकुल देखकर उनके हाथ खोल दिये और पूछा—'तुमलोग कहाँसे आये हो ?' (उन्होंने कहा—) 'हम लङ्कापतिके द्वारपाल एवं दूत हैं, समुद्र-किनारे स्नान करने जा रहे थे (इतनेमें आपके सेवकोंने पकड़ लिया)।' सूरदासजी कहते हैं कि करुणामय प्रभु (यह सुनकर) कृपालु हो गये। अपने हाथों उन्होंने दूतोंको पुष्प-माल्यादि पहनाया (और विदा कर दिया)।

राम-सागर-संवाद

राग धनाश्री

(१३३)

रघुपति जबै सिंधु-तट आए।
कुस-साथरी बैठि इक आसन, बासर तीनि बिताए॥
सागर-गरब धर्‍यौ उर भीतर, रघुपति नर करि जान्यौ।
तब रघुबीर धीर अपने कर, अगिनि-बान गहि तान्यौ॥
तब जलनिधि खरभर्‍यौ त्रास गहि, जंतु उठे अकुलाइ।
कह्यौ, न नाथ बान मोहि जारौ, सरन पर्‍यौ हौं आइ॥
आज्ञा होइ, एक छिन भीतर, जल इक दिसि करि डारौं।
अंतर मारग होइ, सबनि कौं, इहिं बिधि पार उतारौं॥
और मंत्र जो करौ देवमनि, बाँधौ सेतु बिचार।
दीन जानि, धरि चाप, बिहँसि कै, दियौ कंठ तें हार॥

यहै मंत्र सबहीं परधान्यौ, सेतु-बंध प्रभु कीजै।
सब दल उतरि होइ पारंगत, ज्यौं न कोउ इक छीजै॥
यह सुनि दूत गयौ लंका मैं, सुनत नगर अकुलानौ।
रामचंद्र-परताप दसौं दिसि, जल पर तरत पखानौ॥
दस सिर बोलि निकट बठायौ, कहि धावन! सति भाउ।
उद्यम कहा होत लङ्का कौं, कौनैं कियौ उपाउ!
जामवंत-अंगद वंधू मिलि, कैसैं इहिं पुर ऐहैं।
मो देखत जानकी नयन भरि, कैसैं देखन पैहैं॥
हौं सति भाउ कहौं लंकापति, जो जिय-आयसु पाऊँ।
सकल भेव-व्यवहार कटक कौ, परगट भाषि सुनाऊँ॥
बार-बार यौं कहत सकात न, तोहि हति लैहैं प्रान।
मेरैं जान कनकपुरि फिरिहै, रामचंद्र की आन॥
कुंभकरनहूँ कह्यौ सभा मैं, सुनौ आदि उतपात।
एक दिवस हम ब्रह्म-लोक मैं, चलत सुनी यह वात॥
काम-अंध ह्वै सब कुटुंब-धन, जैहै एकै वार।
सो अब सत्य होत इहिं औसर, को है मेटनहार॥
और मंत्र अब उर नहिं आनौं, आजु बिकट रन माँड़ौं।
गहौं बान रघुपति के सन्मुख, ह्वै करि यह तन छाँड़ौं॥
यह जस जीति परम पद पावौं, उर-संसै सब खोइ।
'सूर' सकुचि जो सरन सँभारौं, छत्री-धर्म न होइ॥

श्रीरघुनाथजी जब समुद्र-तटपर पहुँचे, तब कुश बिछाकर एक आसनसे (बिना उठे या आसन बदले) बैठे तीन दिन-रात्रि उन्होंने (समुद्रसे मार्ग देनेकी प्रार्थना करते हुए) व्यतीत किये। किंतु समुद्रने उस समय अपने हृदयमें गर्व धारण कर लिया, उसने श्रीरघुनाथजीको सामान्य मनुष्य समझ लिया था। (यह देखकर अन्तमें) धैर्यशाली

श्रीरघुनाथजीने अपने हाथमें अग्नि-बाण लिया और उसे धनुषपर चढ़ाया। (बाणके चढ़ाते ही) समुद्र भयसे खलबला उठा, उसके (भीतर रहनेवाले) जीव-जन्तु व्याकुल हो गये। (प्रकट होकर) समुद्रने कहा—प्रभो ! मैं आपकी शरणमें आकर पड़ा हूँ, मुझे अपने बाणसे भस्म न करें। यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपने जलको एक ओर हटा लूँ। इस प्रकार मेरे भीतर मार्ग हो जाय और मैं सबको पार उतार दूँ। परंतु देवशिरोमणि ! यदि आप दूसरा विचार पसंद करें तो विचार करके मेरे ऊपर पुल बाँध लें।' प्रभुने (समुद्रको) दीन समझकर हँसकर धनुष रख दिया और गलेसे उतारकर पुष्पमाल्य उसे प्रसादस्वरूप दे दिया। सभीने (समुद्रके) इस दूसरे विचारको ही प्रधानता दी (और एक स्वरसे कहा—) 'प्रभो ! पुल बाँध लीजिये, जिससे पूरी सेना उस पार उतर जाय, किसी एककी भी क्षति न हो।' (रावणका) दूत यह सब बातें सुनकर लङ्का गया। उसके द्वारा यह सुनकर कि 'श्रीरामचन्द्रजीका प्रताप दसों दिशाओंमें व्याप्त है, (उनके प्रतापसे) जलपर पत्थर तैर रहे हैं, पूरा नगर व्याकुल हो गया। रावणने दूतको बुलाकर पास बैठा लिया (और बोला—) 'दूत ! सच-सच बताओ कि (रामके दलमें) लङ्का आनेके लिये क्या उद्योग हो रहा है। किसने (क्या) उपाय किया है ? जाम्बवान्, अंगद अपने साथियोंके साथ इस नगरमें कैसे आयेंगे और मेरे जीते-जी सीताको आँखभर देख भी कैसे सकेंगे ?' (दूतने कहा—) 'लंकेश्वर ! यदि आप आज्ञा दें और जीवनदान दें (मारेंगे नहीं, यह वचन दें) तो मैं सच्चे मनसे (सब बातें) कहूँ। श्रीरामकी सेनाका सारा भेद और बर्ताव प्रत्यक्ष (सबके सामने) कहकर सुना दूँ। (वे कपि तो) बार-बार ऐसा कहते संकोच ही नहीं करते कि आपको वे मार डालेंगे, प्राण ले लेंगे। मुझे भी यही जान पड़ता है कि स्वर्णपुरी लङ्कामें श्रीरामचन्द्रजीकी विजय घोषित होगी।' सूरदासजी कहते हैं—(उसी समय) कुम्भकर्णने भी राजसभामें कहा—'पहले जो उत्पात (अमङ्गल समाचार) हुआ, उसे सुनो ! मैंने एक दिन ब्रह्मलोकमें यह

चर्चा सुनी कि तुम्हारे कामान्ध होनेसे (राक्षसोंके) सब धन एवं परिवारका एक ही बार नाश हो जायगा। इस समय वही बात अब सत्य हो रही है; भला, इसे मिटा कौन सकता है। अब मैं दूसरे किसी विचारको हृदयमें स्थान नहीं दूँगा, आज भयंकर युद्ध करूँगा। श्रीरघुनाथजीके सामने बाण पकड़ूँगा (उनसे युद्ध करूँगा) और (उनके देखते-देखते) यह शरीर छोड़ दूँगा। यह सुयश कमाऊँगा (कि कुम्भकर्ण श्रीरामके हाथों मारा गया) तथा परम पद प्राप्त करूँगा। हृदयके सारे संदेहोंको अब नष्ट कर दूँगा। यदि संकोच करके मैं (विभीषणकी भाँति) शरण लूँ तो यह क्षत्रिय (योधा) के योग्य धर्म नहीं होगा।'

सेतु-बन्धन

राग धनाश्री

[१३४]

रघुपति चित्त बिचार कर्‍यौ।
नातौ मानि सगर सागर सौं, कुस-साथरी पर्‍यौ॥
तीनि जाम अरु बासर बीते, सिंधु गुमान भर्‍यौ।
कीन्हौ कोप कुँवर कमलापति, तब कर धनुष धर्‍यौ॥
ब्रह्म-बेष आयौ अति ब्याकुल, देखत बान डर्‍यौ।
द्रुम-पषान प्रभु बेगि मँगायौ, रचना सेतु कर्‍यौ॥
नल अरु नील बिस्वकर्मा-सुत, छुवत पषान तर्‍यौ।
'सूरदास' स्वामी प्रताप तें सब संताप हर्‍यौ॥

श्रीरघुनाथजीने अपने चित्तमें विचार किया और (अपने पूर्वज) महाराज सगरके सम्बन्धसे सागरसे नाता मानकर (यह सोचकर कि सगर-पुत्रोंद्वारा खोदा गया सागर मेरा सम्मान्य है) कुश बिछाकर (प्रार्थना करने) बैठ गये। इस प्रकार बैठे उन्हें तीन रात्रि तथा दिन बीत गये; किंतु समुद्र अभिमानमें भरा था। (उसने कोई ध्यान नहीं दिया)। तब

श्रीरघुनाथजीने क्रोध करके हाथमें धनुष उठाया (और बाण चढ़ाया)। उनके बाणको देखते ही समुद्र डर गया एवं अत्यन्त व्याकुल होकर ब्राह्मणका वेश बनाकर आया । (समुद्रकी सम्मतिसे) प्रभुने वृक्ष एवं पत्थर मँगवाकर शीघ्रतापूर्वक पुलका निर्माण कराया । नल और नील— ये दोनों भाई विश्वकर्माके पुत्र थे, उनके छूते ही पत्थर पानीपर तैरने लगे (इस प्रकार पुल बन गया)। सूरदासजी कहते हैं— कि प्रभुने अपने प्रतापसे ही मेरे समस्त कष्टोंको दूर कर दिया ।

राग मारू

[१३५]

आपुन तरि-तरि औरनि तारत ।
असम अचेत प्रगट पानी मैं, बनचर लै-लै डारत ॥
इहिं बिधि उपले तरत पात ज्यौं, जदपि सैल अति भारत ।
बुद्धि न सकति सेतु-रचना रचि, राम-प्रताप बिचारत ॥
तिहिं जल तृन, पसु, दारु बूड़ि अपने सँग औरनि पारत ।
तिहिं जल गाजत महाबीर सब, तरत आँखि नहिं मारत ॥
रघुपति-चरन-प्रताप प्रगट सुर, ब्यौम बिमाननि गावत ।
'सूरदास' क्यौं बूड़त कलऊ, नाम न बूड़न पावत ॥

(कितना आश्चर्य है) वानरगण अचेतन विषम पत्थरोंको ला-लाकर समुद्रके जलमें डालते हैं और वे पर्वत यद्यपि अत्यन्त भारी हैं, तब भी सब पत्थर इस प्रकार जलपर तैरते हैं; जैसे पत्ते हों । वे स्वयं तो तैरते ही हैं, अपने ऊपरसे (अथवा अपने सहारे) औरोंको भी पार करते हैं । बुद्धिकी देवी सरस्वती भी ऐसे सेतुका निर्माण नहीं कर सकती थीं, वे भी बैठकर श्रीरामके प्रतापका ही चिन्तन करती हैं कि समुद्रके जिस जलमें तिनके, पशु और काष्ठतक (लहरोंमें) डूब जाते हैं और अपने साथ दूसरोंको भी डुबा देते हैं, उसी समुद्र-जलके

ऊपरसे सब महावीर वानर गर्जना करते हुए जा रहे हैं और उन्हें पार जानेमें एक निमेषका विलम्ब नहीं हो रहा है। देवतालोग विमानोंमें बैठे श्रीरघुनाथजीके श्रीचरणोंके इस प्रत्यक्ष प्रतापका गान कर रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं—उन श्रीरघुनाथजीका नाम लेनेवाला (भवसागरमें) डूबने नहीं पाता, फिर मैं ही इस कलियुगमें कैसे डूब सकता हूँ।

राग धनाश्री

[१३६]

सिंधु-तट उतरे राम उदार।
रोष बिषम कीन्हौ रघुनन्दन, सिय की बिपति बिचार॥
सागर पर गिरि, गिरि पर अंबर, कपि घन के आकार।
गरज-किलक-आघात उठत, मनु दामिनि पावस-झार॥
परत फिराइ पयोनिधि भीतर, सरिता उलटि बहाईं।
मनु रघुपति-भयभीत सिंधु, पत्नी प्यौसार पठाईं॥
बाला-बिरह दुसह सबही कौं, जान्यौ राजकुमार।
बानवृष्टि, स्रोनित करि सरिता, ब्याहत लगी न बार॥
सुबरन लंक-कलस-आभूषन, मनि-मुका-गन हार।
सेतु-बन्ध करि तिलक, 'सूर' प्रभु रघुपति उतरे पार॥

उदार श्रीराम समुद्रके किनारे उतर गये (उन्होंने तटपर पड़ाव डाल दिया)। श्रीजानकीजीकी विपत्तिका विचार करके श्रीरघुनाथजीने भयंकर क्रोध किया। समुद्रपर (सेतुबन्धके) पर्वत थे तथा उनपर आकाश था और उन पर्वतोंपरसे पार जाते वानरसमूह आकाशमें छाये बादलोंके समान जान पड़ते थे। कपिदलकी गर्जना एवं किलकारीकी प्रतिध्वनि ऐसी हो रही थी, मानो वर्षाऋतुकी झड़ी लगी हो और उसमें बिजलीका घोष हो रहा हो। (वानरोंका लङ्काको जाता दल ऐसा लगता है) जैसे जो नदियाँ समुद्रमें गिर रही थीं, उन्हें

उल्टे लौटाकर दूसरी दिशामें प्रवाहित कर दिया है, मानो समुद्रने श्रीरघुनाथजीके भयसे अपनी पत्नियोंको मायके भेज दिया है। किन्तु राजकुमार श्रीरामने समझ लिया कि स्त्रीके वियोगका असहनीय दुःख सभीको होता है (इससे समुद्रका पत्नीवियोगजन्य दुःख दूर करनेके लिये) बाणोंकी वर्षा करके रक्तकी नदी प्रवाहित करके (उससे समुद्रका) विवाह करा देनेमें उन्हें देर नहीं लगी। (समुद्रके इस नवीन विवाहमें) सोनेकी लङ्का ही मानो कलश थी, (युद्धभूमिमें बिखरे) मणियों तथा मोतियोंकी मालाएँ आभूषण थे। सूरदासजी कहते हैं—श्रीरघुनाथजी मानो सेतुबन्धरूपी मङ्गल-तिलक समुद्रको लगाकर पार उतरे।

राग सारंग

[१३७]

अनैसे ठाढ़े सागर तीर।
अग्रज-अनुज मनोहर-मूरति, सोभित दोऊ बीर॥
दछिन-बाम भुज बान-चाप गहि, अतिबल मद रनधीर।
उत्तर दिसा त्रिकूट-सिखर पर वह कपिदल की भीर॥
इत रति-रत देखौ ये कारन………उगिलत नीर।
दस सिर हरन दास 'सूरज' प्रभु मिलि मेटन मन पीर॥

बड़े और छोटे दोनों भाई (श्रीराम-लक्ष्मण) मनोहर मूर्तिधारी हैं। अत्यन्त बलवान्, मत्तगयंद-जैसे रणधीर दोनों भाई दाहिने हाथमें बाण और बायें हाथमें धनुष लिये रोषमें भरे समुद्रके किनारे खड़े शोभित हो रहे हैं। उत्तर ओर त्रिकूट-पर्वतके शिखरपर वह कपियोंके दलकी भीड़ एकत्र हो रही है। (इतनेपर भी) यहाँ यह (रावण) भोग-विलासमें लगा है; देखो, इस कारणसे (रानी मन्दोदरी) (नेत्रोंसे) आँसू बहा रही है। सूरदासजी कहते हैं—रावणके दसों मस्तकोंको काटनेवाले प्रभु सेवकोंसे मिलकर (उनपर कृपा करके) उनके मनकी पीड़ा दूर कर देनेवाले हैं।

श्रीसीताजीको त्रिजटाका आश्वासन

राग मारू

[१३८]

अब न करौ जिय सोच जानकी ।
रघुपति बीर तीर सरितापति रोकत है जलनिधान की ॥
देखि भुजा-प्रताप कटि-मेखल छत्र-चमर दुतिमान की ।
असुर कहै परतीति कथा न वह, कपि जु कहै रघुनाथ बानकी ॥
सुनि मम बचन निवारनइन जलकछुक धरौचित खान-पान की ।
इहि दिन छिन कमाउ···लंगी आसा पूर ग्रही आन-आन की ॥
उटज कहत जगजीतनि कहसतुझमनअवधिविकटहरकेबरदानकी
'सूरदास' प्रभु रिपु के भुज मेंटिन···तमि कुल-संतान की ॥

सूरदासजी कहते हैं—(त्रिजटा कहती है—) 'श्रीजानकीजी ! अब शोक मत करो । वीर श्रीरामचन्द्रजी समुद्रकिनारे आ गये हैं और जलनिधिको रोक (बाँध) रहे हैं। उनकी भुजाका प्रताप तो देखो कि (मन्दोदरीकी) कटिकी मेखला (करधनी) और (रावणके) प्रकाशमान छत्र-चामर उन्होंने वहींसे काट दिये । मैं राक्षसी हूँ, अतः मेरी कही इस बातपर आपको विश्वास न हो, तो भी वह रघुनाथके बाणका जो प्रभाव कपि (हनुमान्जी) ने कहा था, उसपर तो विश्वास करो । मेरी बात सुनो ! इन नेत्रोंसे अश्रु बहाना बंद करो और कुछ तो खाने-पीनेका विचार चित्तमें करो । ये (विपत्तिके) दिन अब क्षणोंकी भाँति व्यतीत हो जायँगे; [अब आप प्रभुसे] मिलेंगी, आपकी आशा पूरी होगी, आपके व्रतकी लज्जा आपके पाणिग्रही प्रभुको है। आप ही तो कहती हैं कि प्रभुने कुटियामें रहते समय विश्व-विजय करनेको कहा था; किंतु आपके मनमें तो (रावणको मिले) शंकरजीके विकट वरदानकी सीमा बन गयी है (कि उस वरदानके प्रभावसे रावण अजेय है; किंतु यह भय आप छोड़ दें) । प्रभु शत्रुकी भुजाएँ काट देंगे और उसके [बन्धु-बान्धवोंको] कुल-संतानसहित नष्ट कर देंगे ।'

मन्दोदरीकी रावणसे प्रार्थना

राग धनाश्री

[१३९]

देखि रे, वह सारँगधर आयौ ।
सागर-तीर भीर बानर की, सिर पर छत्र तनायौ ॥
संख-कुलाहल सुनियन लागे, लीला-सिंधु बँधायौ ।
सोवत कहा लंक गढ़ भीतर, अति कै कोप दिखायौ ॥
पदुम कोटि जिहिं सैना सुनियत, जंतु जु एक पठायौ ।
'सूरदास' हरि बिमुख भए जे, तिनि केतिक सुख पायौ ! ॥

(मन्दोदरी रावणसे कहती है—) 'अरे देखो ! वे शार्ङ्गधारी श्रीराम आ गये । समुद्रके किनारे वानर-भालुओंकी भीड़ हो रही है । श्रीरामके मस्तकपर छत्र लगा है । शङ्खकी ध्वनिका कोलाहल सुनायी पड़ने लगा है । समुद्र तो उन्होंने खेल-खेलमें बाँध लिया । वे अत्यन्त क्रोधित दिखलायी पड़ते हैं । तुम अब भी दुर्गके भीतर क्या सो रहे हो ? (पहले तो उन्होंने) एक साधारण दूत यहाँ भेजा था (जिसने लङ्का जला दी और अब) सुना जाता है कि एक करोड़ पद्म सेना उनके साथ है ।' सूरदासजी कहते हैं—जो श्रीहरिसे विमुख हो गये; उन्होंने कितना सुख पाया ? (प्रभुसे विमुख रावणको दुःख तो भोगना ही ठहरा) ।

राग मारू

[१४०]

मो मति अजहुँ जानकी दीजै ।
लंकापति-तिय कहति पिया सौं, यामैं कछु न छीजै ॥
पाहन तारे, सागर बाँध्यौ, तापर चरन न भीजै ।
बनचर एक लंक तिहिं जारी, ताकी सरि क्यौं कीजै ? ॥

चरन टेकि, दोउ हाथ जोरि कै, बिनती क्यौं नहिं कीजै ?।
वे त्रिभुवन-पति, करहिं कृपा अति, कुटुँब-सहित सुख जीजै ॥
आवत देखि बान रघुपति के, तेरौ मन न पसीजै।
'सूरदास' प्रभु लंक जारि कै, राज बिभीषन दीजै ॥

सूरदासजी कहते हैं कि लङ्केश्वरकी स्त्री उससे कहती है—'प्रियतम ! मेरी समझसे श्रीजानकीजीको दे देना चाहिये, इसमें तुम्हारी कोई हानि नहीं है। जिन्होंने (जलपर) पत्थर तैराकर समुद्रको बाँध लिया, समुद्र पार करनेमें जिनके चरण भींगे तक नहीं, जिनके भेजे एक कपिने लङ्का जला दी, उनकी बराबरी (उनसे झगड़ा) कैसे किया जा सकता है। घुटने टेककर, दोनों हाथ जोड़कर उनसे क्षमा-प्रार्थना क्यों नहीं करते ? वे तो त्रिलोकीनाथ हैं, तुमपर अत्यन्त कृपा करेंगे, (उनकी कृपासे) परिवारके साथ सुखपूर्वक जीवित रह सकोगे। उन श्रीरघुनाथके बाणोंको आता देखकर भी तुम्हारा चित्त पिघलता क्यों नहीं ? प्रभुने लङ्काको तो जलवा दिया और यहाँका राज्य विभीषणको दे दिया (विभीषणको राजतिलक कर दिया। इतनेपर भी तो समझ जाओ। जिससे प्राण तो बच जायँ)।'

रावणकी गर्वोक्ति

राग मारू

[१४१]

कहा तू कहति तिय, बार-बारी।
कोटि तैंतीस सुरसेव अहनिसिकरैं, राम अरु लच्छमनहैंकहारी ॥
मृत्यु कौं बाँधि मैं राखियौ कूपमैं, देहि आव न, कहा डरति नारी
कहति मंदोदरी, मेटिकोसकैतिहि, जो रची 'सूर'प्रभु होनहारी ॥

(रावण कहता है—) 'रानी ! तू यही बात बार-बार क्या कहती है। तैंतीस करोड़ देवता रात-दिन मेरी सेवा करते हैं। (मेरे लिये)

राम-लक्ष्मण क्या वस्तु हैं। मैंने मृत्युको बाँधकर कुएँमें बंदी कर रखा है, मेरी स्त्री होकर तू डरती क्यों है ? उन्हें आने तो दे।' सूरदासजी कहते हैं (यह सुनकर) मन्दोदरीने कहा—'प्रभुने जो होनहार निश्चित कर दी है, भला, उसे कौन मिटा सकता है।'

श्रीराम-अङ्गद-संवाद

[१४२]

लंक प्रति राम अंगद पठावै।
जाऔ बली बीर सुत बालि के,
बिबिध बानी कहै मुखहि भावै॥
बचन अंगद कहै, कहाँ कौं पठवत
मोहि इतनी कहौ नाथ मेरे।
कहौ प्राकार और द्वार तोरन सहित
लंक कौं लै धरौं अग्र तेरे॥
सकल बनचरन कौं लै धरौं लंक मैं,
कहौ गिरि-सिलन सौं सिंधु पूरूँ।
'सूर' सुन बोल अंगद कहत राम सौं,
प्रबल बल कहौ अरि-बंस चूरूँ॥

श्रीरामने अङ्गदको लङ्का भेजते हुए कहा—'वालीके बलवान् कुमार ! तुम इस प्रकार अनेक युक्तिपूर्ण बातें कहते हो, जो सबके मनको पसंद आती हैं, अतः (दूत बनकर तुम) लङ्का जाओ।' (प्रभुकी यह बात सुनकर) अङ्गदजी कहने लगे—'मेरे स्वामी ! आप मुझे कहाँ भेज रहे हैं, यह तो बताइये ! (लङ्का दूत बनाकर मुझे भेजनेकी क्या आवश्यकता है ?) आप आज्ञा दें तो चहारदीवारी तथा तोरणद्वार (प्रवेशद्वार) सहित पूरी लङ्का (उखाड़कर) आपके आगे रख दूँ, अथवा समस्त कपिदलको उठाकर लङ्कामें पहुँचा दूँ, या आप कहें तो समुद्रको पर्वतोंसे

पाट दूँ ।' सूरदासजी कहते हैं कि प्रभुकी बात सुनकर अङ्गदजीने श्रीरामसे कहा—'आप आज्ञा दें तो अपने महान् बलसे (मैं अकेला ही) शत्रुको वंशसहित चूर्ण (नष्ट) कर दूँ ।'

[१४३]

बीर ! सहज मैं होय तौ बल न कीजै ।
रीति महापुरुष की आदि तें अंत लौं,
जानि कै दुख काहू कौं न दीजै ॥
जाय अंगद ! कहौ आपनी साधुता,
यह बचन कहत कछु दोष नाहीं ।
लाभ अति होयगौ सत्रु करि मित्रता,
दीनता भाखियै जाहि ताहीं ॥
साधु के पास जगदीस कोऊ कहै,
बोलियै साधुता टेक छोरी ।
बालि-नंदन प्रति राम ऐसैं कहैं,
सबन की 'सूर' प्रभु हाथ डोरी ॥

वालीकुमार अङ्गदसे श्रीरामजीने इस प्रकार कहा—'वीर ! कोई कार्य सहजमें ही (समझाने-बुझानेसे) होता हो तो वहाँ बलप्रयोग नहीं करना चाहिये । प्रारम्भसे अन्ततक महापुरुषोंकी यही पद्धति है कि जान-बूझकर किसीको दुःख नहीं देना चाहिये । अङ्गद ! लङ्का जाकर तुम अपने उत्तम स्वभावके अनुरूप ही बात कहो (नम्रतासे बात करो) । नम्रताके वचन कहनेमें कुछ दोष नहीं है । शत्रुसे मित्रता करके अत्यन्त लाभ ही होगा, फिर (नियम यही है कि) चाहे जिससे बात करनी हो, नम्रतासे ही बोलना चाहिये । सज्जन पुरुषके पास कोई भी अपनेको (अभिमानसे चाहे) जगदीश्वर (सर्वसमर्थ) ही क्यों न बताये; स्वयं उससे अहंकारका त्याग करके सज्जनतासे ही बोलना चाहिये ।' सूरदासजी कहते हैं कि सबके संचालनका सूत्र तो प्रभुके ही हाथोंमें है (अतः प्रभुकी आज्ञा ही अङ्गदजीको माननी ठहरी) ।

अङ्गदका लङ्कागमन

[१४४]

श्रीराम-आदेस अंगद चल्यौ लंक कौं,
प्रभु जब दोउ करन पीठ थापी।
धरनि धसि सिंधु गई, सभा उलटी भई,
इनहिँ मैं कौन रावन प्रतापी॥
(श्री) राम कौं सत्रु कर, आप सिर छत्र धर,
रहन न पावै कहूँ ऐसौ पापी।
ठौरहीं ठौर बहु रूप रावन भए,
सबहि अंगद प्रति बचन बोले॥
'सूर' अंगद कहै, मा हुती सूकरी,
बहुत रावन जने पेट खोले॥

प्रभुने जब दोनों हाथों पीठ ठोंककर प्रोत्साहित किया, तब श्रीराम-के आदेशसे अङ्गद लङ्काको चले। उनके चलनेसे पृथ्वी समुद्रमें धसकने लगी। (जब वे रावणकी राजसभामें पहुँचे, तब तो) पूरी सभा उलट गयी (मुँहके बल पृथ्वीपर गिर पड़ी)। (सबके गिर जानेसे यह पता नहीं चल सका कि) इनमें प्रतापी रावण कौन है। जो श्रीरामको शत्रु बनाकर स्वयं सिरपर छत्र धारण करता है (राजा बना बैठा है), ऐसा पापी कहीं रहनेको स्थान नहीं पा सकता (अङ्गदको चकित करनेके लिये मायासे) स्थान-स्थानपर अनेक रूपधारी रावण प्रकट हो गये और सभी अङ्गदसे बोलने लगे (उनके प्रश्नोंका उत्तर देने लगे)। सूरदासजी कहते हैं कि अङ्गदजीने (बिना आश्चर्यमें पड़े) कहा—जान पड़ता है कि रावणकी माता शूकरी थी, उसने पेट खोलकर (निर्लज्ज होकर) बहुत-से रावण उत्पन्न किये हैं।'

राग मारू

[१४५]

लंकपति पास अंगद पठायौ।
सुनि अरे अंध दसकंध, लै सीय मिलि,
सेतु करि बंध रघुबीर आयौ॥

यह सुनत परजर्‍यौ, बचन नहिं मन धर्‍यौ,
कहा तैं राम सौं मोहि डरायौ।
सुर-असुर जीति मैं सब किए आप बस,
'सूर' मम सुजस तिहुँ लोक छायौ॥

(श्रीरामने) लङ्कापतिके पास अङ्गदको भेजा। (वहाँ जाकर अङ्गदने कहा—), 'अरे दशानन ! सुन। समुद्रपर सेतु बाँधकर श्रीरघुनाथजी आ गये हैं, (कुशल इसीमें है कि) श्रीजानकीजीको लेकर तू उनसे मिल ले (उनकी शरणमें चला जाय)।' सूरदासजी कहते हैं (अङ्गदकी) यह बात सुनकर रावण प्रज्वलित (क्रोधान्ध) हो उठा, वह अङ्गदकी बात हृदयमें धारण नहीं कर सका (मान नहीं सका)। बोला—'तू रामसे मुझे डराता है ? देवता और दैत्य सबको जीतकर मैंने अपने वशमें कर लिया है, मेरा सुयश तीनों लोकोंमें फैल रहा है।'

[१४६]

बालि-नंदन बली, बिकट बनचर महा,
द्वार रघुबीर कौ बीर आयौ।
पौरि तैं दौरि दरवान, दससीस सौं
जाइ सिर नाइ, यौं कहि सुनायौ॥
सुनि स्रवन, दस-बदन सदन अभिमान,
कै नैन की सैन अंगद बुलायौ।
देखि लंकेस कपि-भेष हर-हर हँस्यौ,
सुनौ भट, कटक कौ पार पायौ॥
बिबिध आयुध धरे, सुभट सेवत खरे,
छत्र की छाहँ निरभय जनायौ।
देव-दानव महाराज-रावन-सभा,
कहन कौं मंत्र इहँ कपि पठायौ॥

रंक रावन ! कहा ऽतंक तेरौ इतौ,
दोउ कर जोरि बिनती उचारौं।
परम अभिराम रघुनाथ के नाम पर,
बीस भुज सीस दस वारि डारौं ॥
झटकि, हाटक-मुकुट पटकि झट भूमि सौं
झारि तरवारि तव सिर सँहारौं।
जानकीनाथ के हाथ तेरौ मरन,
कहा मति-मंद तोहि मध्य मारौं ॥
पाक पावक करै, बारि सुरपति भरै,
पौन पावन कर द्वार मेरे।
गान नारद करै, बार सुरगुरु कहै,
बेद ब्रह्मा पढ़ै पौरि टेरे ॥
जच्छ, मृतु, बासुकी नाग, मुनि, गंधरब,
सकल बसु, जीति मैं किए चेरे।
सुनि अरे संठ ! दसकंठ कौं कौन डर,
राम तपसी दए आनि डेरे ॥
तप बली सत्य तापस बली, तप बिना,
बारि पर कौन पाषान तारै।
कौन ऐसौ बली सुभट जननी जन्यौ,
एकहीं बान तकि बालि मारै ॥
परम गंभीर, रनधीर दसरथ-तनय,
सरन गएँ कोटि अवगुन बिसारैं।
जाइ मिलि अंध दसकंध, गहि दंत तृन,
तौ भलैं मृत्यु-मुख तैं उबारैं ॥

कोपि, करवार, गहि कह्यौ लंकाधिपति,
मूढ़ ! कहा राम कौ सीस नाऊँ।
संभु की सपथ, सुनि कुकपि कायर कृपन,
स्वास आकास बनचर उड़ाऊँ ॥
होइ सनमुख भिरौं, संक नहिं मन धरौं,
मारि सब कटक सागर बहाऊँ।
कोटि तैंतीस मम सेव निसिदिन करत,
कहा अब राम नर सौं डराऊँ ॥
पर भहराइ भभकंत रिपु घाइ सौं,
करि कदन रुधिर भैरौं अघाऊँ।
'सूर' साजौं सबै, देहुँ डौंड़ी अबै,
एक तें एक रन करि बताऊँ ॥

द्वारपरसे दौड़ते हुए जाकर द्वारपालने मस्तक झुकाकर (अभिवादन करके) यह संदेश दशाननसे कह सुनाया कि 'वालीका महाबलवान् पुत्र' अत्यन्त भयंकर कपि अङ्गद श्रीरघुनाथका दूत बनकर आया है और वह वीर द्वारपर खड़ा है ।' (द्वारपालकी) यह बात कानसे सुनकर अभिमानके भवन (महान् अभिमानी) रावणने नेत्रके संकेतसे (बिना कुछ कहे) अङ्गदको बुलाया (सभामें आनेकी अनुमति दी)। कपिवर अङ्गदका वेश देखकर रावण अट्टहास करके हँस पड़ा और बोला—'तुम अच्छे सुभट हो, सुनो ! तुम्हारी सेनाका पार (उसके बलका पता) मैंने पा लिया। अनेक प्रकारके शस्त्र लिये बहुत-से (राक्षस) योधा खड़े होकर (रावणकी) सेवा कर रहे थे । इस प्रकार छत्रकी छायामें (राजसिंहासनपर) बैठा वह (अङ्गदको भी) निर्भय प्रतीत हुआ। (उसने आगे कहा—) 'महाराज रावणकी सभामें देवता एवं दैत्योंके अधिपति (तुम्हारे स्वामीने) संधिकी बात कहनेके लिये एक बंदर भेजा है ! (इसीसे तुम्हारे दलकी बुद्धि और शक्तिका अनुमान हो जाता है।) (यह सुनकर अङ्गदजी बोले)— 'अरे कंगाल रावण ! तेरा इतना क्या आतङ्क है कि मैं दोनों हाथ

जोड़कर तुझसे प्रार्थना करूँ। परम सुन्दर श्रीरघुनाथजीके नामपर (उनके नामके प्रतापसे) तेरे बीस बाहु और दसों मस्तक न्योछावर कर दूँ (इन्हें मैं तुच्छ मानता हूँ)। तेरे स्वर्ण-मुकुटको छीनकर, (तुझे) सहसा पृथ्वीपर पटककर, तलवार खींचकर तेरे सिर मैं काट लेता; किंतु अरे मंदबुद्धि ! तेरी मृत्यु तो श्रीजानकीनाथके हाथों होनेवाली है, अतः बीचमें ही मैं तुझे क्या मारूँ।' (तब रावणने कहा-) 'मेरी रसोई अग्निदेव बनाते हैं, देवराज इन्द्र मेरे यहाँ पानी भरते हैं, वायुदेव मेरे द्वारको स्वच्छ करते हैं, देवर्षि नारद मेरा यश गाते हैं, देवगुरु बृहस्पति मुझे तिथि तथा दिन बतलाते हैं और ब्रह्माजी मेरे दरवाजेपर खड़े उच्च स्वरसे वेदपाठ करते रहते हैं। (तुम्हें पता है ?) मैंने यक्ष, मृत्यु, वासुकि नाग, मुनि, गन्धर्व तथा सभी वसुओंको जीतकर अपना दास बना लिया है। अरे मूर्ख ! सुन, यदि तपस्वी रामने आकर डेरा डाल ही दिया है तो इसका रावणको क्या भय !' (तब अङ्गदने कहा)—'सत्य तो यह है कि तप ही बली है, तपस्वी ही बलवान् होते हैं। तपस्याके बिना जलपर पत्थरोंको कौन तैरा सकता है ? (श्रीरामको छोड़कर) किस माताने ऐसे बलवान् योधाको उत्पन्न किया है, जो एक ही बाणके निशानेसे वालीको मार देता ? रणधीर श्रीदशरथराजकुमार अत्यन्त गम्भीर हैं, शरणमें जानेपर वे करोड़ों दोषोंको भी विस्मृत कर देते हैं; अतः अंधे (विचारहीन) रावण ! दाँतोंमें तिनका दबाकर तू उनसे जाकर मिल (उनकी शरणमें चला जा) तो भले मृत्युके मुखसे तू बच जाय (अन्यथा बच नहीं सकता)।' सूरदासजी कहते हैं—तब क्रोध करके तलवार पकड़कर रावणने कहा—'अरे मूर्ख ! मैं रामको क्यों मस्तक झुकाऊँ ? अरे कायर, कृपण, कुकपि ! सुन। भगवान् शंकरकी शपथ करके कहता हूँ कि बंदरोंको फूँकसे आकाशमें उड़ा दूँगा। सम्मुख होकर भिड़ूँगा, अपने मनमें तनिक भी भय नहीं लाऊँगा, सारी कपिसेनाको मारकर समुद्रमें बहा दूँगा। तैंतीस करोड़ देवता रात-दिन मेरी सेवा करते हैं, (ऐसी दशामें) अब मैं क्या एक मनुष्य रामसे डर जाऊँ ? मेरे

प्रज्वलित (प्रचण्ड) आघातसे शत्रु धड़ाधड़ पृथ्वीपर गिरेंगे, उनका विनाश करके रक्तसे भैरवको तृप्त कर दूँगा। सभी वीरोंको अभी सज्जित करता हूँ, अभी भेरी बजवाता हूँ, एक-एकसे युद्ध करके बताऊँगा कि (रावणसे मुठभेड़ लेना क्या अर्थ रखता है)।'

[१४७]

रावन ! तब लौं ही रन गाजत।
जब लौं सारँगधर-कर नाहीं साँरग-बान बिराजत॥
जमहु कुबेर इंद्र हैं जानत, रचि-रचि कै रथ साजत।
रघुपति रबि-प्रकास सौं, देखौं, उडुगन ज्यौं तोहि भाजत॥
ज्यौं सहगमन सुंदरी के सँग, बहु बाजन हैं बाजत।
तैसैं 'सूर' असुर आदिक सब, सँग तेरे हैं गाजत॥

सूरदासजी कहते हैं—(अङ्गदने कहा—) 'रावण ! तभीतक तू युद्धका नाम लेकर गर्जना कर रहा है, जबतक शार्ङ्गधारी श्रीरामके हाथोंमें उनका शार्ङ्गधनुष और बाण शोभित नहीं होता। (उनके धनुषपर बाण चढ़ा लेनेपर तुम्हारी सारी हेकड़ी भूल जायगी।) यमराज, कुबेर और इन्द्र भी इस बातको जानते हैं; अतः सावधानीसे सवाँरकर वे (तेरी विवशतासे छूटकर अपने लोकोंमें जानेके लिये) अपना-अपना रथ सजा रहे हैं। श्रीरघुनाथजीरूपी सूर्यके प्रतापरूपी प्रकाशसे मैं तुझे तारोंके समान भागते (अदृश्य होते) देखूँगा। जैसे पतिके सङ्ग सती होनेवाली नारीके साथ बहुत-से बाजे बजते हैं, वैसे ही (मरणासन्न) तेरे साथ ये असुर-राक्षस आदि गर्जना कर रहे हैं।'

अङ्गद-रावण-संवाद

राग मारू

(१४८)

जानौं हौं बल तेरौ रावन।
पठवौं कुटुँब-सहित जम-आलय, नैंकु देहि धौं मोकौं आवन॥

अगिनि-पुंज सित बान-धनुष-धरि,तोहि असुर-कुल सहित जरावन
दारुन कोस सुभट बर सन्मुख, लैहौं संग त्रिदस-बल पावन ॥
करिहौं नाम अचल पसुपति कौ,पूजा-बिधि-कौतुक दिखरावन ।
दसमुख छेदि सुपक नव फल ज्यौं, संकर-उर दससीस चढ़ावन ॥
दैहौं राज बिभीषन जन कौं, लंकापुर रघु-आन चलावन ।
'सूरदास' निस्तरिहैं यह जस,करि-करि दीन-दुखित जन गावन ॥

(अङ्गदने रावणसे कहा—श्रीरघुनाथने यह संदेश भेजा है—) रावण ! तेरे बलको मैं जानता हूँ । तनिक मुझे (युद्धमें) आ जाने दे, फिर तुझे कुटुम्बके साथ यमलोक भेजे देता हूँ । अग्निपुञ्जके समान उज्ज्वल (ज्वालामय) बाण धनुषपर चढ़ाकर तुझे राक्षस-कुलके साथ भस्म कर दूँगा । पवित्र देवताओंका समूह ही भयंकर वानर योद्धाओंके रूपमें है, सम्मुख युद्धमें उन श्रेष्ठ वीरोंको साथ लूँगा । (तुम्हारे-जैसे पशुकी बलि देकर) पूजा-पद्धतिका ऐसा खेल दिखलाऊँगा कि पशुपति-का नाम (भगवान् शिव पशुपति हैं, यह यश) अविचल बना दूँगा । भली प्रकार पके हुए नवीन फलकी भाँति (सरलतासे) तुम्हारे दसों मस्तक काटकर भगवान् शंकरके हृदयपर दस मस्तकोंकी मुण्डमाला चढ़ा दूँगा । लङ्कामें रघुवंशकी दुहाई (विजय-घोषणा) करनेवाले अपने भक्त विभीषणको लङ्कानगरीका राज्य दे दूँगा ।' सूरदासजी कहते हैं—दीन-दुखी लोग प्रभुके इस सुयशका गान करके संसार-सागरसे पार होते रहेंगे ।

[१४९]

मोकौं राम-रजायसु नाहीं ।
नातरु सुनि दसकंध निसाचर,प्रलय करौं छिन माहीं ॥
पलटि धरौं नव-खंड पुहुमि तल, जो बल भुजा सम्हारौं ।
राखौं मेलि, भँडार सूर-ससि, नभ कागद ज्यौं फारौं ॥

जारौं लंक, छेदि दस मस्तक, सुर-संकोच निवारौं।
श्रीरघुनाथ-प्रताप चरन करि उर तैं भुजा उपारौं॥
रे रे चपल बिरूप, ढीठ, तू बोलत बचन अनेरौ।
चितवै कहा पानि-पल्लव-पुट, प्रान प्रहारौं तेरौ॥
केतिक संब जुगै जुग बीते, मानव असुर-अहेरौ।
तीनि लोक बिख्यात बिसद जस, प्रलय नाम है मेरौ॥
रे रे अंध बीसहू लोचन, पर-तिय हरन बिकारी।
सूने भवन गवन तैं कीन्हौ, सेष-रेख नहिं टारी॥
अजहूँ कह्यौ सुनै जो मेरौ, आए निकट मुरारी।
जनक-सुता लै चलि, पाइनि परि, श्रीरघुनाथ-पियारी॥
"संकट परैं जो सरन पुकारौं, तौ छत्री न कहाऊँ।
जन्महि तैं तामस आराध्यौ, कैसैं हित उपजाऊँ॥
अब तौ 'सूर' यहै बनि आई, हर कौ निज पद पाऊँ।
ये दस सीस ईस-निरमायल, कैसैं चरन छुवाऊँ"?॥

(अङ्गद कहते हैं—) 'राक्षस रावण ! सुन । मुझे श्रीरघुनाथजी-की आज्ञा नहीं है, नहीं तो एक क्षणमें मैं प्रलय ढहा दूँ । यदि अपने बाहुबलको सम्हाल लूँ (पूरा बाहुबल दिखानेपर तुल जाऊँ) तो पृथ्वीके नवों खण्डोंको उलटकर नीचे कर दूँ, सूर्य और चन्द्रमाको अपने भंडारमें डाल दूँ, आकाशको कागजकी भाँति फाड़ डालूँ, लङ्काको भस्म कर दूँ और तेरे दसों मस्तक काटकर देवताओंका संकोच (भय) दूर कर दूँ । श्रीरघुनाथजीके प्रतापसे तेरी भुजाओंको चरणोंसे दबाकर धड़से उखाड़ डालूँ ।' (यह सुनकर रावण बोला-) 'अरे, अरे चंचल, कुरूप, ढीठ ! तू बहुत अन्यायपूर्ण बातें कह रहा है, देखता क्या है, मैं हाथोंकी चपेटसे तेरे प्राण नष्ट कर दूँगा । (तू जानता नहीं) मेरा नाम ही प्रलयकारी (सारे लोकोंको रुलानेवाला—रावण) है, मेरा यह महान् यश तीनों

लोकोंमें प्रख्यात है।' (तब अङ्गदने कहा—) 'अरे बीसों नेत्रोंके अंधे! परायी स्त्रीका हरण करनेवाला पापी! तू सूनी कुटियामें (डरके मारे) गया था और लक्ष्मणजीकी खींची रेखाका उल्लङ्घन नहीं कर सका था (यह भूलता क्यों है?) अब भी यदि मेरा कहना माने तो श्रीरघुनाथजी पास आ गये हैं, उन श्रीरघुनन्दनकी प्रियतमा श्रीजनककुमारीको लेकर चल और प्रभुके चरणोंपर गिर पड़।' सूरदासजी कहते हैं–(तब रावण मनमें सोचता है–) 'यदि सङ्कट पड़नेपर 'मैं शरणमें आया हूँ' यह पुकार करूँ तो क्षत्रिय (शूर) नहीं कहलाऊँगा (यह व्यवहार शूरके योग्य नहीं है)। फिर जन्मसे ही मैंने तमोगुणकी आराधना की, अब प्रेम कैसे उत्पन्न करूँ? (अब भक्ति कैसे हृदयमें आ सकती है?) अब तो यही संयोग आ बना है कि (मरकर) भगवान् शंकरका अपना धाम (कैलाश-वास) प्राप्त करूँ। ये दसों मस्तक भगवान् शंकरके निर्माल्य हैं (उनको चढ़ चुके हैं), इन्हें (श्रीरामके) चरणोंसे कैसे स्पर्श कराऊँ?'

[१५०]

मूरख! रघुपति-सत्रु कहावत?
जाके नाम, ध्यान, सुमिरन तें, कोटि जज्ञ-फल पावत।
नारदादि, सनकादि महामुनि सुमिरत मन-बच ध्यावत।
असुर-तिलक प्रहलाद, भक्त बलि, निगम नेति जस गावत॥
जाकी घरनि हरी छल-बल करि, लायौ बिलँब न आवत।
दस अरु आठ पदुम बनचर लै, लीला सिंधु बँधावत॥
जाइ मिलौ कौसल-नरेस कौं, मन अभिलाष बढ़ावत।
दै सीता अवधेस पाइँ परि, रहु लंकेस कहावत॥
तू भूल्यौ दससीस बीसभुज, मोहि गुमान दिखावत।
कंध उपारि डारिहौं भूतल, 'सूर' सकल सुख पावत॥

सूरदासजी कहते हैं (अङ्गदने कहा—) जिनके नाम-जप, जिनके ध्यान तथा जिनका स्मरण करनेसे करोड़ों यज्ञ करनेका फल-प्राप्त होता

है; अरे मूर्ख ! तू उन श्रीरघुनाथजीका शत्रु कहलाता है ?देवर्षि नारद, सनकादि महामुनि, असुरश्रेष्ठ प्रह्लाद तथा भक्त बलि जिनका स्मरण करते हैं, मन-वाणीसे जिनका ध्यान करते हैं, वेद जिनके यशका गान 'नेति-नेति' (वह ऐसा नहीं है, वैसा नहीं है) कहकर करता है, जिनकी पत्नीको तुम छल-बल करके हरण कर लाये हो, उन्होंने यहाँ आनेमें विलम्ब नहीं किया। अपने साथ वे अठारह पद्म वानर-भालुओं-की सेना ले आये हैं और खेल-खेलमें ही उन्होंने समुद्र बँधवा दिया है। जाकर उन कोसलपतिसे मिलो, वे (शरणागतके) मनोऽभिलाषको बढ़ाते (पूर्ण करते) हैं। श्रीसीताजीको देकर उन श्रीअवधेशके चरणों-पर जा पड़ो, इस प्रकार लंकेश कहलाते रहो (प्रभु शरणमें जानेपर तुम्हें लङ्काका राजा बने रहने देंगे)। तुम जो दस मस्तक और बीस भुजा होनेसे भूले हो और मुझे अपना गर्व दिखला रहे हो, तो मैं तुम्हारे कंधे (सभी बाहु) उखाड़कर पृथ्वीपर फेंक दूँगा और ऐसा करनेमें मुझे समस्त सुख (पूरा आनन्द) प्राप्त होगा।'

[१५१]

आइ रघुबीर की सरन अंगद कहै,
मानि रे मूढ़मति ! बचन मेरौ।
जाओ रे जाओ सब, कोपि लंकेस कहै,
भुजन मेरी बस्यौ काल तेरौ॥
सुर-असुर-नाग बलो जेते हैं जगत में,
इंद्र-ब्रह्मा सबहि मैं नवाए।
बात अदभुत सब, और पाछै रहे,
रीछ-कपि लैन गढ़ लंक आए॥
बाम कर की यह अल्प जो अंगुरी,
लंक गढ़ बंक छिन मैं ढहाऊँ।
कहा करूँ, नैक मोहि संक रघुबीर की,
रंक ! तोहि मारि अब ही उड़ाऊँ॥

होहि ऐसौ बली, काहैं नहिं मुग्ध बल,
बालि-से बाप कौ बैर लीनौ।
तात के भ्रात तव मात पत्नी करी,
सत्रु की सरन जाय मूँड़ दीनौ॥
हुते मम तात के रावरे सरिस लच्छन,
धर्म को मैंड़ जिन तोर डारी।
परिहैं अब धूर ततकाल तेरे बदन,
राम-अवतार खल-दंड-धारी॥
सुनतहीं बचन मानौ फनग कौ फन चप्यौ,
सिंघ की पूँछ सोवत मरोरयौ।
ज्वलित आग बीसहूँ लोचनन भौ बिकल,
पटक भुज उटत मंत्री निहोरयौ॥
तौलौं आएँ पैड़ अभिमान मद की धरत,
ग्रीव मैं बंक दै दृष्टि दीठी।
सुरसुरी बंकुरी भुजा रघुबीर की,
जौलौं मतिमंद तैं नाहिं दीठी॥
चपल बनचरन की जात अति बोल, चर
कहा राजान सौं बोल जानै।
छत्र की छाहँ इंद्रादि थरथर करैं,
बंक यह ढीठ नहिं संक मानै॥
करूँ जिय संक जो अधिक तोकौं गिनूँ,
जो कछु अपनपौ घट बिचारूँ।
भुजनि सौं पलटि दिगपाल सब दलमलूँ,
धरनि नभ-छत्र जो फार गारूँ॥

रहि रे सुभट समसेर अधिसेर तू,
अपन कौ बल जिय नहिं बिचारै।
कहत परधान महाराज रावन बली,
अवनि रह आभ सौं बाथ मारै॥
पर्यौ बलि-द्वार परिहार बामन गदा,
किंकरी कौर दै-दै जिवायौ।
तात मम पालनैं आनि बाँध्यौ जबै,
रैपटन मार कई बार खायौ॥
मरम कौं वचन सुनि खेद जिय मैं भयौ,
चटपटी लाइ भृकुटी चढ़ावै।
कोइ है सूर-सामंत मेरी सभा,
मार लेहौ, मंद नहिं जान पावै॥

अङ्गद कहते हैं—'अरे मूढ़बुद्धि ! मेरी बात मान । श्रीरघुनाथजीकी शरणमें चला आ !' तब रावण क्रोध करके बोला—'अरे, तुम सब भाग जाओ ! भाग जाओ ! (अन्यथा) मेरी भुजाओंमें तुम्हारा काल आ बसा समझो । संसारमें जितने बलवान् देवता, असुर एवं नाग हैं—उन्हें तथा इन्द्र और ब्रह्माजीतकको तो मैंने झुका दिया (पराजित कर दिया); पर यह अद्भुत बात है कि दूसरे सब (बलवान्) तो पीछे रह गये और रीछ तथा बंदर लङ्काका दुर्ग लेने (जीतने) आ गये हैं।' (तब अङ्गदने कहा—) 'यह जो मेरे बायें हाथकी छोटी (कनिष्ठिका) अँगुली है, इसीसे सुदृढ़ लङ्काके दुर्गको एक क्षणमें ध्वस्त कर दूँ। किंतु करूँ क्या, मुझे श्रीरघुनाथजीकी थोड़ी-सी शङ्का है (कि वे असंतुष्ट होंगे); अन्यथा अरे कंगाल ! तुझे मारकर अभी समाप्त कर दूँ।' (रावणने कहा—) 'अरे मूर्ख ! यदि तू ऐसा बलवान है तो अपने बलसे अपने पिता वालीकी शत्रुताका बदला तूने क्यों नहीं लिया ? तेरे चाचा (सुग्रीव) ने तेरी माताको पत्नी बनाकर रख लिया और (इतनेपर भी तूने) उसी शत्रुकी शरणमें जाकर मस्तक टेका।' (अङ्गद बोले—) 'मेरे पिताके भी तुम्हारे-जैसे ही लक्षण थे, जिन्होंने

धर्मकी मर्यादा नष्ट कर दी । किंतु श्रीरामका अवतार तो दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ही हुआ है, अतः अब (मेरे पिताके समान ही) तेरे मुखोंमें भी तत्काल ही धूलि पड़ेगी ।' अङ्गदकी बात सुनते ही (रावण) इस प्रकार क्रोधित हो उठा मानो फणधर नागका फण दब गया हो या सोते हुए सिंहकी पूँछ उमेठ दी गयी हो । बीसों नेत्र अग्निके समान जलने लगे, व्याकुल होकर हाथ पटककर वह (अङ्गदको मारनेके लिये) उठ रहा था; किंतु मन्त्रियोंने क्षमा करनेकी प्रार्थना की (इससे बैठ गया । तब अङ्गद बोले—) 'अरे मन्दबुद्धि ! तभीतक तू अहंकार और मदसे ऐंठता है और गर्दन तथा नेत्र टेढ़े करके देख रहा है जबतक तूने श्रीरघुनाथजीकी सुढालयुक्त बाँकी भुजा नहीं देखी है (जबतक उस भुजासे काम नहीं पड़ा है) ।' (यह सुनकर रावणने कहा—) 'चञ्चल बंदरोंकी जाति ही अत्यन्त बकवादी होती है, फिर दूत राजाओंसे बातें करना क्या जाने । जिसके छत्रकी छायासे (प्रतापसे) इन्द्रादि देवता थर-थर काँपते हैं, उससे यह कुटिल और ढीठ थोड़ी भी शङ्का नहीं करता ।' (तब अङ्गद बोले—) 'मैं मनमें शङ्का तो तब करूँ, जब तुझे अपनेसे अधिक (बलवान्) गिनूँ और अपनेको (तुझसे) कुछ छोटा समझूँ । अपनी भुजाओंसे चाहूँ तो सभी दिक्पालोंको पटककर मसल दूँ, पृथ्वी तथा आकाशरूपी छत्रको फाड़कर निचोड़ लूँ (नष्ट कर दूँ) । अच्छा रह; तू, अपने सीमित बलका मनमें विचार नहीं करता । तलवार लेकर बड़ा सिंह बन रहा है, कहता है कि 'महाराज रावण सबसे प्रधान है, इतना बलवान् है कि पृथ्वीपर रहता हुआ भी आकाशसे कुश्ती लड़ता है !' (पर बता तो) जब बलिके द्वारपर उनके द्वारपाल वामनजीकी गदा खाकर (घायल) पड़ा था, तब दासीने तुझे टुकड़े खिला-खिलाकर जीवित किया था । जब मेरे पिताने तुझे पकड़ लाकर मेरे पलनेमें बाँध दिया था, तब मेरे थप्पड़ोंकी मार भी तू कई बार खा चुका है ।' सूरदासजी कहते हैं कि रहस्य-की (गुप्त) बातें सुनकर रावणके हृदयमें दुःख हुआ, शीघ्रतापूर्वक उसने

भौंहें चढ़ा लीं और बोला—'मेरी सभामें कोई वीर सरदार है ? इसे मार डालो ? यहाँसे यह मूर्ख (बचकर) जाने न पाये ।'

[१५२]

रे कपि ! क्यौं पितु-बैर बिसार्‌यौ ?
तौ समतुल कन्या किन उपजी, जौ कुल-सत्रु न मार्‌यौ !
ऐसो सुभट नहीं महिमंडल, देख्यौ बालि-समान ।
तासौं कियौ बैर मैं हार्‌यौ, कीन्हौ पैज प्रमान ॥
ताकौ बध कीन्हौ इहिं रघुपति, तुव देखत बिदमान ।
ताकी सरन रह्यो क्यौं भावै, सब्द न सुनियै कान ! ॥
'रे दसकंध, अंध-मति, मूरख, क्यौं भूल्यौ इहिं रूप ? ।
सूझत नहीं बीसहूँ लोचन, पर्‌यौ तिमिर के कूप ! ॥
धन्य पिता, जापर परफुल्लित राघव-भुजा अनूप ।
वा प्रताप की मधुर बिलोकनि पर वारौं सब भूप' ॥
'जो तोहिं नाहिं बाहु-बल, पौरुष, अर्ध राज देउँ लंक ।
मो समेत ये सकल निसाचर, लरत न मानैं संक ॥
जब रथ साजि चढ़ौं रन-सन्मुख, जीय न आनौं तंक ।
राघव सेन समेत सँहारौं, करौं रुधिरमय पंक' ॥
'श्रीरघुनाथ-चरन-ब्रत उर धरि, क्यौं नहिं लागत पाइ ? ।
सब के ईस, परम करुनामय, सबही कौं सुखदाइ ॥
हौं जु कहत, लै चलौ जानकी, छाँड़ौ सबै ढिठान ।
सनमुख होइ 'सूर' के स्वामी, भक्तनि कृपा-निधान' ॥

(रावणने कहा—) 'अरे कपि ! अपने पिताका वैर तूने विस्मृत क्यों कर दिया ? यदि तूने अपने कुलके शत्रुको नहीं मारा तो तेरी तुलनामें (तेरे बदले) कन्या क्यों उत्पन्न नहीं हुई ? पूरे भूमण्डलमें वालीके समान दूसरा कोई शूर मैंने नहीं देखा था, उससे शत्रुता करके

मैं हार गया था; किंतु उसने भी प्रतिज्ञा पूरी की (फिर सदा मुझसे मित्रता निभायी)। उस (वीर) का वध तेरे रहते, तेरी आँखोंके सामने इस रघुनाथने किया, फिर उसीकी शरणमें रहना तुझे कैसे अच्छा लगता है ? उसका तो शब्द भी तुझे कानसे नहीं सुनना चाहिये।' (तब अङ्गद बोले--) 'अरे अन्धबुद्धि रावण! अरे मूर्ख! (श्रीरघुनाथके) इस (मानव) रूपसे क्यों भूल रहा है। (वे तो साक्षात् परम पुरुष हैं; किंतु) बीस नेत्र होनेपर भी तुझे दिखायी नहीं पड़ता, तू अन्धकार (अज्ञान) के कुएँमें पड़ा है। मेरे पिता धन्य हो गये, जिनपर श्रीरघुनाथकी अनुपम भुजा प्रफुल्लित हुई (अर्थात् जो श्रीरामके हाथों मारे गये) प्रभुके उस प्रतापी रूपकी मधुर (कृपामय) दृष्टिपर (जिससे उन्होंने अन्तमें मेरे पिताको देखा था) मैं समस्त नरेशोंको न्योछावर कर दूँ।' (रावणने फिर कहा—) 'यदि तुझमें बल और पुरुषार्थ नहीं है तो (डर मत,) मैं तुझे लङ्काका आधा राज्य दिये देता हूँ। मेरे साथ ये सभी राक्षस युद्ध करनेमें कोई शङ्का (भय) नहीं करेंगे। (तुम हमारी सहायतासे पिताका बदला लो।) जब मैं रथ सजाकर सम्मुख युद्ध करने चलूँगा, तब मनमें कोई भय नहीं करूँगा, अपितु रामको सेनाके साथ मार दूँगा और रक्तकी कीच मचा दूँगा।' सूरदासजी कहते है (तब अङ्गदने कहा—) 'श्रीरघुनाथजीके चरणोंके स्मरणका नियम हृदयमें धारण करके तुम उनके पैरों क्यों नहीं पड़ जाते हो ? (जो मुझे सहायक बनानेकी चाल चलते हो। डरो मत,) वे सभीके स्वामी हैं, परम दयामय हैं और सभीके लिये आनन्ददाता हैं। मैं जो कहता हूँ, उसे मान लो। यह सब धृष्टता छोड़ दो। श्रीजानकीजीको लेकर चलो और प्रभुके सम्मुख (शरणागत) हो जाओ। वे मेरे नाथ भक्तोंके लिये तो कृपाके निधान ही हैं।'

[१५३]

एक रैपट दियें मुकुट उड़ि जायँगे,

सभा सब चरन सौं चाप डारूँ।

बालि कौ पूत हौं सोच जिय में करूँ,
सिंघ ह्वै मेंडुकनि कहा मारूँ॥
करत अपराध उतपात छोटेन कूँ,
बड़ेन कूँ छेमा भूषन कहावै।
जान देहु, दूत अब लौं न मार्‌यौ कहूँ,
पसुन सौं लरत जिय लाज आवै॥
'सूर' नृप-किसोर जब बालि-नंदन कह्यौ,
सीस अब कौन तोसौं पचावै।
नैक धरु धीर, रनधीर रघुबीर भट,
देख तरवार कैसी चलावै॥

(अङ्गदने कहा—) 'एक थप्पड़के मारते ही तेरे सारे मुकुट उड़ जायँगे (गिर पड़ेंगे) और तेरी पूरी सभाको चरणसे मसल सकता हूँ; किंतु मैं वालीका पुत्र हूँ, अतः हृदयमें यही संकोच है कि सिंह होकर मेढकोंको क्या मारूँ ?' (रावणने तब कहा—) 'छोटे (तुच्छ) लोग अपराध और उत्पात करते ही हैं; किंतु बड़ोंके लिये क्षमा ही उनका आभूषण कहा जाता है; अतः जाने दो इसे, अबतक मैंने दूतको कहीं नहीं मारा है। पशुओंसे लड़ते (वाद-विवाद करते) मुझे लज्जा आती है।' सूरदासजी कहते हैं—तब वालिनन्दन राजकुमार अङ्गदने कहा—'अब तुझसे सिरपच्ची कौन करे (तुझे समझाना व्यर्थ है)। तनिक धैर्य धर; फिर देखेगा कि रणधीर परम शूर श्रीरघुनाथ कैसी तलवार चलाते हैं।'

राग मारू

[१५४]

लंकपति इंद्रजित कौ बुलायौ।
कह्यौ तिहि, जाइ रनभूमि दल साजि कै,
कहा भयौ राम कपि जोरि ल्यायौ॥

कोपि अंगद कह्यौ, धरौं धर चरन मैं,
ताहि जो सकै कोऊ उठाई।
तौ बिना जुद्ध किय जाहिं रघुबीर फिरि,
सुनत यह उठे जोधा रिसाई॥
रहे पचि हारि, नहिं टारि कोऊ सक्यौ,
उठ्यौ तब आपु रावन खिस्याई॥
कह्यौ अंगद, कहा मम चरन कौं गहत,
चरन रघुबीर गहि क्यौं न जाई॥
सुनत यह सकुचि कियौ गवन निज भवन कौं,
बालि-सुतहू तहाँ तैं सिधायौ।
'सूर' के प्रभू कौं जाइ नाइ सिर यौं कह्यौ,
अंध दसकंध कौ काल आयौ॥

लङ्कापतिने (अपने पुत्र) मेघनादको बुलाया और उससे कहा—'सेना सजाकर युद्धभूमिमें जाओ ! राम यदि बंदरोंका समूह एकत्र करके ले आया तो हो क्या गया ?' तब अङ्गदने क्रोध करके कहा–'मैं पृथ्वीपर अपना पैर रखता हूँ, उसे यदि कोई उठा सकेगा तो श्रीरघुनाथ बिना युद्ध किये ही लौट जायँगे।' यह सुनते ही बहुत-से योद्धा खीझकर उठे; किंतु प्रयत्न करते-करते सब हार गये, कोई (अङ्गदका वह पैर) उठा नहीं सका। तब खीझकर स्वयं रावण उठा। (तब) अङ्गदने कहा–'तू मेरा पैर क्या पकड़ता है ? जाकर श्रीरघुनाथजीके चरण क्यों नहीं पकड़ता ?' यह सुनते ही संकोचसे रावण अपने राजभवनको चला गया और वालिकुमार भी वहाँसे लौट आये। सूरदासजी कहते हैं कि लौटकर प्रभुको मस्तक झुकाकर (अभिवादन करके) इस प्रकार कहा— ('प्रभो !) अंधे (मूर्ख) रावणका तो काल ही आ गया हैं (वह समझानेसे मान नहीं सकता)।'

[१५५]

बालि-नंदन आइ सीस नायौ।
अंध दसकंध कौं काल सूझत न प्रभु,
ताहि मैं बहुत बिधि कहि जनायौ॥
इंद्रजित चढ़्यौ निज सैन सब साजि कै,
रावरी सैनहू साज कीजै।
'सूर' प्रभु मारि दसकंध, थपि बंधु तिहि,
जानकी छोरि जस जगत लीजै॥

सूरदासजी कहते हैं—वालिकुमारने आकर मस्तक झुकाया (और कहा—) 'प्रभो ! मैंने अनेक प्रकारकी बातें कहकर समझाया; किंतु अंधे (मूर्ख) रावणको अपनी मृत्यु दिखायी नहीं पड़ रही है। मेघनादने सब राक्षसी सेना सजाकर चढ़ाई कर दी है, अब आप अपनी सेनाको भी सज्जित करें और रावणको मारकर, उसके भाई विभीषणको (लङ्कामें) स्थापित करके (राज्य देकर) तथा श्रीजानकीजीको बन्धनसे छुड़ाकर हे स्वामी ! संसारमें यश लीजिये।'

लङ्कापर आक्रमण

[१५६]

चढ़े हरि कनकपुरी पर आज।
कंपी धरनि, थरहर्‍यौ अंबर, देखि दलन कौ साज॥
असुर सबै पंछी ज्यौं भाजे, लछिमन छूटैं बाज।
'सूरदास' प्रभु लंका आए, दैन बिभीषन राज॥

आज श्रीरघुनाथजीने लङ्कापर चढ़ाई कर दी। उनकी सेनाका साज देखकर पृथ्वी काँपने लगी और आकाश थर्रा उठा। लक्ष्मणजी-रूपी बाजके छूटते (आक्रमण करते) ही सभी राक्षस पक्षियोंके समान भागने लगे। सूरदासजी करते हैं कि प्रभु तो विभीषणको राज्य देने लङ्का आये हैं।

लक्ष्मणकी प्रतिज्ञा

राग मारू

[१५७]

रघुपति ! जो न इंद्रजित मारौं
तौं न होउँ चरननि कौ चेरौ, जौ न प्रतिज्ञा पारौं ॥
यह दृढ़ बात जानियै प्रभु जू ! एकहिं बान निवारौं ।
सपथ राम परताप तिहारे, खंड-खंड करि डारौं ॥
कुंभकरन, दस सीस बीस भुज, दानव-दलहि बिदारौं ।
तबै 'सूर' संधान सफल हौं, रिपु कौ सीस उतारौं ॥

सूरदासजी कहते हैं-(युद्धके लिये जाते हुए लक्ष्मणजीने कहा-) 'यदि मैं मेघनादको न मार दूँ, यदि मैं अपनी (उसे मारनेकी) प्रतिज्ञा न पूर्ण कर दूँ तो रघुनाथजी ! मैं आपके श्रीचरणोंका सेवक नहीं। प्रभो ! यह बात निश्चय मानिये कि मैं एक ही बाणसे उसका काम तमाम कर दूँगा । श्रीराम ! आपके प्रतापकी शपथ ! उसे मैं टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। कुम्भकर्णको, रावणके दस सिर और बीस भुजाओंको तथा राक्षससेनाको विदीर्ण कर दूँगा। मेरा धनुषपर बाण चढ़ाना तभी सफल होगा, जब शत्रुका मस्तक काट लूँगा ।'

लक्ष्मणके द्वारा लंकापर आक्रमण

राग मारू

[१५८]

लखन दल संग लै लंक घेरी ।
पृथी भइ षष्ट अरु अष्ट आकास भए,
दिसि-बिदिस कोउ नहिं जात हेरी ॥
रीछ-लंगूर किलकारि लागे करन,
आन रघुनाथ की जाइ फेरी ।
पाट गए टूटि, परी लूटि सब नगर मैं,
'सूर' दरवान कह्यो जाइ टेरी ॥

श्रीलक्ष्मणजीने सेना साथ लेकर लङ्काको घेर लिया।* (उनकी सेनाके चलनेसे इतनी धूलि उड़ी कि) पृथ्वी केवल छठा भाग रह गयी और (उड़ी हुई धूलिसे भर जानेके कारण) आकाश आठवाँ भाग ही शेष रहा, दिशा-विदिशाओंमें किसी ओर कुछ दिखायी नहीं पड़ता था। भालु और वानर किलकारी मारने लगे, उन्होंने श्रीरघुनाथजीकी जय-घोषणा चारों ओर कर दी। सूरदासजी कहते हैं कि द्वारपालोंने जाकर पुकारकर (रावणसे) कहा—'सब किवाड़ टूट गये हैं और पूरे नगरमें लूट मच गयी है।'

मन्दोदरीके वचन रावणके प्रति

राग मारू

[१५९]

रावन! उठि निरखि देखि, आजु लंक घेरी।
कोटि जतन करि रही, सिख मानी नहिं मेरी॥
गहगहात किलकिलात, अंधकार आयौ।
रबि कौ रथ सूझत नहिं, धरनि-गगन छायौ॥
पौरि-पाट टूटि परे, भागे दरवाना।
लंका मैं सोर पर्‍यो, अजहुँ तै न जाना॥
फोरि-फारि, तोरि-तारि, गगन होत गाजैं।
'सूरदास' लंका पर चक्र-संख बाजैं॥

---

* 'पृथी भइ षष्ट अरु अष्ट आकास भए' इतना पद कूट माना जाता है। ज्यौतिषकी सांकेतिक संज्ञाके अनुसार इस पदके इस अंशका अर्थ यों होगा—'पृथ्वी-संज्ञक राहु ग्रह छठे स्थानमें (कुण्डलीके शत्रुस्थानमें) होकर शत्रु-विजय सूचित करने लगा और आकाशसंज्ञक सूर्य आठवें स्थान (आयुस्थान) में स्थित होकर पूर्णायु तथा सभी विघ्न-विपत्तियोंका नाश सूचित करने लगा।'

ज्यौतिषके नव ग्रहोंके सांकेतिक नाम इस प्रकार हैं—

'बृहस्पति—जीव, शनि—अहंकार, चन्द्र—मन, बुध—बुद्धि, सूर्य—आकाश, केतु—वायु, मङ्गल—अग्नि, शुक्र—जल, राहु—पृथ्वी।'

सूरदासजी कहते हैं कि (मन्दोदरीने कहा—) 'रावण ! उठकर देखो, आज लङ्का घेर ली गयी है। मैंने करोड़ों उपाय कर लिये, किंतु तुमने मेरी बात नहीं मानी। गरजता और किलकारियाँ मारता वानरों-का दल अन्धकारकी भाँति घिर आया है। वह पृथ्वी और आकाशमें इस प्रकार छा गया है कि सूर्यका रथ (सूर्यबिम्ब) भी दिखलायी नहीं पड़ता। द्वारोंके किवाड़ टूट गये हैं, द्वारपाल भाग गये हैं, सारी लङ्का-में चिल्लाहट मची है और अब भी तुम्हें पता नहीं है? (पृथ्वीपर) फोड़-फाड़, तोड़-ताड़ (विध्वंस) मची है और आकाशमें (मेघकी-सी) गर्जना हो रही है, जिसके कारण ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो शङ्खोंके समूह बज रहे हों।'

[१६०]

लंका फिरि गइ राम-दुहाई।
कहति मंदोदरि सुनि पिय रावन, त कहा कुमति कमाई॥
दस मस्तक मेरे बीस भुजा हैं, सौ जोजन की खाई।
मेघनाद-से पुत्र महाबल, कुम्भकरन से भाई॥
रहि-रहि अबला, बोल न बोलै, उनकी करति बड़ाई।
तीनि लोक तैं पकरि मँगाऊँ, वे तपसी दोउ भाई॥
तुम्हैं मारि महिरावन मारैं, देहिं बिभीषन राई।
पवन कौ पूत महाबल जोधा, पल मैं लंक जराई॥
जनकसुता-पति हैं रघुबर-से, संग लछिमन-से भाई।
'सूरदास' प्रभु कौ जस प्रगट्यौ, देवनि बंदि छुड़ाई॥

मन्दोदरी कहती है—'प्यारे रावण सुनो! तुमने यह कैसी खोटी बुद्धिका संग्रह किया है? (देखो तो) लङ्कामें श्रीरामकी विजय-घोषणा हो गयी।' (तब रावणने कहा—) 'अरी स्त्री! चुप रह, बहुत बकवास न कर; तू बार-बार उनकी (श्रीरामकी) बड़ाई क्या करती है। मेरे दस मस्तक और बीस भुजाएँ हैं, समुद्र-जैसी सौ योजनकी

खाईं (मेरे नगरके चारों ओर) है। मेघनाद-जैसा महाबलवान् पुत्र तथा कुम्भकर्ण-जैसा (अमितपराक्रमी) भाई है। उन दोनों तपस्वी भाइयोंको तो (यदि वे भाग भी गये तो) तीनों लोकोंमें (जहाँ कहीं भी वे जायँ, वहीं) से पकड़ मँगवाऊँगा।' (तब मन्दोदरीने कहा—) 'वे तुम्हें मारकर अहिरावणको भी मारेंगे और विभीषणको राज्य देंगे। (उनके सेवकोंमें) पवनकुमार हनुमान्-जैसे महान् बलवान् योद्धा हैं, जिन्होंने पलभरमें लङ्का जला दी। श्रीजनकनन्दिनीके पति तो श्रीरघुनाथजी-जैसे शूर हैं और उनके साथ लक्ष्मण-जैसे (अपार-बली) भाई हैं।' सूरदासजी कहते हैं, प्रभुका यह सुयश तो देवताओंको बन्धनसे छुड़ाकर प्रकट (विख्यात) हुआ है। (देवताओंका कष्ट दूर करके प्रभु अपने सुयशका विस्तार करेंगे।)

[१६१]

मेघनाद ब्रह्मा-बर पायौ।
आहुति अगिनि जिवाइ सँतोषी, निकस्यौ रथ बहु रतन बनायौ॥
आयुध धर समस्त, कवच सजि, गरजि चढ़्यौ, रन-भूमिहिं आयौ।
मनौ मेघनायक रितु पावस, बान-बृष्टि करि सैन कँपायौ॥
कीन्हौ कोप कुँवर कौसलपति, पंथ अकास सायकनि छायौ।
हँसि-हँसि नाग-फाँस सर साँधत, बंधु-समेत बंधायौ॥
नारद स्वामी कह्यौ निकट ह्वै, गरुड़ासन काहैं बिसरायौ?
भयौ तोष दसरथ के सुत कौं, सुनि नारद कौ ज्ञान लखायौ॥
सुमिरन-ध्यान जानि कै अपनौ, नाग-फाँस तैं सैन छुड़ायौ।
'सूर' बिमान चढ़े सुरपुर सौं, आनँद अभय-निसान बजायौ॥

मेघनादने ब्रह्माजीसे (बहुत-से) वरदान पाये थे। उसने अग्निको आहुतियोंका भोजन देकर (हवन करके) संतुष्ट किया, (जिसके फलस्वरूप अग्निमेंसे) अनेक रत्नोंसे सुसज्जित रथ प्रकट हुआ। (उस रथमें) सभी अस्त्र-शस्त्र रखकर कवच पहनकर गर्जना करता हुआ वह

आरूढ़ हुआ और युद्ध-भूमिमें आया। मानो वर्षा ऋतुमें श्रेष्ठ मेघ वर्षा कर रहे हों, इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करके (उसने) कपियोंकी सेनाको कम्पित (भयभीत) कर दिया। इससे श्रीकोसलराजकुमारने भी क्रोध करके बाणोंके द्वारा आकाशके पूरे मार्गको ढक दिया (जिससे मेघनाद आकाशमें न जा सके। तब मेघनाद) बार-बार अट्टहास करके नागपाशयुक्त बाणोंका आघात करने लगा, जिससे भाईके साथ श्रीराम बन्धनमें पड़ गये। (उसी समय) देवर्षि नारदजीने पास आकर (अपने) स्वामी (श्रीराम) से कहा— '(प्रभो!) आप अपने वाहन गरुड़को क्यों भूल गये हैं?' देवर्षि नारदके द्वारा सुझाया हुआ संकेत सुनकर श्रीदशरथ-राजकुमारको संतोष हुआ। (उन्होंने गरुड़का चिन्तन किया। तुरन्त ही गरुड़ने) यह जानकर कि 'प्रभु मेरा ध्यानपूर्वक स्मरण कर रहे हैं' (वहाँ आकर) पूरी सेनाको नागपाशसे छुड़ा दिया। सूरदासजी कहते हैं कि इससे आनन्दित होकर देवतालोग स्वर्गलोकसे ही विमानोंपर चढ़े अभय-दुन्दुभि बजाने लगे।

कुम्भकर्ण-रावण-संवाद

राग मारू

[१६२]

लंकपति अनुज सोवत जगायौ।
लंकपुर आइ रघुराइ डेरा दियौ,
तिया जाकी सिया मैं लै आयौ॥
तैं बुरी बहुत कीन्ही, कहा तोहि कहौं,
छाँड़ि जस, जगत अपजस बढ़ायौ।
'सूर' अब डर न करि, जुद्ध कौ साज करि,
होइहै सोइ जो दई-भायौ॥

सूरदासजी कहते हैं कि (लङ्कामें) रावणने अपने छोटे भाई कुम्भकर्णको सोतेसे जगाया और कहा—'जिनकी पत्नी जानकीको मैं हरण

करके ले आया हूँ; उन रघुनाथने (सेनाके साथ) आकर लङ्कापुरीमें शिविर डाल दिया है।' (यह सुनकर कुम्भकर्ण बोला—) 'तुमने बहुत बुरा किया, (अब) तुम्हें क्या कहूँ ? यशको छोड़कर संसारमें तुमने अपना अपयश बढ़ा लिया; किंतु अब भय मत करो ! युद्धकी तैयारी करो । होगा तो वही, जो दैव (भाग्यनिर्माता) को स्वीकार है।'

] १६३]

लषन कह्यौ, करबार सम्हारौं।
कुम्भकरन अरु इन्द्रजीत कौं टूक-टूक करि डारौं॥
महाबली रावन जिहि बोलत, पल मैं सीस सँहारौं।
सब राच्छस रघुबीर-कृपा तैं, एकहिं बान निवारौं॥
हँसि-हँसि कहत बिभीषन सौं प्रभु, महाबली रन भारौ।
'सूर' सुनत रावन उठि धायौ, क्रोध-अनल उर धारौ॥

लक्ष्मणजीने कहा— 'मैं तलवार उठाता हूँ और कुम्भकर्ण तथा मेघनादको टुकड़े-टुकड़े किये देता हूँ। जिस रावणको महान् बलवान् कहा जाता है, उसका मस्तक पलभरमें काट दूँगा। श्रीरघुनाथजीकी कृपासे एक ही बाणसे सभी राक्षसोंका मैं संहार कर डालूँगा।' (उनके इस आवेशको शान्त करनेके लिये नरलीलाका संकेत करते हुए) प्रभु हँस-हँसकर विभीषणसे कहने लगे—'महान् बलवान् राक्षस आ रहे हैं, अब भयंकर संग्राम होगा।' सूरदासजी कहते हैं— (युद्धका समाचार) सुनते ही हृदयमें क्रोधकी ज्वाला लिये स्वयं रावण भी (युद्धके लिये) उठ दौड़ा।

[१६४]

रावन चल्यौ गुमान-भर्‌यौ।
श्रीरघुनाथ अनाथबन्धु सौं, सनमुख खेत खर्‌यौ।
कोप कर्‌यौ रघुबीर धीर तब, लछिमन पाइ पर्‌यौ॥

तुम्हरे तेज-प्रताप नाथ जू ! मैं कर धनुष धर्‌यौ ॥
सारथि सहित अस्व बहु मारे, रावन क्रोध जर्‌यौ ।
इन्द्रजीत लीन्ही तब सक्ती, देवनि हहा कर्‌यौ ॥
छूटी बिज्जु-रासि वह मानौ, लछमन बंधु पर्‌यौ ।
करुना करत 'सूर' कोसलपति, नैननि नीर झर्‌यौ ॥

रावण गर्वमें भरा युद्धके लिये चल पड़ा और अनाथोंके सहायक श्रीरघुनाथजीसे उसने सम्मुख संग्राम प्रारम्भ कर दिया। पर (जब) धीर श्रीरघुनाथजीने भी क्रोध किया (और युद्धके लिये प्रस्तुत हुए), तब श्रीलक्ष्मणजी उनके चरणोंपर गिरकर बोले—'स्वामी ! आपके ही तेज और प्रतापसे मैंने हाथमें धनुष ले रखा है। (मेरे रहते आप युद्धका कष्ट न उठायें ।' इतना कहकर) उन्होंने (रावणके) सारथिके साथ बहुत-से घोड़ोंको भी मार दिया, इससे रावण क्रोधसे जल उठा। तब मेघनादने (ब्रह्मासे प्राप्त अमोघ) शक्ति उठायी, (जिसे देखकर) देवता हाहाकार करने लगे। वह शक्ति इस प्रकार छूटी, जैसे बिजलियों-का समूह छूट पड़ा हो; (उसके लगते ही) भाई लक्ष्मण (मूर्च्छित होकर) गिर पड़े। सूरदासजी कहते हैं कि (भाईको मूर्च्छित देखकर) श्रीकोसलनाथ व्याकुल होकर विलाप करने लगे, उनके नेत्रोंसे अश्रु-प्रवाह चलने लगा।

[१६५]

निरखि मुख राघव धरत न धीर ।
भए अति अरुन, बिसाल कमल-दल-लोचन मोचत नीर ॥
बारह बरष नींद है साधी, तातैं बिकल सरीर ।
बोलत नहीं मौन कहा साध्यौ, बिपति-बँटावन बीर ॥
दसरथ-मरन, हरन सीता कौ, रन बैरिनि की भीर ।
दूजौ 'सूर' सुमित्रा-सुत बिनु, कौन धरावै धीर ?

सूरदासजी कहते हैं—भाईका मुख देखकर श्रीरघुनाथजी धैर्य धारण नहीं कर पाते। उनके कमलदलके समान विशाल नेत्र (शोकसे) अत्यन्त

लाल हो गये हैं और उनसे आँसूकी धारा चल रही है। (वे कहते हैं–) 'भाई ! तुमने बारह वर्ष निद्रा न लेनेकी साधना की, क्या इससे तुम्हारा शरीर व्याकुल है ? मेरी विपत्तिको बँटानेवाले (विपत्तिके सहायक) प्यारे भाई ! तुमने मौन क्यों ले रखा है ? बोलते क्यों नहीं हो ? हाय ! पिता महाराज दशरथकी मृत्यु हो गयी, (वनसे) पत्नी जानकी चुरा ली गयी और यहाँ युद्धमें शत्रुओंका समूह एकत्र हो गया है; इन सबपर यह दूसरा ही महान् कष्ट आ गया। श्रीसुमित्राकुमारके बिना मुझे कौन धैर्य दिला सकता है।'

[१६६]

अब हौं कौन कौ मुख हेरौं ?
रिपु-सैना-समूह-जल उमड़्यौ, काहि संग लै फेरौं ?
दुख-समुद्र जिहि वार-पार नहिं, तामैं नाव चलाई।
केवट थक्यौ, रही अधबीचहिं, कौन आपदा आई ?
नाहीं भरत सत्रुघन सुन्दर, जिन सौं चित्त लगायौ।
बीचहिं भई और-की-औरै, भयौ सत्रु कौ भायौ॥
मैं निज प्रान तजौंगौ, सुनि कपि, तजिहि जानकी सुनि कै।
ह्वै है कहा बिभीषन की गति, यहै सोच जिय गुनि कै॥
बार-बार सिर लै लछिमन कौ, निरखि गोद पर राखैं।
'सूरदास' प्रभु दीन बचन यौं, हनूमान सौं भाषैं॥

(विलाप करते हुए श्रीरघुनाथजी कहते हैं–) 'अब मैं किसके मुखकी ओर देखूँ ? शत्रुओंकी सेनाका समूह बाढ़के जलके समान उमड़ा आ रहा है, किसे साथ लेकर इसे लौटाऊँ ? दुःखके उस समुद्रमें मैंने अपनी नौका चलायी, जिसका कोई आर-पार (कूल-किनारा) नहीं था; किंतु मध्य प्रवाहमें ही केवट (मेरा सहायक लक्ष्मण) थक गया (मूर्च्छित हो गया) और मेरी नौका वहीं रह गयी (पार नहीं जा सकी)। यह कौन-सी (अकल्पित) आपत्ति आ गयी ? न यहाँ भरतलाल हैं, न सुन्दर

कुमार शत्रुघ्न हैं, जिनपर मैंने अपना चित्त टिकाया था (जिनपर मेरा भरोसा था)। यह तो बीचमें और-की-और (सोचे हुएसे उल्टी) ही बात हो गयी, शत्रुकी प्रिय बात हो गयी। कपिवर हनुमान्! सुनो, मैं तो अपने प्राण त्याग दूँगा और इसका समाचार पाकर जानकी भी प्राण त्याग देंगी; किंतु (शरणागत) विभीषणकी क्या दशा होगी, यही विचार करके मेरे चित्तमें अत्यन्त चिन्ता हो रही है।' सूरदासजी कहते हैं कि प्रभु बार-बार श्रीलक्ष्मणजीका मस्तक उठाकर देखते हैं और फिर गोदमें रख लेते हैं तथा हनुमान्‌जीसे इस प्रकार दीन वाणी कह रहे हैं।

[१६७]

कहाँ गयौ मारुत-पुत्र कुमार।
ह्वै अनाथ रघुनाथ पुकारे, संकट-मित्र हमार॥
इतनी बिपति भरत सुनि पावैं, आवैं साजि बरूथ।
कर गहि धनुष जगत कौं जीतैं, कितक निसाचर जूथ॥
नाहिंन और बियौ कोउ समरथ, जाहि पठावौं दूत।
को अब है पौरुष दिखरावै, बिना पौन के पूत?
इतनौ बचन स्रवन सुनि हरष्यौ, फूल्यौ अंग न मात॥
प्रभु- प्रताप रिपु के बल तोरत करत मुष्टिका-घात।
लै-लै चरन-रेनु निज प्रभु की, रिपु कें स्रोनित न्हात॥
अहो पुनीत मीत केसरि-सुत! तुम हितबन्धु हमारे।
जिह्वा रोम-रोम-प्रति नाहीं, पौरुष गनौं तुम्हारे॥
जहाँ-जहाँ जिहिं काल सँभारे, तहँ-तहँ त्रास निवारे।
'सूर' सहाइ कियौ बन बसि कै, बन-बिपदा-दुख टारे॥

श्रीरघुनाथजी अनाथके समान होकर पुकारने लगे—'विपत्तिके हमारे मित्र श्रीपवनपुत्र कुमार हनुमान् कहाँ चले गये? मेरी इतनी विपत्तिका समाचार यदि भरत पा जायँ तो यहाँ सेना सजाकर तुरन्त आ जायँ।

(अकेले ही) वे हाथमें धनुष लेकर सारे संसारको जीत सकते हैं, यह राक्षसोंका दल तो किस गिनतीमें है। कोई दूसरा इस समय समर्थ नहीं है, जिसे दूत बनाकर (अयोध्या) भेजूँ। पवनकुमारके बिना इस समय और कौन है जो अपना बल दिखला सके।' प्रभुकी इतनी बात सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हो उठे, आनन्दके मारे वे फूले नहीं समाते थे। प्रभुके प्रतापसे बार-बार घूँसे मारकर वे शत्रु-सेनाका विध्वंस करने लगे। बार-बार प्रभुकी चरण-रज लेकर मस्तकसे लगाने लगे और शत्रुके रक्तसे स्नान करने लगे (शत्रुदलका भयंकर विनाश करने लगे)। सूरदासजी कहते हैं— (प्रभुने कहा—) 'अहो केसरीनन्दन ! तुम हमारे पवित्र मित्र हो। तुम हमारे हितकारी बन्धु हो। मेरे एक-एक रोममें जिह्वा नहीं है कि तुम्हारे पुरुषार्थका वर्णन कर सकूँ। जहाँ-जहाँ, जब-जब हमने तुम्हारा स्मरण किया, वहाँ-वहाँ तुमने हमारा भय दूर किया। वनमें निवास करके तुमने हमारी सहायता की तथा वनकी विपत्तियों और दुःखको दूर किया।'

श्रीरामके प्रति हनुमान्‌जीकी प्रार्थना

राग मारू

[१६८]

रघुपति ! मन संदेह न कीजै।
मो देखत लछिमन क्यौं मरिहैं, मोकौं आज्ञा दीजै॥
कहौ तौ सूरज उगन देउँ नहिं, दिसि-दिसि बाढ़ै ताम।
कहौ तौ गन समेत ग्रसि खाऊँ, जमपुर जाइ, न राम !
कहौ तौ कालहि खंड-खंड करि, टूक-टूक करि काटौं।
कहौ तौ मृत्युहि मारि डारि कै, खोदि पतालहि पाटौं॥
कहौ तौ चंद्रहि लै अकास तैं, लछिमन मुखहिं निचोरौं।
कहौ तौ पैठि सुधा के सागर, जल समस्त मैं घोरौं॥
श्रीरघुबर ! मोसौ जन जाके, ताहि कहा सँकराई ?
'सूरदास' मिथ्या नहिं भाषत, मोहि रघुनाथ-दुहाई॥

सूरदासजी कहते हैं—(श्रीहनुमान्‌जी बोले—) 'रघुनाथजी ! आप अपने मनमें कोई संदेह न करें। मेरे देखते-देखते श्रीलक्ष्मणलाल मर कैसे सकते हैं, आप मुझे आज्ञा तो दें। आप कहें तो सूर्यको उदय ही न होने दूँ, जिससे प्रत्येक दिशामें अन्धकार बढ़ता रहे । अथवा श्रीराम ! आप आज्ञा दें तो यमलोक जाकर यमराजको ही उनके दूतोंके साथ क्यों न खा लूँ। आप कहें तो (स्वयं) कालको काटकर उसके अत्यन्त छोटे-छोटे टुकड़े कर डालूँ, या आप आज्ञा दें तो मृत्युको ही मार डालूँ और (पृथ्वीको पातालतक) खोदकर उससे पातालको पाट दूँ । आप कहें तो आकाशसे चन्द्रमाको लाकर लक्ष्मणजीके मुखमें निचोड़ दूँ, अथवा आपकी आज्ञा हो तो पाताल जाकर अमृत ले आऊँ और उसे समुद्रके पूरे जलमें घोल दूँ। श्रीराघवजी ! मेरे-जैसा जिसका सेवक है, उसके लिये भला संकट कैसा ! श्रीरघुनाथजी ! मुझे आपकी शपथ ! कोई बात मैं झूठी नहीं कह रहा हूँ।'

[१६९]

कह्यौ तब हनुमत सौं रघुराई ।
दौनागिरि पर आहि सँजीवनि, बैद सुषेन बताई ॥
तुरत जाइ लै आउ उहाँ तैं, बिलँब न करि मो भाई ।
'सूरदास' प्रभु-बचन सुनतहीं, हनुमत चल्यौ अतुराई ॥

तब श्रीरघुनाथजीने हनुमान्‌जीसे कहा—'वैद्य सुषेणने बताया है कि द्रोणगिरिपर संजीवनी जड़ी है। मेरे भाई ! तुम विलम्ब मत करो, जाकर तुरंत उसे वहाँसे ले आओ ।' सूरदासजी कहते हैं—प्रभुकी आज्ञा सुनकर हनुमान्‌जी शीघ्रतापूर्वक चल पड़े।

[१७०]

दौनागिरि हनुमान सिधायौ ।
संजीवनि कौ भेद न पायौ, तब सब सैल उठायौ ॥
चितै रह्यौ तब भरत देखि कै, अवधपुरी जब आयौ ।
मन मैं जानि उपद्रव भारी, बान अकास चलायौ ॥

राम-राम यह कहत पवन-सुत, भरत निकट तब आयौ।
पूछ्यौ 'सूर', कौन है, कहि तू, हनुमत नाम सुनायौ॥

हनुमान्‌जी द्रोणगिरिपर पहुँचे; किंतु जब वे संजीवनीको पहचान न सके, तब पूरे पर्वतको ही उठा लाये। इस प्रकार (लौटते हुए) जब वे अयोध्याके ऊपर पहुँचे, तब उन्हें देखकर भरतजी आश्चर्यसे देखते रह गये और कोई बड़ा उत्पात (करनेवाला राक्षस) समझकर आकाशमें (उनको लक्ष्य करके) बाण मार दिया। 'राम-राम' यह कहते हुए श्रीपवनकुमार (गिर पड़े, तब) भरतजी उनके पास चले आये। सूरदासजी कहते हैं कि भरतजीने उनसे पूछा—'तुम कौन हो ? बताओ तो' तब अपना नाम हनुमान् बताकर उन्होंने परिचय दिया।

[१७१]

कहौ कपि ! रघुपति कौ संदेस।
कुसल बंधु लछिमन, बैदेही, श्रीपति सकल-नरेस॥
जनि पूछौ तुम कुसल नाथ की, सुनौ भरत बलबीर।
बिलख-बदन, दुख भरे सिया कैं, हैं जलनिधि के तीर॥
बन मैं बसत, निसाचर छल करि, हरी सिया मम मात।
ता कारन लछिमन सर लाग्यौ, भए राम बिनु भ्रात॥
यह सुनि कौसिल्या सिर ढोर्‌यौ, सबनि पुहुमि तन जोयौ।
त्राहि-त्राहि कहि, पुत्र-पुत्र कहि, मातु सुमित्रा रोयौ॥
धन्य सुपुत्र पिता-पन राख्यौ, धनि सुबधू कुल-लाज।
सेवक धन्य अंत अवसर जो आवै प्रभु के काज॥
पुनि धरि धीर कह्यौ, धनि लछिमन, राम-काज जो आवै।
'सूर' जियै तौ जग जस पावै, मरि सुरलोक सिधावै॥

(भरतजीने पूछा—) 'कपिवर ! श्रीरघुनाथजीका समाचार बतलाओ ! सम्पूर्ण जगत्‌के राजा श्रीराघवेन्द्र भाई लक्ष्मण तथा

श्रीजानकीजीके साथ कुशलपूर्वक तो हैं ? (यह सुनकर हनुमान्‌जी बोले—) 'महान् बलवान् तथा शूरवीर श्रीभरतजी ! आप प्रभुकी कुशल मत पूछें । जब प्रभु (दण्डक) वनमें निवास करते थे, तब राक्षस रावणने छल करके मेरी माता श्रीजानकीजीका हरण कर लिया; (अब) उन श्रीविदेहनन्दिनीके वियोगमें व्याकुल-शरीर अत्यन्त दुखी प्रभु समुद्र-किनारे (लङ्कामें) हैं । इसी कारणसे (रावणके साथ युद्ध छिड़ा है और संग्राममें) लक्ष्मणजीको बाण लगा है, जिससे श्रीराम बिना भाईके हो गये हैं ।' सूरदासजी कहते हैं कि इतना सुनते ही माता कौसल्याने सिर ढुलका दिया (मूर्च्छित हो गयीं), सभी लोग (शोकसे) पृथ्वीकी ओर देखने लगे । 'त्राहि, त्राहि, हा पुत्र ! हा पुत्र !' कहकर माता सुमित्रा रुदन करने लगीं (और बोलीं—) 'सुपुत्र (श्रीराम) धन्य हैं, जिन्होंने पिताके प्रण (सत्य) की रक्षा की और उत्तम पुत्रवधू (श्रीजानकी) भी धन्य हैं, जिन्होंने कुलकी लज्जा रखी । सेवक भी वही धन्य है, जो अन्तिम समय (प्राण जाते-जाते) भी प्रभुके काम आया ।' फिर धैर्य धारण करके वे कहने लगीं—'(मेरा पुत्र) लक्ष्मण धन्य है, जो श्रीरामके काम आया । यदि वह जीवित रहा तो संसारमें यश पावेगा और मरकर (निश्चित ही) देवलोक जायगा । (उसके लिये मुझे कोई खेद नहीं है ।)'

[१७२]

धनि जननी, जो सुभटहि जावै ।
भीर परैं रिपु कौ दल दलि-मलि, कौतुक करि दिखरावै ॥
कौसिल्या सौं कहति सुमित्रा, जनि स्वामिनि दुख पावै ।
लछिमन जनि हौं भई सपूती, राम-काज जो आवै ॥
जीवै तौ सुख बिलसै जग मैं, कीरति लोकनि गावै ।
मरै तौ मंडल भेदि भानु कौ, सुरपुर जाइ बसावै ॥
लोह गहैं लालच करि जिय कौ, औरौ सुभट लजावै ।
'सूरदास' प्रभु जीति सत्रु कौं, कुसल-छेम घर आवै ॥

सूरदासजी कहते हैं कि श्रीसुमित्राजी माता कौसल्यासे कहने लगीं—'स्वामिनी ! आप अपने चित्तमें दुखी न हों। वह माता तो धन्य है, जो ऐसे (शूर) पुत्रको उत्पन्न करती है। जो संकट पड़नेपर शत्रुसमूहको रौंदकर खेल-सा करके दिखला दे। मैं तो लक्ष्मणको उत्पन्न करके पुत्रवती हो गयी यदि वह श्रीरामके काम आ जाय। यदि वह जीवित रहेगा तो संसारमें रहकर (संसारके) सुख भोगेगा और तीनों लोक उसकी कीर्तिका वर्णन करेंगे और कहीं मर गया तो सूर्यमण्डलका भेदन करके दिव्यलोकमें निवास करेगा। जो शस्त्र धारण करके भी प्राणोंका लोभ करते हैं, वे तो (अपनी कायरतासे) दूसरे शूरोंको भी लज्जित करते हैं। (मैं तो अब इतना ही चाहती हूँ कि) श्रीरघुनाथ शत्रुको जीतकर कुशलपूर्वक घर लौट आयें।'

[१७३]

सुनौ कपि, कौसिल्या की बात।
इहिं पुर जनि आवहिं मम बत्सल, बिनु लछिमनु लघु भ्रात॥
छाँड़्यौ राज-काज, माता-हित, तव चरननि चित लाइ।
ताहि बिमुख जीवन धिक रघुपति, कहियौ कपि समुझाइ॥
लछिमन सहित कुसल बैदेही, आनि राज पुर कीजै।
नातरु 'सूर' सुमित्रा-सुत पर, वारि अपुनपौ दीजै॥

सूरदासजी कहते हैं—(माता कौसल्याने कहा—) 'कपिवर ! तुम कौसल्याकी बात सुनो ! (श्रीरामसे कह देना) मेरे प्रेमी पुत्र (हों तो) बिना छोटे भाई लक्ष्मणको साथ लिये इस नगरमें न आयें। हनुमान् ! यह समझाकर कह देना कि रघुनाथ ! जिसने आपके चरणोंमें चित्त लगाकर समस्त राज-कार्य (राज-सुख), माता तथा सभी बन्धुओंका त्याग कर दिया, उससे विमुख (उससे रहित) जीवनको धिक्कार है। (हो सके तो) लक्ष्मण और श्रीजानकीके साथ कुशलपूर्वक लौटकर इस नगरमें राज्य करो, अन्यथा श्रीसुमित्राकुमार-पर अपने आपको न्योछावर कर दो।'

[१७४]

बिनती कहियो जाइ पवनसुत, तुम रघुपति के आगै।
या पुर जनि आवहु बिनु लछिमन, जननी-लाजनि-लागैं॥
मारुतसुतहि सँदेस सुमित्रा ऐसैं कहि समुझावै।
सेवक जूझि परै रन भीतर, ठाकुर तउ घर आवै॥
जब तैं तुम गवने कानन कौं, भरत भोग सब छाँड़े।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, दुख-समूह उर गाड़े॥

(माता कौसल्याने कहा—) 'पवनकुमार ! तुम जाकर श्रीरघुनाथके सम्मुख मेरी यह प्रार्थना सुना देना कि माताकी लज्जाको बचानेके लिये बिना लक्ष्मणके वे इस नगरमें न आयें, सूरदासजी कहते हैं—तब माता सुमित्रा हनुमान्‌जीको इस प्रकार अपना संदेश देते हुए समझाने लगीं—'सेवक युद्धमें प्राण दे दे, तब भी स्वामी (तो) घर लौटकर आता ही है। (इसमें कोई अनुचित बात नहीं है। श्रीरामसे कहना–) जबसे तुम वनको गये हो, तभीसे भरतने भी सब सुखोपभोग छोड़ दिये हैं। हे रघुनाथ ! तुम्हारे दर्शनके बिना अपने हृदयमें उन्होंने दुःखोंका समूह बसा लिया है (अत्यन्त दुःखित हैं, अतः लक्ष्मणकी चिन्ता छोड़कर कम-से-कम भरतपर दया करके तुमको तो लौट ही आना चाहिये)।'

[१७५]

पवन-पुत्र बोल्यौ सतिभाइ।
जाति सिराति राति बातनि मैं, सुनौ भरत ! चित लाइ॥
श्रीरघुनाथ सँजीवनि कारन, मोकौं इहाँ पठायौ।
भयौ अकाज, अर्धनिसि बीती, लछिमन-काज नसायौ॥
स्यौं परबत सर बैठि पवनसुत ! हौं प्रभु पै पहुँचाऊँ।
'सूरदास' प्रभु-पाँवरि मम सिर, इहिं बल भरत कहाऊँ॥

(यह सब सुनकर) पवनकुमार शुद्ध भावसे बोले—'भरतजी! चित्त लगाकर (ध्यानसे) आप मेरी बात सुनें। बातों-ही-बातोंमें रात्रि बीतती जा रही है। श्रीरघुनाथजीने संजीवनी जड़ी लेनेके लिये मुझे यहाँ भेजा था, उसमें विलम्ब हो गया; आधी रात बीत गयी, इससे लक्ष्मणजीका कार्य (उन्हें सचेत करनेका काम) नष्ट हो गया (उसमें देर लगी—रात्रि बीत जानेपर यह कार्य नहीं हो सकेगा)।' सूरदासजी कहते हैं— (इतना सुनकर भरतजीने कहा—) 'पवन-कुमार! तुम पर्वतके साथ मेरे बाणपर बैठ जाओ, मैं तुम्हें प्रभुके पास पहुँचा दूँ। मेरे मस्तकपर प्रभुकी चरणपादुका है—इसीके बलसे मैं भरत (सबका भरण-पोषण करनेवाला) कहलाता हूँ (अतः तुम्हें इस पादुकाके प्रतापसे ही मैं बाणपर बैठाकर लङ्का पहुँचा सकता हूँ)।'

राग सारंग

[१७६]

हनूमान संजीवनि ल्यायौ।
महाराज रघुबीर धीर कौं हाथ जोरि सिर नायौ॥
परबत आनि धर्‌यौ सागर-तट, भरत-सँदेस सुनायौ।
'सूर' सँजीवनि दै लछिमन कौं मूर्छित फेरि जगायौ॥

सूरदासजी कहते हैं कि हनुमान्‌जी संजीवनी लेकर (लङ्का) आ गये। धैर्यशाली महाराज श्रीरघुनाथजीको हाथ जोड़कर उन्हें मस्तक झुकाया। पर्वतको लाकर उन्होंने समुद्रके किनारे रख दिया और (प्रभुसे) भरतजीका समाचार सुनाया। फिर लक्ष्मणजीको संजीवनीका सेवन कराके (उसे सुँघाकर) मूर्च्छित दशासे पुनः सचेत कर दिया।

राग मारू

[१७७]

श्रीमुख आपुन करत बड़ाई।
तूँ कपि आज भरथ की ठाहर, जिहिं मिलि बिपति बटाई॥

लछिमन हेत मूरि लै आयौ, लाँघत अगनित घाटी।
दसहूँ दिसा भयौ हम कारन बौछाहर की टाटी॥
तूँ सेवक, स्वामी तोही बल, तो तजि और न मेरै।
निधरक भए, मिटी दुचिताई, सोवत पहरैं तेरै॥
इतनौ सुनत दौरि पद टेके अरु मन-ही-मन फूल्यौ।
पिता मरन को दुःख हमारौ तोही तें सब भूल्यौ॥
जु कछु करोंसु प्रताप तुम्हारैं, हौं को करिबे लायक।
'सूर' सेवकहि इती बड़ाई, तुम त्रिभुवन के नायक॥

सूरदासजी कहते हैं कि प्रभु स्वयं श्रीमुखसे (हनुमान्‌जीकी) प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं—'कपिश्रेष्ठ ! आज तुम मेरे लिये भाई भरतके स्थानपर हो, जिन्होंने मिलकर (सहायता करके) मेरी विपत्ति बँटा ली (कम कर दी)। लक्ष्मणके लिये अगणित घाटियाँ (वनों, पर्वतों) को लाँघते हुए तुम संजीवनी जड़ी ले आये। (यही नहीं,) हमारे लिये दसों दिशाओंमें तुम वर्षाकी बौछार रोकनेवाली टटिया (विपत्तिके निवारक) बन गये। तुम सेवक हो और तुम्हारे बलसे ही हम स्वामी हैं; तुम्हें छोड़कर हमारा और कोई (सहायक) नहीं। (तुम्हारी रक्षामें) हमारा सारा खटका मिट गया है—निधड़क (निश्चिन्त) होकर सोते हैं।' इतना सुनते ही हनुमान्‌जीने दौड़कर (प्रभुके) चरणोंपर मस्तक रख दिया और मन-ही-मन प्रफुल्लित हो गये। (प्रभु कहते ही जा रहे थे—) 'हनुमान् ! तुम्हारे कारण ही पिताकी मृत्युका सारा दुःख हमें भूल गया है।' (अर्थात् तुम तो पिताके समान हमारे पालक हो। यह सुनकर हनुमान्‌जी बोले—) 'प्रभो ! मैंने जो कुछ भी किया, आपके प्रतापसे ही किया; (नहीं तो) मैं क्या करने योग्य हूँ। आप त्रिभुवनके स्वामी होकर भी सेवकको इतनी बड़ाई देते हैं। (यह आपका उदार स्वभाव ही है।)'

श्रीराम-वचन

राग टोड़ी

[१७८]

दूसरें कर बान न लैहौं ।
सुनि सुग्रीव ! प्रतिज्ञा मेरी, एकहिं बान असुर सब हैहौं ॥
सिव-पूजा जिहिं भाँति करी है, सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं ।
दैत्य प्रहारि पाप-फल-प्रेरित, सिर-माला सिव-सीस चढ़ैहौं ॥
मनौ तूल-गन परत अगिनि-मुख, जारि जड़नि जम-पंथ पठैहौं ।
करिहौं नाहिं बिलंब कछू अब, उठि रावन सन्मुख ह्वै धैहौं ॥
इमि दमि दुष्ट देव-द्विज मोचन, लंक बिभीषन, तुम कौं दैहौं ।
लछिमन,सिया समेत'सूर'कपि,सब सुख सहितअजोध्या जैहौं ॥

सूरदासजी कहते हैं— (श्रीरघुनाथजीने कहा—) 'सुग्रीव ! मेरी प्रतिज्ञा सुनो ! मैं दुबारा हाथमें बाण नहीं लूँगा, एक ही बाणसे समस्त राक्षसोंका नाश कर दूँगा । जिस प्रकार (रावणने) शंकरजीकी पूजा (मस्तक चढ़ाकर) की है, वह पद्धति आज मैं प्रत्यक्ष कर दूँगा, पापके फलसे (मरनेके लिये) प्रेरित सभी राक्षसोंको मारकर उनके मस्तकोंकी माला शंकरजीको चढ़ाऊँगा । जैसे रूईकी ढेरियाँ अग्निकी लपटमें पड़ रही हों, इस प्रकार इन मूर्खों (राक्षसों) को भस्म करके यमलोक भेज दूँगा । अब मैं थोड़ी भी देर नहीं करूँगा, उठकर रावणके सामने दौड़ पड़ूँगा और इस प्रकार देवता तथा ब्राह्मणोंकी त्रास मिटानेके लिये (ही) दुष्टोंका दमन करके लङ्काका राज्य विभीषणजी ! आपको दे दूँगा । इस प्रकार लक्ष्मण और जानकी एवं समस्त कपिदलके साथ सुखपूर्वक मैं अयोध्या लौटूँगा ।'

राम-रावण-युद्ध

राग मारू

[१७९]

आजु अति कोपे हैं रन राम।
ब्रह्मादिक आरूढ़ बिमाननि, देखत हैं संग्राम॥
घन-तन दिव्य कवच सजि करि, अरु कर धारयौ सारंग।
सुचि कर सकल बान सूधे करि, कटि-तट कस्यौ निषंग॥
सुरपुर तैं आयौ रथ सजि कै, रघुपति भए सवार।
काँपी भूमि, कहा सब ह्वै है, सुमिरत नाम मुरारि॥
छोभित सिंधु, सेष-सिर कंपित, पवन भयौ गति पंग।
इंद्र हँस्यौ, हर हिय बिलखान्यौ, जानि बचन कौ भंग॥
धर-अंबर, दिसि-बिदिसि, बढ़े अति सायक किरन समान।
मानौ महाप्रलय के कारन, उदित उभय षट भान॥
टूटत धुजा-पताक-छत्र-रथ चाप-चक्र-सिरत्रान।
जूझत सुभट, जरत ज्यौं दव द्रुम, बिनु साखा बिनु पान॥
स्रोनित-छिछ उछरि आकासहिं, गज-बाजिनि-सिर लागि।
मानौ निकरि तरनि-रंध्रनि तैं, उपजी है अति आगि॥
परि कबंध भहराइ रथनि तैं, उठत मनौ झर जागि।
फिरत सृगाल सज्यौ सब काटत, चलत सो सिर लै भागि॥
रघुपति-रिस पावक प्रचंड अति, सीता-स्वास समीर।
रावन-कुल अरु कुंभकरन बन सकल सुभट रनधीर॥
भए भस्म, कछु बार न लागी, ज्यौं ज्वाला पट-चीर।
'सूरदास' प्रभु आपु-बाहुबल कियौ निमिष मैं कीर॥

आज श्रीराम संग्राममें अत्यन्त क्रुद्ध हो गये हैं। ब्रह्मादि देवता विमानोंपर चढ़कर युद्ध देख रहे हैं। प्रभुने मेघके समान श्यामवर्ण शरीरपर दिव्य कवच सजाया और (बायें) हाथमें धनुष लिया, पवित्र (दहिने) हाथसे बाणोंको सीधा करके तरकसको कमरमें बाँध लिया। देवपुरीसे (अस्त्र-शस्त्रोंसे) सुसज्जित रथ आया, उसपर श्रीरघुनाथजी सवार हुए (प्रभुके चलनेसे) पृथ्वी काँपने लगी; 'अब क्या होगा ?' (भयसे यह सोचती) श्रीहरिके नामका स्मरण करने लगी। समुद्र क्षुभित हो उठा, शेषनागका सिर काँपने लगा और वायुकी गति भी रुद्ध हो गयी। (अपने शत्रु रावणकी मृत्यु निकट जानकर प्रसन्नतासे) देवराज इन्द्र हँस पड़े तथा अपने वचन (अमर होनेके वरदान) का भङ्ग होना निश्चित जानकर शंकरजीके हृदयमें दुःख हुआ। पृथ्वी और आकाशमें, दिशा-विदिशाओंमें किरणोंके समान असंख्य बाण फैल गये, मानो महाप्रलय करनेके लिये बारह सूर्य (एक साथ) उदित हो गये हों। ध्वजाएँ एवं पताकाएँ, छत्र, रथ, धनुष, पहिये तथा शिरस्त्राण (मस्तकके रक्षक लौह कवच) टूटने लगे; शूर इस प्रकार युद्धमें मरने लगे जैसे दावाग्नि लगनेपर (वनके) वृक्ष बिना शाखा और पत्तेके होकर भस्म हो जाते हैं। रक्तकी फुहारें आकाशमें उछलकर हाथियों और घोड़ोंके मस्तकपर इस प्रकार लगती (गिरती) हैं, मानो सूर्यके छिद्रोंसे निकलकर भयंकर अग्नि चारों ओर उत्पन्न हो गयी (फैल गयी) है। रथोंसे लड़खड़ाकर मस्तकहीन धड़ गिरते हैं और फिर इस प्रकार उठ खड़े होते हैं मानो अग्निकी लपट भभक उठी हो। शृगाल (सियार) घूम रहे हैं, वे सजा हुआ (सुसज्जित वीरोंके) शव काटते हैं तथा उनके सिरको लेकर भाग जाते हैं। श्रीरघुनाथजीके क्रोधरूपी प्रचण्ड अग्निमें, जो श्रीजानकीजीके शोकजन्य निःश्वासरूप वायुसे बढ़ गया था, रावण, कुम्भकर्ण तथा उनका रणधीर शूर राक्षसकुलरूपी वन भस्म हो गया; उसे भस्म होनेमें (उसी प्रकार) कुछ भी देर नहीं लगी, जैसे ज्वालामें वस्त्रोंके चिथड़े (तुरन्त) जल जाते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभुने एक क्षणमें अपने बाहुबलसे शत्रुसमूहको छिन्न-भिन्न कर दिया।

राग कान्हरौ

[१८०]

आजु अमर-मुनि-संतनि चाउ।
नृपति-मुकुट-मनि राम पलान्यौ हतन कनकपुर-राउ॥
दिसि-दिसि दल उड़ि रही रेनु, घनघोर निसाननि घाउ।
टूटत धुजा-पताक-छत्र-रथ स्वरग उड़ि रह्यौ बाउ॥
अतिभट हैं कपि-भालु-निसाचर, भुवन चलत सु जुझाउ।
सूरदास संतत छबि बरनत, पटतर कौं नहिं ठाँउ॥

आज देवताओं, मुनियों तथा सभी सत्पुरुषोंको बड़ी प्रसन्नता है। भूपतिशिरोमणि श्रीरघुनाथजी स्वर्णपुरी लङ्काके राजा रावणको मारनेके लिये चढ़ाई कर चुके हैं। सम्पूर्ण दिशाओंमें धूलिका समूह उड़ रहा है और नगारोंपर जोरकी चोट पड़ रही है। ध्वजाएँ, पताकाएँ, छत्र और रथ टूट रहे हैं, (उड़ती धूलिके कारण) वायु स्वर्गतक पहुँच रहा है। वानर, भालु और राक्षस भी अत्यन्त शूर हैं—पृथ्वीपर उनका बड़ा विकट युद्ध चल रहा है। सूरदासजी इस युद्धकी शोभाका बराबर वर्णन करते हैं; किन्तु इसकी तुलनाको कहीं स्थान नहीं है। (यह तो अतुलनीय संग्राम है।)

राग नट

[१८१]

देखियत जहाँ-तहाँ रघुबीर।
धावत धरनि बिचित्र बेग कर धनुष धरें धर धीर॥
मंडल करत अनेक भाँति भ्रम ज्यौं सत चक्र समीर।
फटत बिउह चतुरंग बिहंग-बिधि, सहि न सकत भट भीर॥
सर सँग उड़त पताक-छत्र-धुज, मनौ पत्र बन जीर।
परत कंपि मनु मूल-भंग ह्वै द्रुम दमि असुर-सरीर॥

बिन रथ बाजि, महावत बिन गज, सकल सघन तन तीर।
डोलत डरत हरात बात बस, ज्यौं रज-कंटक-चीर॥
कहुँ कहुँ उठत कबंध, कहूँ ते चलत पलाय अधीर।
सोभित महा प्रचंड पवन बस, सारद घन बिनु नीर॥
सूने सदन किए सबहीं, जब हाकत हरये बीर।
मनहुँ अधिक अकुलाय लटे तप हारो साधत सीर॥
राजत रुचिर रुहिर कहुँ धासि, कहुँ सिर मुकता मनि-हीर।
मानो बीज बिखेरि 'सूर' निसि चले करखि करि कीर॥

(युद्धमें स्फूर्तिके कारण) जहाँ-तहाँ श्रीरघुवीर दिखलायी पड़ते हैं। वे धैर्यपूर्वक हाथमें धनुष लिये पृथ्वीपर अद्भुत वेगसे दौड़ रहे हैं। अनेक प्रकारके पैंतरे इस प्रकार लेते हैं कि मानो पवनके सैकड़ों बवंडर घूम रहे हों। (राक्षसोंकी) चतुरङ्गिणी सेना (पैदल, घुड़सवार, गज और रथ-सेना) के व्यूह इस प्रकार छिन्न-भिन्न होते हैं, जैसे पक्षियोंके दल भागकर बिखर जाते हैं; वे सभी शूर (श्रीरामकी) मारको सह नहीं पाते। बाणोंके साथ (कटकर) झंडे, छत्र और पताका इस प्रकार उड़ती हैं मानो वनके सूखे पत्ते उड़ रहे हों। आहत असुरोंके शरीर इस प्रकार लड़खड़ाते हुए गिरते हैं, जैसे जड़से टूटे हुए वृक्ष काँपते हुए गिर रहे हों। घोड़े बिना रथके और हाथी बिना महावतके हो गये हैं, सभीके शरीर बाणोंसे भरपूर बिंधे हुए हैं। भयभीत होकर वे इधर-से-उधर इस प्रकार हाहाकार करते भाग रहे हैं, जैसे आँधीमें पड़कर धूलि, काँटे और चिथड़े उड़ते हैं। कहीं-कहीं मस्तकहीन धड़ उठ खड़े होते हैं और कहीं वे भयसे धैर्यहीन होकर भाग खड़े होते हैं; वे ऐसे लगते हैं मानो अत्यन्त प्रचण्ड आँधीमें विवश शरद् ऋतुके बिना जलके बादल उड़ रहे हों। वीरश्रेष्ठ (श्रीरघुनाथजी) ने जब ललकारकर भगाना प्रारम्भ किया, तब सभी (राक्षसों) ने भवन खाली कर दिये। (लङ्का ऐसी हो गयी) मानो अत्यन्त व्याकुल होकर शिथिल हुए तपस्वी अब शीतलताकी साधना करते शान्त पड़े

हों। (तात्पर्य यह कि राक्षस सभी मारे गये।) सूरदासजी कहते हैं कि (युद्धभूमिमें) कहीं रक्तमें गड़े हुए तथा कहीं मस्तकोंमें लगे मोती, मणि और हीरे ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो (किसान) रात्रिमें खेत जोतकर, लकीरें डालकर और बीज बोकर बिखेरकर चला गया है। (रात्रिमें बीज बोनेके कारण कहीं-कहीं वे बीज ऊपर बिखरे दीख रहे हैं।)

रावण-उद्धार

राग मारू

[१८२]

रघुपति अपनौ प्रन प्रतिपारयौ।
तोरयौ कोपि प्रबल गढ़, रावन टूक-टूक करि डारयौ॥
कहुँ भुज, कहुँ धर, कहुँ सिर लोटत, मानौ मद मतवारौ।
भभकत, तरफत स्रोनित मैं तन, नाहीं परत निहारौ॥
छोरे और सकल सुख-सागर, बाँधि उदधि जल खारौ।
सुर-नर-मुनि सब सुजस बखानत, दुष्ट दसानन मारौ॥
डरपत बरुन-कुबेर-इंद्र-जम, महा सुभट पन धारौ।
रह्यौ मांस कौ पिंड, प्रान लै गयौ बान अनियारौ!
नव ग्रह परे रहैं पाटी तर, कूपहिं काल उसारौ।
सो रावन रघुनाथ छिनक मैं कियौ गीध कौ चारौ!
सिर सँभारि लै गयौ उमापति, रह्यौ रुधिर कौ गारौ।
दियौ बिभीषन राज 'सूर' प्रभु कियौ सुरनि निस्तारौ॥

श्रीरघुनाथजीने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी। क्रोध करके लङ्काके प्रबल दुर्गको उन्होंने तोड़ दिया और रावणके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उसकी भुजाएँ कहीं, धड़ कहीं और मस्तक कहीं इस प्रकार लुढ़क रहे हैं, मानो शराब पीकर मतवाला हुआ कोई लुढ़क रहा हो। रक्तमें लथपथ उसका

शरीर कभी फड़कता है, कभी तड़फड़ाता है, उसे देखा नहीं जाता। देवता, मनुष्य और मुनिगण प्रभुके सुयशका वर्णन कर रहे हैं कि खारे समुद्रको बाँधकर प्रभुने दुष्ट रावणको मार दिया, इस प्रकार अन्य सभी सुखोंके समुद्रोंको उन्मुक्त कर दिया (सबको सुखी कर दिया)। जिससे वरुण, कुबेर, इन्द्र और यमराजतक डरते रहते थे, जिसने महान् शूरमाकी उपाधि धारण कर रखी थी, वह (रावण) केवल मांसका लोथड़ा रह गया, तीक्ष्ण बाण उसके प्राण ले गये। नवग्रहोंको जो पलंगके नीचे दबाये रखता था, कुएँमें जिसने कालको बंदी कर रखा था, श्रीरघुनाथने उस रावणको एक क्षणमें गीधोंका आहार बना दिया। शंकरजी उसके मस्तकोंको सँभालकर (मुण्डमाला बनानेके लिये) ले गये, केवल रक्तका कीचड़ (लङ्कामें) बच रहा। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभुने (लङ्काका) राज्य विभीषणको देकर देवताओंका उद्धार कर दिया।

[१८३]

रावन अपनौ कृत फल पायौ।
महाराज रघुपति सौं रूठौ, कीयो जौ मन भायौ॥
कत लै जाइ जगत की जननी, हठ करि काल बुलायौ।
राजनीति दसरथ-सुत कीनी, अंगद दूत पठायौ॥
करी अनीति, हात सो लाग्यौ, बिधना जोग बनायौ।
भगत-प्रतग्या राखी यातैं चाहत जुग जगु गायौ॥
क्रोधे राम तबहिं आरिस करि, कर सारंग चढ़ायौ।
कुल समेत अब 'सूरदास' प्रभु रिपु कौ नास करायौ॥

रावणने अपने कर्मका फल पाया। महाराज श्रीरघुनाथजीसे रूठकर (विमुख होकर) वह (संसारमें) मनमानी करता रहा, किंतु जगज्जननी (श्रीजानकी) का हरण करके उसने हठपूर्वक मृत्युको निमन्त्रण क्यों दिया ? महाराज दशरथके कुमार श्रीरामने तो

राजनीतिका पालन किया कि उसके पास (संधिके लिये) दूत बनाकर अङ्गदको भेजा, किंतु (रावणने) जैसी अनीति की थी, उसके हाथ वैसा ही (फल भी) लगा, भाग्यने ही सब संयोग एकत्र कर दिये। इसलिये (श्रीरघुनाथजीने) अपने भक्त (अङ्गद) की प्रतिज्ञाकी रक्षा की, वे चाहते ही थे कि संसार युग-युगतक इस चरितका गान करे। अमर्षपूर्वक तभी (अङ्गदके विफल लौट आनेपर ही) श्रीरामने क्रोध किया और हाथोंमें चढ़ा हुआ धनुष लिया। सूरदासजी कहते हैं कि उसी समय प्रभुने कुलसहित शत्रुके नाशका बानक बना दिया।

[१८४]

करुना करति मँदोदरि रानी।
चौदह सहस सुंदरी उमहीं, उठै न कंत! महा अभिमानी॥
बार-बार बरज्यौ, नहिं मान्यौ, जनक-सुता तैं कत घर आनी।
ये जगदीस ईस कमलापति, सीता तिय करि तैं कत जानी॥
लीन्हे गोद बिभीषन रोवत, कुल-कलंक ऐसी मति ठानी।
चोरी करी, राजहूँ खोयौ, अल्प मृत्यु तब आय तुलानी॥
कुंभकरन समुझाइ रहे पचि, दै सीता, मिलि सारँगपानी।
'सूर' सबनि कौ कह्यौ न मान्यौ, त्यौं खोई अपनी रजधानी॥

रानी मन्दोदरी विलाप कर रही हैं। चौदह सहस्र सुन्दरियाँ (रावणकी पत्नियाँ) एकत्र हो गयी हैं। (रानी मन्दोदरी कहती हैं—) 'महाभिमानी मेरे नाथ! अब उठते क्यों नहीं हो? मैंने बार-बार रोका, पर तुम माने नहीं। भला, श्रीजनकनन्दिनीको तुम घर क्यों ले आये? ये (श्रीराम) तो साक्षात् लक्ष्मीकान्त जगदीश्वर हैं; फिर तुमने श्रीसीताको साधारण नारी कैसे समझ लिया?' विभीषण (रावणकी देह) गोदमें लिये रो रहे हैं—'तुमने ऐसी दुर्बुद्धि अपनायी कि जो कुलके लिये कलङ्करूप बन गयी। चोरी की, राज्य भी खोया, (अधिक क्या कहा जाय, तुम्हारी) अकालमृत्यु ही आकर (मारनेके लिये) तुल गयी थी। अन्यथा कुम्भकर्ण भी

यह समझा-समझाकर हार गये कि श्रीजानकीजीको देकर श्रीरामसे संधि कर लो।' सूरदासजी कहते हैं कि आपने किसीका कहना नहीं माना, इसीसे अपनी राजधानी खो बैठे।

सीता-मिलन

राग मारू

[१८५]

लछिमन सीता देखी जाइ।
अति कृस, दीन, छीन-तन प्रभु बिनु, नैननि नीर बहाइ॥
जामवंत-सुग्रीव-बिभीषन करी दंडवत आइ।
आभूषन बहुमोल पटंबर, पहिरौ मातु बनाइ॥
बिनु रघुनाथ मोहि सब फीके, आज्ञा मेटि न जाइ।
पुहुप-बिमान बैठि बैदेही, त्रिजटा सब पहिराइ॥
देखत दरस राम मुख मोर्‌यौ, सिया परी मुरझाइ।
'सूरदास' स्वामी तिहु पुर के, जग-उपहास डराइ॥

लक्ष्मणजीने जाकर (अशोक-वाटिकामें) श्रीजानकीजीका दर्शन किया। वे अत्यन्त दुर्बल, दीन तथा क्षीणशरीर हो रही थीं; प्रभुके वियोगमें नेत्रोंसे अश्रुधारा बहा रही थीं। (उसी समय) जाम्बवान्, सुग्रीव और विभीषणने आकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। (और कहा—) 'माता ! ये अत्यन्त मूल्यवान् आभूषण और पीताम्बर हैं, इन्हें भली प्रकार आप धारण कर लें।' (श्रीजानकीजीने कहा—) 'श्रीरघुनाथजीके बिना मुझे तो सब फीके (रसहीन) लगते हैं; किंतु उनकी आज्ञा टाली नहीं जा सकती।' त्रिजटाने सब (वस्त्र-आभूषण) उन्हें पहना दिये और श्रीवैदेही पुष्पक विमानमें जा बैठीं; (किंतु पास आनेपर) उन्हें देखते ही श्रीरामने दूसरी ओर मुख फेर लिया, इससे श्रीजानकीजी मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। सूरदासजी कहते हैं कि तीनों लोकोंके

स्वामी होनेपर भी प्रभु जगत्के उपहाससे (संसारके लोग हँसी उड़ायेंगे इससे) डर रहे हैं ।

अग्नि-परीक्षा

राग सोरठ

[१८६]

लछिमन ! रचौ हुतासन भाई ।
यह सुनि हनूमान दुख पायो, मोपै लख्यौ न जाई ॥
आसन एक हुतासन बैठी, ज्यौं कुंदन अरुनाई ।
जैसे रबि इक पल घन भीतर बिनु मारुत दुरि जाई ॥
लै उछंग उपसंग हुतासन, "निहकलंक रघुराई ।"
लई बिमान चढ़ाइ जानकी, कोटि मदन छबि छाई ॥
दसरथ कह्यौ, देवहू भाष्यौ, ब्यौम बिमान टिकाई ।
सिया राम लै चले अवध कौं, 'सूरदास' बलि जाई ॥

(तब श्रीजानकीजीने कहा—) 'भैया लक्ष्मण ! तुम (मेरे लिये) अग्नि प्रकट करो (चिता बना दो !)' यह सुनकर श्रीहनुमान्जीको बड़ा दुःख हुआ । (वे बोले—) 'मुझसे तो यह देखा नहीं जायगा ।' (लक्ष्मणजीने चिता बनाकर अग्नि प्रकट कर दी, तब श्रीजानकीजी) स्थिर आसन लगाकर अग्निमें ऐसे बैठ गयीं, मानो अरुणाभा (अंगारों) की ढेरीमें स्वर्ण रखा हो । एक क्षणके लिये ऐसा लगा जैसे वायु-रहित बादलोंमें सूर्य छिप गया हो । (दूसरे ही क्षण) साक्षात् अग्नि-देव [श्रीजानकीको] गोदमें उठाये (प्रकट होकर) पास आये (और बोले—) 'रघुनाथजी ! ये निष्कलङ्क हैं ।' (उसी समय) आकाशमें अपने विमानोंको स्थिर करके देवताओं तथा महाराज दशरथने भी यही बात कही । इससे (श्रीरामने) श्रीजानकीजीको (अपने पास) पुष्पक विमानपर बैठा लिया, (श्रीजानकीके साथ) उनकी शोभा करोड़ों कामदेवके समान हो गयी । इस प्रकार श्रीराम श्रीसीता-जीको लेकर अयोध्याको चल पड़े, इस शोभापर सूरदास न्योछावर है ।

राग मारू

[१८७]

सुरपतिहि बोलि रघुबीर बोले।
अमृत की बृष्टि रन-खेत ऊपर करौ,
सुनत तिन अमिय-भंडार खोले॥
उठे कपि-भालु ततकाल जै-जै करत,
असुर भए मुक्त, रघुबर निहारे।
'सूर' प्रभु अगम महिमा न कछु कहि परति,
सिद्ध-गंधर्ब जै-जै उचारे॥

श्रीरघुनाथजीने देवराज इन्द्रको बुलाकर कहा—'युद्धभूमिके ऊपर अमृतकी वर्षा कर दो !' यह सुनते ही उन्होंने अमृतका भंडार खोल दिया। श्रीरघुनाथजीने देखा (युद्धमें मारे गये) वानर और भालु 'जय-जय' करते हुए तत्काल उठ खड़े हुए; किंतु राक्षस मुक्त हो गये थे (इससे वे नहीं उठे)। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभुकी महिमा अगम्य है, उसका कुछ भी वर्णन नहीं किया जा सकता। सिद्ध-गन्धर्वादि सब जयध्वनि कर रहे हैं।

राग सारंग

[१८८]

रघुपति रन जीति आए।
इहि बिधि बेद बिमल जस गाए॥
प्रथम बान पौसान प्रगटि प्रभु तकि ताड़िका नसाई।
प्रान सुध बुध सूपनखा की नाक निपात सिखाई॥
खर दूषन त्रिसिरा मृग कपि हति पंच कवल करवाई।
जलनिधि जलमिव सींचि सुचित ह्वै अग्रिम रुचि उपजाई॥
जगु जानी रघुबीर धीर की असि ज्यौनार बनाई।
आदि मधु रहित छत्र निद्धते सिर सिव लड्डू चखाए॥

गज गुंझा रथ-चक्र कटक बर है घेवर समुदाए।
फेनी फरी पूप पै दागन सुभा स्वाद सजि लाए॥
चतुरंगनि चहुँ भाँति सुभोजन अति आदर सूपाए।
मनहु प्रिये पकवान पहली सकल सिलीमुख पाए॥
कटुक क्रोध मकराच्छ-अकंपन तिक्त प्रहस्त पठाए।
कुंभकरन मिघनाद महोदर अमल धवल धसि धाए॥
किल कषाय अतिकाय अतिरथनि बहु ब्यंजन मन भाए।
बिसरिक तिच्छ अवलोकि अपूरब निपुन सेष पुरसाए॥
खल षटरस निकर कौसल पति सायक सकल जिंवाए।
भ्राजित भात भूमि मुकताहल रिपु हति हार बिथारे॥
बरिल बरि संधान अनेक मानि भूषन भरि उर फारे।
मीन-बरन कर खंड षडौछा कष्टि करवाल कटारे॥
माँडे पापर पुरी पताका कवच करि डारे।
देखत उठत कवंध मनो घृत बस सत फिरत उघारे॥
जोगिनि भूत बिताल भयानक करत कुलाहल भारी।
समिटे वृक गोमाय गिद्ध गन काक कंक ज्यौं नारी॥
रही न एकौ साध स्वाद की खाटो-मीठी खारी।
सीतानाथ सुजान-सिरोमनि अंतर-प्रीति बिचारी॥
रावन-रुहिर रसाल पछावरि परुसत सब सुखकारी।
आए अँचवन देन देवगन अमृत-कलस कर झारी॥
जाहि सीचि सोई उठे सुद्ध त्यागीहिं सोई न्यारी।
रामचंद्र-जस हर्षवंत ह्वै सादर करि कै बीरी॥
भाले भघि भरोसा रघुपति लंका कंचन थारी।
दई छाड़ि जिय जानि 'सूर' प्रभु बिभीषन बारी॥

श्रीरघुनाथ युद्ध-विजय करके आ गये। वेदोंने उनके निर्मल यशका इस प्रकार वर्णन किया है—(मानो श्रीरामका पूरा पराक्रम एक बृहत् भोज हो)। पहले प्रभुने अग्निबाणके द्वारा अग्नि प्रकट करके उससे ताड़का-

को लक्ष्य करके नष्ट कर दिया (मानो यह अग्निमें आहुति दी)। फिर शूर्पणखाकी नाक काटकर उसे सुध-बुध ठिकाने रखनेकी (मनमाना आचरण न करनेकी) शिक्षा दी, मानो यह प्राणोंका संयम किया। खर, दूषण, त्रिशिरा, मारीच और वालीको मारकर पञ्चग्रास करवाया (भोजनके प्रारम्भमें पाँचों प्राणोंके नामसे 'स्वाहा' पूर्वक पाँच ग्रास खानेका नियम है, वह पूरा करवाया)। फिर जलसिञ्चनके समान (आचमन करनेके समान) एकाग्र चित्तसे समुद्र-बन्धन करके (या समुद्रको वाणसे भयभीत करके) पहले भोजनकी रुचि उत्पन्न कर दी। फिर तो संसारने जान लिया कि धैर्यशाली श्रीरघुनाथका भोजन इस प्रकार बनाया गया था—रत्नजटित जो (रावणका) छत्र था मानो वही प्रथम ऐसा मस्तक था जो मधुरहित लड्डू हो, (उसे काटकर) शंकरजीको चढ़ा दिया। (युद्धके) हाथी ही (उस भोजनमें) गूँझा थे, रथोंका समूह जो उस श्रेष्ठ सेनामें था, वही घेवरोंकी ढेरी बना। (गैंड़ेके) चमड़ेकी ढालें फेनी (मिठाईविशेष) थीं और (शस्त्रोंका) आघात करना ही पुए थे, शुभ (सुन्दर) स्वादिष्ट पदार्थ सजाये गये थे। चतुरङ्गिणी सेना ही चारों प्रकारका (चर्व, चोष्य, लेह्य और पेय) उत्तम भोजन था, जिसे भली प्रकार परोसा गया। [इस प्रकार] [श्रीरामके] सभी बाणोंने मानो अपने प्यारे पकवान पहली बार प्राप्त किया। (इस भोजनमें भी षट्रस था, जिसमेंसे) मानो क्रोधी मकराक्ष और अकम्पन आदि राक्षस कड़वे थे, प्रहस्त तिक्त रसके रूपमें भेजा गया; कुम्भकर्ण, मेघनाद, महोदर, जिनके दौड़नेसे पृथ्वी धँसती जाती थी, वे मानो निर्मल उज्ज्वल मधुर रस थे; अतिकाय आदि अतिरथियों-को कषाय रसके रूपमें नाना प्रकारके व्यञ्जन बनाये गये थे और अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंरूपी अपूर्व भोजन करनेवाले अतिथियोंको देखकर प्रभुने परम निपुण लक्ष्मणजीद्वारा यह भोजन परसवाया था। इस प्रकार दुष्ट राक्षसोंरूपी षट्रस भोजन कराके श्रीरघुनाथजीने सभी बाणोंको तृप्त किया। (इस भोजनमें) शत्रुको मारकर जो उनके टूटे हुए हारोंके मोती पृथ्वीमें बिखेर दिये हैं,

वही मानो भात शोभित हो रहा है और शत्रुओंके हृदय विदीर्ण करके उनके जो अनेकों मणिमय आभूषण बिछा दिये हैं, वे श्रेष्ठ बड़ियाँ जान पड़ती हैं। तीक्ष्ण तलवारसे कटी भुजाओंके खण्ड ही मानो मछलियोंके रंगके षड़ौंछा (बेसनसे बना भोजनविशेष) है। इसी प्रकार पताकाओं तथा कवचोंको पूड़ी तथा पापड़ बनाकर परोस दिया है। उठते हुए कबन्ध (सिरहीन देह) इस प्रकार दिखायी पड़ते हैं मानो (अपनी रक्तधाराके रूपमें) घी परोसते हुए नंगे घूम रहे हों। योगिनियाँ, भूत, वेताल आदि वहाँ अत्यन्त भयंकर प्रचण्ड कोलाहल कर रहे हैं। भेड़िया, शृगाल, गीध, कौवे, काँक❋ आदिके समूह भोजन करनेवाले बनकर एकत्र हो गये हैं। खट्टा, मीठा, तीक्ष्ण आदि स्वाद लेनेकी एक भी इच्छा आज रह नहीं गयी (सब पूरी हो गयी)। सुजान-शिरोमणि श्रीजानकीनाथ इनके हृदयका प्रेम समझकर सबसे अन्तमें मानो रावणका रक्तरूपी सब सुख देनेवाला 'रसाल' (भोजनविशेष) परोसते हैं। अन्तमें देवगण हाथमें अमृतकी झारी लेकर आचमन कराने आये। जिसे उन्होंने सींचा, वे तो सचेत होकर उठ गये और जिन्हें छोड़ दिया, वे अलग (मुक्त) हो गये। बाणोंने श्रीरघुनाथजीके विश्वासपर बड़ी प्रसन्नतासे उन श्रीरामचन्द्रजीके सुयशको ही आदर-पूर्वक पानके बीड़ेके रूपमें स्वीकार किया। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभुने विभीषणको अपने मनमें बारी (बरई) समझकर (उनके लिये) लङ्कारूपी सोनेकी थाली छोड़ दी।

माताकी व्याकुलता

राग सारंग

[१८९]

बैठी जननि करति सगुनौती।
लछिमन-राम मिलैं अब मोकौं, दोउ अमोलक मोती ॥

❋ काँक=सफेद रंगका चीलके आकारका पक्षी, जो उड़ता कम है तथा गाँवोंमें प्रायः गंदी वस्तुएँ एवं छोटे जीव खाता है।

इतनी कहत, सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि बैठ्यौ।
अंचल गाँठि दई, दुख भाज्यौ, सुख जु आनि उर पैठ्यौ॥
जब लौं हौं जीवौं जीवन भर, सदा नाम तव जपिहौं।
दधि-ओदन दोना भरि देहौं, अरु भाइनि मैं थपिहौं॥
अब कै जो परचौ करि पावौं, अरु देखौं भरि आँखि।
'सूरदास', सोने के पानी मढ़ौं चौंच अरु पाँखि॥

सूरदासजी कहते हैं कि (अयोध्या-राजमन्दिरमें) बैठी हुई माता शकुन देख रही हैं (और सोचती हैं—), 'मेरे दोनों अमूल्य मोतीके समान श्रीराम और लक्ष्मण अब मुझे मिल जायँ।' इतना (उनके) कहते ही शुभसूचक कौआ वहाँसे उड़कर हरी डालीपर जाकर बैठ गया। (यह देखकर माताने) अञ्चलमें गाँठ बाँध ली (कि यह शकुन सत्य हो)। उनका दुःख भाग गया और हृदयमें आनन्दने प्रवेश किया। (वे बोलीं—) 'काग! जबतक मैं जीवित रहूँगी, जीवनभर सदा तेरे नामका स्मरण करूँगी। (प्रतिदिन) तुझे दोना भरके दही और भात दूँगी तथा तुझे अपने भाइयोंमें स्थापित करूँगी (अपना भाई मानूँगी)। इस बार यदि इस शकुनको सत्य पा जाऊँ और नेत्र भरकर (राम-लक्ष्मणको) देख लूँ तो तुम्हारी चोंच और पाँखें सोनेके पानीसे मढ़वा दूँगी।'

अयोध्या-आगमन

राग बसंत

[१९०]

राघव आवत हैं अवध आज। रिपु जीते, साधे देव काज॥
प्रभु कुसल बंधु-सीता समेत। जस सकल देस आनंद देत॥
कपि सोभित सुभट अनेक संग। ज्यौं पूरन ससि सागर-तरंग॥
सुग्रीव-बिभीषन-जामवंत। अंगद-सुषेन-केदार संत॥
नल-नील-द्विविद-केसरि-गवच्छ। कपि कहे कछुक, है बहुत लच्छ॥
जब कही पवन-सुत बंधु-बात। तब उठी सभा सब हरष गात॥

ज्यौं पावस रितु घन प्रथम घोर। जल-जीवक,दादुर रटत मोर॥
जब सुन्यौ भरत पुर निकट भूप। तब रची नगर-रचना अनूप॥
प्रति-प्रति गृह तोरन ध्वजा-धूप।सजे सजल कलस अरु कदलि-यूप॥
दधि-दूब-हरद, फल-फूल-पान। कर कनक-थार तिय करति गान॥
सुनि भेरि-बेद-धुनि संख-नाद।सब निरखत पुलकित अति प्रसाद॥
देखत प्रभु की महिमा अपार। सब बिसरि गए मन-बुधि-बिकार॥
जै-जै दसरथ-कुल-कमल-भान। जै कुमुद-जननि-ससि, प्रजाप्रान॥
जै दिवि भूतल सोभा समान। जै-जै-जै 'सूर' न सब्द आन॥

शत्रुको जीतकर, देवताओंका कार्य पूरा करके, अपने सुयशसे सभी लोकोंको आनन्द देते हुए भाई (लक्ष्मणजी) और श्रीजानकीजीके साथ कुशलपूर्वक प्रभु श्रीरघुनाथजी आज अयोध्या आ रहे हैं। जैसे चन्द्रमाके पूर्ण होनेपर समुद्रकी तरङ्गे उठती है, उसी प्रकार (उत्साहमें भरे) अनेक शूर कपि उनके साथ शोभा पा रहे हैं। सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान्, अङ्गद, सुषेण, साधु केदार, नल,नील, द्विविद, केसरी, गवाक्ष—ये तो कुछ नाम गिनाये गये, किंतु वानर तो बहुत हैं—लाखों हैं। जब श्रीहनुमान्‌जीने (अयोध्या आकर भरतजीसे) भाईके लौटनेका समाचार कहा, तब सम्पूर्ण राजसभाके लोगोंका शरीर इस प्रकार हर्षित हो उठा जैसे वर्षा-ऋतुमें बादलोंका प्रथम शब्द सुनकर जलमें जीवित रहनेवाले प्राणी हर्षित होते हैं, मेढक ध्वनि करने लगते हैं और मयूर नाचने लगते हैं। जब भरतजीने सुना कि महाराज श्रीरामचन्द्र नगरके पास आ गये हैं, तब नगरकी अनुपम सजावट करायी। प्रत्येक घरमें द्वारपर तोरण बाँधे गये, झंडे उड़ने लगे, धूप दी गयी, कलश और केलेके खंभे सजाये गये। दही, दूब, हल्दी, फल, फूल और पान स्वर्णके थालोंमें सजाकर हाथमें लिये नारियाँ मङ्गलगान करने लगीं। भेरियोंकी ध्वनि, वैदिक गान और शङ्खोंका शब्द सुनायी पड़ने लगा। सभी लोग अत्यन्त पुलकित और प्रसन्न होकर प्रभुका आगमन देखने लगे। प्रभुकी अपार महिमा देखते (स्मरण करते)

हुए सब लोग मन और बुद्धिके विकार (समस्त संकल्प एवं विचार) भूल गये। 'महाराज दशरथके कुलरूपी कमलको विकसित करनेवाले सूर्यकी जय हो।' 'माता कौसल्यारूपी कुमुदिनीके चन्द्रमाकी जय हो।' 'प्रजाके प्राणधनकी जय हो!' 'भूमण्डल एवं स्वर्गके भी आभूषणरूप प्रभुकी जय हो!' सूरदासजी कहते हैं कि 'जय हो! जय हो! जय हो!' इस शब्दको छोड़कर दूसरा कोई शब्द उस समय (अयोध्यामें) था ही नहीं।

राग सारंग

[१९१]

कपिबर! देखि अजोध्या आई।
हंस-बंस कौ बास सदा यहाँ, भुजा उठाय दिखाई॥
सुन्दर सर, चौहटे चहूँ दिसि आरसमनि छिति छाई।
मनि कंचन के हरमि मनोहर सरयु नदी सुखदाई॥
यह तजि मोहि अवर नहिं भावै, सप्त लोक ठकुराई।
परम बिचित्र रम्य तीरथ धन वेद-पुरानन गाई॥
यह पुर बसत प्रानहु ते प्यारे, तिन करि सुरति न जाई।
'सूरदास' रघुनाथ कृपानिधि श्रीमुख करत बड़ाई॥

(श्रीरघुनाथजीने) हाथ उठाकर दिखलाते हुए कहा—'कपिश्रेष्ठ (सुग्रीव)! देखो, अयोध्यापुरी आ गयी! यहाँपर सर्वदा श्रेष्ठ कुलके लोग निवास करते हैं। सुन्दर सरोवर है, चारों ओर चौराहे हैं और दर्पणके समान स्वच्छ पृथ्वी शोभित है। स्वर्णके मणि-जटित भवन यहाँ बने हैं तथा (नगरके समीप) सुखदायी सरयू नदी है। इसे छोड़कर मुझे दूसरा कोई नगर या सातों लोकोंका स्वामित्व भी पसंद नहीं है। यह अत्यन्त विचित्र एवं रमणीय तीर्थ धन्य है, वेद और [illegible] इसका वर्णन करते हैं। जो लोग इस नगरमें रहते हैं, वे मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, उनकी स्मृति मैं कभी नहीं भूलता।' सूरदासजी कहते हैं—कृपानिधान श्रीरघुनाथजी श्रीमुखसे इस प्रकार (अयोध्या) की बड़ाई करते हैं।

राग मारू

[१९२]

हमारी जन्मभूमि यह गाउँ।
सुनहु सखा सुग्रीव-बिभीषन! अवनि अजोध्या नाउँ॥
देखत बन-उपवन-सरिता-सर, परम मनोहर ठाउँ।
अपनी प्रकृति लिएँ बोलत हौं, सुरपुर मैं न रहाउँ॥
ह्याँ के बासी अवलोकत हौं, आनँद उर न समाउँ।
'सूरदास' जो बिधि न सँकोचै, तो वैकुंठ न जाउँ॥

सूरदासजी कहते हैं—(प्रभुने कहा—) 'सखा सुग्रीव और विभीषण! सुनो! पृथ्वीपर यह जो अयोध्या नामक नगर है, वही हमारी जन्मभूमि है। यहाँपर वन, उपवन, नदी और सरोवर दिखलायी पड़ रहे हैं; यह स्थान अत्यन्त सुन्दर है। मैं अपने स्वभावकी बात कहता हूँ कि स्वर्गमें भी मुझसे रहा नहीं जायगा (वह भी अयोध्या-जैसा सुखद मुझे नहीं लगता)। यहाँके निवासियोंको देखते ही मुझे इतना आनन्द होता है कि वह हृदयमें समाता नहीं। यदि मुझे ब्रह्माजी (संसारकी मर्यादाका ध्यान दिलाकर) संकोचमें न डालें तो मैं (अयोध्या छोड़कर) वैकुण्ठ भी न जाऊँ।'

[१९३]

वे देखो रघुपति हैं आवत।
दूरहि तैं दुतिया के ससि ज्यौं,ब्योम बिमान महा छबि छावत॥
सीय सहित बर-बीर बिराजत, अवलोकत आनंद बढ़ावत।
चारु चाप कर परस सरस सिर मुकुट धरे सोभा अति पावत॥
निकट नगर जिय जानि धँसे घर,जन्मभूमि की कथा चलावत।
ये मम अनुज परे दोउ पाइनि,ऐसी बिधि कहि-कहि समुझावत॥

ये वसिष्ठ कुल-इष्ट हमारे, पालागन कहि सखनि सिखावत।
ये स्वामी! सुग्रीव-बिभीषन, भरतहु तैं हमकौं जिय भावत॥
रिपु-जय, देव-काज,सुख-संपति सकल 'सूर' इनही तैं पावत।
ये अंगद-हनुमान कृपानिधि पुर पैठत जिन कौ जस गावत॥

(अयोध्याके लोगोंने कहा—) 'वे देखो! श्रीरघुनाथजी आ रहे हैं। दूरसे ही वह द्वितीयाके चन्द्रमाके समान पुष्पक-विमान अत्यन्त शोभा दे रहा है। सीताजीके साथ श्रेष्ठ दोनों भाई विराजमान हैं, देखनेमें आनन्दको बढ़ा रहे हैं। प्रभु हाथमें सुन्दर धनुष लिये हैं और भव्य मस्तकपर जटा-मुकुट धारण किये अत्यन्त शोभित हो रहे हैं।' सूरदासजी कहते हैं कि जन्मभूमिकी चर्चा करते हुए मनमें नगरको पास आया समझकर (विमानको प्रभुने) पृथ्वीकी ओर उतारा और उतर पड़े, फिर इस प्रकार सबको बताते हुए समझाने (परिचय देने) लगे—'ये चरणोंमें पड़े दोनों मेरे छोटे भाई (भरत और शत्रुघ्न) हैं। ये हमारे कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ हैं।' सखाओंको (प्रभुने महर्षिके) चरण-वन्दनकी शिक्षा दी (और महर्षिसे कहा—) 'प्रभो! ये वानर-राज सुग्रीव तथा लङ्कापति विभीषण हैं। मुझे ये भरतसे भी अधिक प्रिय हैं। इन्हींके द्वारा शत्रुविजय, देवकार्यकी सिद्धि और सभी सुख-सम्पति मुझे प्राप्त हुई। कृपानिधान प्रभु नगर-प्रवेशके समय (सर्व-प्रथम) जिनका सुयश वर्णन करते हैं, वे ये युवराज अङ्गद और पवनकुमार हनुमान् हैं।'

राग बिलावल

[१९४]

देखन कौं मंदिर आनि चढ़ी।
रघुपति-पूरनचंद बिलोकत, मनु पुर-जलधि-तरंग बढ़ी॥
प्रिय-दरसन-प्यासी अति आतुर, निसि-बासर गुन-ग्राम रढ़ी।
रही न लोक-लाज मुख निरखत, सीस नाइ आसीस पढ़ी॥
भई देह जो खेह करम-बस, जनु तट गंगा अनल दढ़ी।
'सूरदास' प्रभु-दृष्टि सुधानिधि, मानो फेरि बनाइ गढ़ी॥

(अवधपुरीकी नारियाँ) श्रीरामका दर्शन करनेके लिये भवनोंके (छज्जोंपर) चढ़ गयीं। (उनमें इतना आनन्दोत्साह था) मानो पूर्ण चन्द्रमाके समान श्रीरघुनाथजीको देखकर नगररूपी समुद्रकी तरङ्गें बढ़ गयी हों। परम प्रिय श्रीरामके दर्शनोंकी वे प्यासी थीं, अत्यन्त आकुल हो रही थीं, रात-दिन (चौदह वर्षतक) उन्हींके गुणगणका गान करती रही थीं। (अब उन श्रीरघुनाथके) श्रीमुखका दर्शन करते ही उनमें लोकलाज नहीं रह गयी (कोई हमें देखेगा—यह वे भूल ही गयीं), मस्तक झुकाकर उन्होंने आशीर्वाद दिया। उनका शरीर जो दुर्भाग्यवश इस प्रकार भस्म हो गया था, मानो अग्निसे भस्म हुआ गङ्गाका किनारा हो। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभुकी सुधामयी दृष्टिने मानो पड़ते ही उन्हें फिरसे सजाकर निर्मित कर दिया (प्रभुकी दृष्टि पड़ते ही उनमें नवजीवन आ गया)।

राम मारू

[१९५]

देखौ कपिराज ! भरत वे आए !
मम पाँवरी सीस पर जाके, कर-अँगुरी रघुनाथ बताए ॥
छीन सरीर बीर के बिछुरैं, राज-भोग चित तैं बिसराए।
तप तरु लघु-दीरघता, सेवा, स्त्रामि-धर्म सब जगहिं सिखाए ॥
पुहुप-बिमान दूरिहीं छाँड़े, चपल चरन आवत प्रभु धाए।
आनँद-मगन पगनि केकइ- सुत कनकदंड ज्यौं गिरत उठाए ॥
भेंटत आँसू परे पीठि पर, बिरह-अगिनि मनु जरत बुझाए।
ऐसेहिं मिले सुमित्रा-सुत कौं, गदगद गिरा नैन जल छाए ॥
जथाजोग भेंटे पुरबासी, गए सूल, सुख-सिंधु नहाए।
सिया-राम-लछिमन मुख निरखत, 'सूरदास' के नैन सिराए ॥

श्रीरघुनाथजीने हाथकी अँगुलीसे निर्देश करते हुए बताया—'कपिराज सुग्रीव ! वह देखो ! जिनके मस्तकपर मेरी चरण-पादुका है, वे भरतलालजी

आ रहे हैं। मेरे भाईका शरीर मेरे वियोगमें कृश हो गया है, सभी राजसुख-भोग इन्होंने मनसे विस्मृत ही कर दिया। तपस्या, बड़े भाईके प्रति छोटे भाईका व्यवहार, सेवा, स्वामीके प्रति सेवकका धर्म, इन सबकी इन्होंने (अपने आचरणसे) संसारको शिक्षा दी।' प्रभुने (यह कहते हुए) दूर ही पुष्पकविमान छोड़ दिया और अत्यन्त चंचल पदोंसे (वेगसे) दौड़ पड़े तथा आनन्दमग्न होकर स्वर्णदण्डके समान अपने चरणोंमें गिरते भरतको उठा लिया। मिलते हुए (प्रभुके) आँसू भरतजीकी पीठपर गिरने लगे, मानो विरहकी अग्निमें जलते हुए भरतकी ज्वाला प्रभुने बुझा दी। इसी प्रकार प्रभु सुमित्राकुमार शत्रुघ्नजीसे मिले, उनकी वाणी गद्गद हो रही थी और नेत्रोंमें अश्रु भरे थे। सभी नगरवासियोंसे प्रभु यथायोग्य रीतिसे मिले, सबकी वेदना दूर हो गयी, मानो उन्होंने सुखके समुद्रमें स्नान कर लिया। श्रीजानकीजीके साथ श्रीराम तथा लक्ष्मणके मुखको देखकर सूरदासके नेत्र भी शीतल हो गये!

[१९६]

मनिमय आसन आनि धरे।
दधि-मधु-नीर कनक के कोपर आपुन भरत भरे॥
प्रथम भरत बैठाइ बंधु कौं, यह कहि पाइ परे।
हौं पावौं प्रभु-पाइ-पखारन, रुचि करि सो पकरे॥
निज कर चरन पखारि प्रेम-रस आनंद-आँसु ढरे।
जनु सीतल सौं तप्त सलिल दै, सुखित समोइ करे॥
परसत पानि चरन पावन, दुख अँग-अँग सकल हरे।
'सूर' सहित आमोद चरन-जल लेकर सीस धरे॥

सूरदासजी कहते हैं कि भरतजीने मणिमय सिंहासन लाकर रखा और अपने हाथों दूध, मधु तथा जल स्वर्णपात्रोंमें भरा। फिर कुमार भरतने पहले बड़े भाईको (उस आसनपर) बैठाया और फिर यह कह करके चरण पकड़ लिया कि 'प्रभुके चरण-प्रक्षालनका अवसर मुझे

मिलना चाहिये ।' बड़े स्नेहसे उन्होंने चरण पकड़ रखा था । अपने हाथों उन श्रीचरणोंको धोते हुए प्रेममग्न होकर उनके आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे, मानो तप्त हृदयको जलके द्वारा सींचकर वे शीतल और सुखी कर रहे हों । प्रभुके पावन चरणोंको हाथोंसे स्पर्श करते हुए उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गका सम्पूर्ण दुःख दूर हो गया । फिर अत्यन्त आनन्दके साथ वह चरणोदक लेकर उन्होंने मस्तकपर धारण किया ।

[१९७]

अति सुख कौसिल्या उठि धाई ।
उदित बदन मन मुदित सदन तैं, आरतिसाजि सुमित्रा ल्याई ॥
जनु सुरभीबन बसति बच्छ बिनु, परबस पसुपति की बहराई ।
चली साँझ समुहाइ स्रवत थन, उमँगि मिलन जननी दोउ आई ॥
दधि-फल-दूब कनक-कोपर भरि, साजत सौंज बिचित्र बनाई ।
अमी-बचन सुनि होत कुलाहल, देवनि दिवि दुंदुभी बजाई ॥
बरन-बरन पट परत पाँवड़े, बीथिनि सकल सुगंध सिंचाई ।
पुलकित रोम, हरष-गदगद स्वर, जुवतिनि मंगल-गाथा गाई ॥
निज मंदिर मैं आनि तिलक दै, दुज-गन मुदित असीस सुनाई ।
सिया-सहित सुखबसौ इहाँ तुम, 'सूरदास' नित उठि बलि जाई ॥

माता कौसल्या अत्यन्त आनन्दसे उठकर दौड़ पड़ीं, माता सुमित्रा प्रसन्नमन तथा प्रफुल्ल मुख हुई अपने भवनसे आरती सजाकर ले आयीं । जैसे गायें पशुपालकके द्वारा चरानेको ले जानेपर विवश होकर (दिनभर) वनमें बछड़ोंके बिना रहती हैं, किंतु संध्या होते ही थनोंसे दूध टपकाती उत्साहपूर्वक दौड़ पड़ती हैं; उसी प्रकार दोनों माताएँ उमंगसे मिलने आयीं । दही, फल, दूब आदि स्वर्णके पात्रोंमें भर-भरकर तथा और अनेक विचित्र वस्तुएँ एकत्र करके सजायी गयीं । (नगरमें) अमृतके समान (श्रीरामके राज्याभिषेकका) संवाद सुनकर कोलाहल हो रहा है,

देवताओंने स्वर्गमें दुन्दुभियाँ (नगारे) बजाये। सभी गलियाँ सुगन्धित द्रव्योंसे सींची गयीं। मार्गमें रंग-बिरंगे वस्त्रोंके पाँवड़े बिछाये जा रहे हैं। जिनके रोम-रोम पुलकित हो रहे हैं और स्वर (आनन्दसे) गद्‌गद हो रहा है, ऐसी युवतियोंने मङ्गल-गान प्रारम्भ किया। राजभवनमें ले आकर श्रीरामको राजतिलक करके आनन्दित होकर विप्र-वृन्दने आशीर्वाद दिया। सूरदासजी कहते हैं, प्रभो ! आप श्रीजानकीजीके साथ यहाँ सुखपूर्वक निवास करें। नित्य प्रातःकाल उठकर मैं आपकी बलिहारी जाऊँ (आपका दर्शन प्राप्त करूँ)।

राज-समाज-वर्णन

[१९८]

बिनती केहि बिधि प्रभुहि सुनाऊँ।
महाराज रघुबीर धीर कौ समय न कबहूँ पाऊँ॥
जाम रहत जामिनि के बीतें तिहि औसर उठि धाऊँ।
सकुच होत सुकुमार नींद तें कैसें प्रभुहि जगाऊँ॥
दिनकर-किरन उदित ब्रह्मादिक रुद्रादिक इक ठाऊँ।
अगनित भीर अमर-मुनि-गन की, तिहि तें ठौर न पाऊँ॥
उठत सभा दिन मध्य सियापति, देखि भीर फिर आऊँ।
न्हात खात सुख करत साहिबी कैसें करि अनखाऊँ॥
रजनी-मुख आवत गुन गावत नारद-तुम्बरु नाऊँ।
तुमही कहौ कृपन हौं रघुपति किहि बिधि दुख समझाऊँ॥
एक उपाय करौं कमलापति, कहौ तौ कहि समझाऊँ।
पतित-उधारन 'सूर' नाम प्रभु लिखि कागद पहुँचाऊँ॥

सूरदासजी कहते हैं कि मैं प्रभुको किस प्रकार अपनी प्रार्थना सुनाऊँ। धैर्यशाली महाराज श्रीरघुनाथजीको प्रार्थना सुनानेके लिये मुझे कभी समय ही (समुचित अवसर ही) नहीं मिलता। रात्रि जब बीतने

लगती है और एक प्रहर रह जाती है, उस समय उठकर दौड़ता हूँ, किंतु बड़ा संकोच होता है कि प्रभु अत्यन्त सुकुमार हैं, फिर स्वामीको (सेवक होकर) निद्रासे कैसे जगाऊँ । सूर्यकी किरण निकलते (बड़े सवेरे) ही ब्रह्मादि देवता, रुद्रादि लोकपाल एकत्र हो जाते हैं, देवताओं और मुनिगणोंकी अपार भीड़ हो जाती है; इससे मुझे स्थान ही नहीं मिलता (कि प्रभुतक जा सकूँ) । श्रीसीतानाथ दोपहरको राजसभासे उठते हैं, (राजसभामें तो)भीड़ देखकर लौट आता हूँ और स्नान करते, भोजन करते, विश्राम करते तथा राजकाज करते समय प्रभुके प्रति मैं कैसे अप्रसन्न होऊँ (कि वे मुझे समय नहीं देते । ये तो आवश्यक कार्य ही हैं) । संध्या होते ही देवर्षि नारद तथा तुम्बरु आदि गुण-गान करते हुए आ जाते हैं । अतः हे रघुनाथजी ! आप ही बताइये कि मैं दुखी किस प्रकार (कब) आपको अपना दुःख बताऊँ । हे श्रीजानकीनाथ ! एक उपाय मैं कर सकता हूँ; यदि आप कहें तो बताकर समझा दूँ । हे प्रभो ! आपका नाम पतितोद्धारण है, अतः आपके पास प्रार्थनापत्र लिखकर भेज दूँ ।

राग मारू

[१९९]

अंतरजामी हौ रघुबीर ।
करुना-सिंधु अकाल-कलप-तरु, जानत जन की पीर ॥
बालि-त्रास बन-बास बिषम दुख ब्यापत सकल सरीर ।
सोइ सुग्रीव कपि-कुलपति कीनौ, मिटी महा रिपु-भीर ॥
दसमुख दुसह क्रोध दावानल निज उस्वास समीर ।
राख्यौ तिंहि जुर जरत बिभीषन सीचि सुरत सित नीर ॥
सुनि-सुनि कथा प्रसिद्ध पुरातन जस जान्यौ जुग जीर ।
बहुरि नयौं करि कियौ 'सूर' प्रभु रामचन्द्र रनधीर ॥

सूरदासजी कहते हैं—हे रघुनाथजी ! आप तो अन्तर्यामी हैं, दयाके समुद्र हैं, विना अवसर भी देनेवाले कल्पवृक्ष हैं तथा सेवककी पीड़ा

समझनेवाले हैं (अतः आपसे प्रार्थना करनेकी आवश्यकता ही नहीं है)। जो वालीके भयसे वनमें रहते थे, दारुण दुःख जिनके शरीरमें पूर्णतः व्याप्त था, आपने उन्हीं सुग्रीवको वानरोंका नरेश बना दिया और महान् शत्रुरूपी संकटको दूर कर दिया। रावणका असह्य क्रोध दावाग्निके समान था और (विभीषणका) अपना ही निःश्वास पवनके समान था (रावणके क्रोधको आन्तरिक शोकसे और बढ़ाकर वे अनुभव करते थे)। इस ज्वरसे जलते हुए विभीषणको कृपारूपी निर्मल जलसे सिञ्चित करके आपने बचा लिया। यह पुरातन विश्व आपकी सुप्रसिद्ध प्राचीन कथाएँ सुन-सुनकर आपके सुयशको जानता था; किंतु मेरे स्वामी रणधीर श्रीरामचन्द्रजी ! आपने उस (सुयश) को फिरसे नवीन बना दिया।

सूर-सारावलीकी रामकथा

भूमिका

[२००]

रावन, कुंभकरन असुराधिप, बढ़े सकल जग माँहिं।
सबहिन लोकपाल उन जीते, कोऊ बाच्यौ नाँहिं॥
सकल देव मिलि जाय पुकारे, चतुरानन के पास।
लै सिव संग चले चतुरानन, छीर-सिंधु सुखबास॥
अस्तुति करि बहु भाँति जगाए, तब जागे निज नाथ।
आज्ञा दई, जाय कपि-कुल मैं, प्रगटौ सब सुर साथ॥
तब ब्रह्मा सबहिन सौं भाष्यौ, सोई सब सुर कीन्हौ।
सातौं दीप जाय कपि-कुल मैं, आय जन्म सुर लीन्हौ॥
अपने अंस आप हरि प्रगटे, पुरुषोत्तम निज रूप।
नारायन भुव-भार हरो है, अति आनंद स्वरूप॥
बासुदेव, यौं कहत बेद मैं, है पूरन अवतार।
सेष सहस मुख रटत निरंतर, तऊ न पावत पार॥

सहस-वर्ष लौं ध्यान कियौ सिव, रामचरित सुख-सार।
अवगाहन करि कै सब देख्यौ, तऊ न पायौ पार॥
बिती समाधि, सती तब पूछ्यौ, कहौ मरम गुरु ईस!
काकौ ध्यान करत उर अंतर, को पूरन जगदीस?
तब सिव कहेउ राम अरु गोबिंद, परम इष्ट इक मेरे।
सहस बर्ष लौं ध्यान करत हौं, राम-कृष्ण सुख केरे॥
तामैं राम समाधि करी अब, सहस वर्ष लौं बाम।
अति आनंद मगन मेरौ मन, अँग-अँग पूरन काम॥
दाया करि मोकौं यह कहियै, अमर होहुँ जेहिं भाँति।
मोहि नारदमुनि तत्व बतायौ, तातैं जिय अकुलाति॥
तब महादेव कृपा करि क, यह चरित कियौ बिस्तार।
सो ब्रह्मांड पुरान ब्यास मुनि, कियौ बदन उच्चार॥
मुनि बालमीकि कृपा सातौं ऋषि, राम-मंत्र फल पायौ।
उलटौ नाम जपत अघ बीत्यौ, पुनि उपदेस करायौ॥
रामचरित बरनन के कारन, बालमीकि-अवतार।
तीनौं लोक भए परिपूरन, रामचरित सुखसार॥
सतकोटी रामायन कीनौ, तऊ न लीन्हौ पार।
कह्यौ बसिष्ट मुनि रामचन्द्र सौं रामायन-उच्चार॥
कागभुसुंड गरुड़ सौं भाष्यौ, राम चरित अवतार।
सकल वेद अरु सास्त्र कह्यौ है, रामचंद्र-जस सार॥
कछु संछेप 'सूर' अब बरनत, लघुमति दुरबल बाल।
यह रसना पावन के कारन, मेटन भव-जंजाल॥

राक्षसराज रावण और कुम्भकर्ण विश्वमें प्रबल हो गये थे। उन्होंने सभी लोकपालोंको जीत लिया, कोई भी बचा नहीं। तब सभी देवता एकत्र होकर ब्रह्माजीके पास पुकार करने गये। ब्रह्माजी (देवताओं

तथा) शंकरजीको साथ लेकर सुखसिन्धु भगवान्के निवास क्षीरसागरको चल पड़े। (वहाँ जाकर) अनेक प्रकारसे स्तुति करके उन्होंने प्रभुको जगाया, तब वे सबके स्वामी जगे और आज्ञा दी—'सब देवता एक साथ जाकर कपियोंके कुलमें प्रकट हों।' तब ब्रह्माजीने यह बात सबसे कह दी और सभी देवताओंने वैसा ही किया। सातों द्वीपोंमें जितने वानरोंके कुल थे, उनमें आकर देवताओंने जन्म लिया। अपने अंशोंके साथ स्वयं पुरुषोत्तम श्रीहरि भी अपने (वास्तविक) स्वरूपसे (पृथ्वीपर) प्रकट हुए। उन अत्यन्त आनन्दस्वरूप श्रीनारायणने पृथ्वीका भार दूर किया। वेदोंमें उन्हें वासुदेव कहा जाता है, वे पूर्णावतार हैं। शेषजी सहस्र मुखसे निरन्तर उनका वर्णन करते हैं, फिर भी (उनके गुणोंका) अन्त नहीं पाते। सुखके साररूप श्रीरामचरितका एक सहस्र वर्षतक शंकरजीने ध्यान किया, उसमें अवगाहन करके (निमग्न होकर) देखा, किन्तु इतनेपर भी (उन्हें भी) उसका अन्त नहीं मिला। जब (शंकरजीकी) समाधि टूटी, तब सतीजीने पूछा—'हे मेरे गुरु शंकरजी ! यह रहस्य आप बताइये कि आप अपने हृदयमें किसका ध्यान कर रहे थे। पूर्ण जगदीश्वर कौन है ?' तब शंकरजीने कहा—'श्रीराम और गोविन्द ! यही एक मेरे परम इष्टदेव हैं। मैं एक-एक सहस्र वर्षतक श्रीराम तथा श्रीकृष्णके आनन्दस्वरूपका ही ध्यान करता हूँ। उसमेंसे देवि ! मैं अभी सहस्र वर्षतक श्रीरामके ध्यानमें समाधि लगाये था, इससे मेरा मन अत्यन्त आनन्दमें निमग्न है, मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्गकी कामनाएँ पूर्ण हो गयीं।' (सतीजीने कहा—) 'दया करके मुझसे यह (श्रीरामचरित) कहिये, जिससे मैं अमर हो जाऊँ। देवर्षि नारदने यह तत्त्व मुझे बतलाया है (कि श्रीरामचरित सुननेसे अमरत्व प्राप्त होता है)। इसीलिये मैं हृदयसे उत्कण्ठित हो रही हूँ।' तब श्रीशंकरजीने कृपा करके इस (राम-चरित) का विस्तार (से वर्णन) किया। भगवान् व्यासने उसीका पृथ्वीपर पुराणोंमें अपने मुखसे वर्णन किया। सप्तर्षियोंकी कृपासे महर्षि

वाल्मीकिने 'राम' यह मन्त्र फलरूपमें प्राप्त किया था। इस (राम) नामका उलटा जप करते हुए उन्होंने अपने सब पाप नष्ट कर दिये; फिर उन्होंने रामचरितका उपदेश किया। श्रीवाल्मीकिजीका प्राकट्य ही श्रीरामचरितके वर्णनके लिये हुआ था। (उनके द्वारा वर्णन होनेपर) सुखके साररूप श्रीरामचरितसे तीनों लोक परिपूर्ण हो गये। सौ करोड़ (श्लोकोंवाली) रामायणका उन्होंने निर्माण किया; फिर भी उन्हें (श्रीरामचरितका) अन्त नहीं मिला। फिर महर्षि वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीसे ही रामायणका वर्णन किया। श्रीरामावतारका चरित काकभुशुण्डिने गरुड़से वर्णन किया। सभी वेद और शास्त्रोंने कहा है कि श्रीरामचन्द्रजीका सुयश ही सबका साररूप है। इसलिये यह तुच्छ बुद्धिका दुर्बल बालक सूरदास अपनी जिह्वाको पवित्र करनेके लिये और संसारका जंजाल मिटानेके लिये संक्षिप्तरूपसे कुछ रामचरितका वर्णन करता है।

राम-जन्म

[२०१]

पुष्य नछत्र, नौमी जु परम दिन, लगन सुद्ध, सुभ बार।
प्रगट भए दसरथ-गृह, पूरन चतुर्ब्यूह अवतार॥
तीनौं ब्यूह संग लै प्रगटे, पुरुषोत्तम श्रीराम।
संकर्षन-प्रद्युम्न, लच्छमन-भरत महासुख-धाम॥
शत्रुघ्नहि अनिरुध कहियतु हैं, चतुर्ब्यूह निज रूप।
रामचंद्र प्रगटे जब गृह मैं, हरषे कौसल-भूप॥
अति फूले दसरथ मनहीं मन, कौसल्या सुख पायौ।
सौमित्रा-केकइ-मन आनँद, यह सबहिन सुत जायौ॥
गुरु बसिष्ठ, नारद मुनि ग्यानी, जन्मपत्रिका कीनी।
रामचंद्र बिख्यात नाम यह, सुर-मुनि की सुधि लीनी॥
देत दान नृपराज दुजन कौं, सुरभी हेम अपार।
सब सुन्दरि मिलि मंगल गावत, कंचन-कलस दुवार॥

आए देव और मुनिजन सब, दै असीस सुख भारी।
अपने-अपने धाम चले सब, परम मोद रुचिकारी॥
मन बांछित फल सबहिन पाए, भयौ सबन आनंद।
बालरूप ह्वै कै दसरथ-सुत, करत केलि स्वच्छंद॥

पुष्य नक्षत्र था, पावन नवमी तिथि थी, शुद्ध लग्न (अभिजित् मुहूर्त) था और शुभ दिन (मंगलवार) था, जब महाराज दशरथके घरमें चतुर्व्यूह-मूर्ति पूर्णावतार प्रकट हुए। पुरुषोत्तम श्रीराम अपने तीनों व्यूह-स्वरूपोंके साथ प्रकट हुए। (चतुर्व्यूहके) संकर्षण लक्ष्मण कहे जाते हैं, महान् सुखके धाम प्रद्युम्न भरत कहलाये और अनिरुद्ध-का नाम शत्रुघ्न पड़ा। ये चतुर्व्यूह परम प्रभुके अपने ही स्वरूप हैं। श्रीरामचन्द्र जब राजभवनमें प्रकट हुए, तब कोसलनरेश महाराज दशरथको अत्यन्त प्रसन्नता हुई, उनका चित्त प्रफुल्लित हो गया और श्रीकौसल्याजीको बड़ा सुख मिला। सुमित्राजी और कैकेयीजीके भी हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ; क्योंकि इन तीनों ही महारानियोंके पुत्र उत्पन्न हुए थे। (रघुवंशके) कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ तथा परम ज्ञानी देवर्षि नारदजीने (राजकुमारोंकी) जन्मपत्रिका बनायी। (उन्होंने बताया कि 'बड़े कुमारका) श्रीरामचन्द्र यह प्रसिद्ध नाम है। वस्तुतः तो इन्होंने देवता और मुनिगणोंकी सुधि ली है (देवता तथा मुनियोंके संकटको दूर करनेके लिये अवतार धारण किया है)।' महाराज दशरथ ब्राह्मणोंको गाएँ तथा अपार स्वर्णराशि दान देने लगे। सब (सौभाग्यवती) सुन्दरियाँ एकत्र होकर मङ्गलगान करने लगीं। द्वारों-पर स्वर्णके कलश सजाये गये। सभी देवता तथा मुनिगण (अयोध्या) आये तथा अत्यन्त आनन्दसे (सबके लिये) परम प्रसन्नतादायी रुचिकर (मनोवाञ्छित) आशीर्वाद (कुमारोंको) देकर अपने-अपने धाम चले गये। सभीने मनोवाञ्छित फल प्राप्त किया। सभीको आनन्द हुआ। इस प्रकार चारों भाई महाराज दशरथके कुमार बनकर बालरूपसे स्वच्छन्द बालक्रीड़ा करने लगे।

बाल-लीला

[२०२]

घुटुरुन चलत कनक-आँगन मैं, कौसल्या छबि देखत।
नील नलिन तन पीत झँगुलिया, घन दामिनि-दुति पेखत॥
कबहुँक माखन लैकै खावत, खेल करत पुनि माँगत।
मुख चुंबत, जननी समझावत, आय कंठ पुनि लागत॥
कागभुसुंड दरस कौं आए, पाँच बर्ष लौं देखे।
अस्तुति करी, आपु बर पायौ, जनम सुफल करि लेखे॥
किरपा करि निज धाम पठायौ, अपनौ रूप दिखाय।
वाके आस्रम कोउ बसत है, माया लगत न ताय॥
प्रातकाल उठि जननि जगावत, उठौ मेरे बारे राम!
उठि बैठे, दतुवन लै आई, करी मुखारी स्याम॥
चारौं भ्रात मिल करत कलेऊ, मधु-मेवा-पकवान।
जल-आचमन, आरती करि कै, फिर कीन्हौ अस्नान॥
करत सृंगार चार भइया मिलि, सोभा बरनि न जाई।
चित्र-बिचित्र सुभग चौतनियाँ, इंद्रधनुष-छबि छाई॥
अलकावलि मुक्तावलि गूँथी, डोर सुरंग बिराजै।
मनहुँ सुरसरी धार सरसुती, जमुना मध्य बिराजै॥
तिलक भाल पर परम मनोहर, गोरोचन कौ दीनौ।
मानौ तीन लोक की सोभा, अधिक उदय सो कीनौ॥
खंजन नैन बीच नासा-पुट, राजत यह अनुहार।
खंजन जुग मनौं लरत लराई, कीर बुझावत रार॥
नासा के बेसर मैं मोती, बरन बिराजत चार।
मनौ जीव सनि सुक्र एक ह्वै, बाढ़े रबि कें द्वार॥

कुंडल ललित कपोल बिराजत, झलकत आभा गंड।
इंदीबर पर मनौ देखियत, रबि की किरन प्रचंड॥
अरुन अधर दमकत दसनावलि, चारु चिबुक मुसक्यान।
अति अनुराग सुधाकर सींचत, दाड़िम-बीज समान॥
कंठसिरी बिच पदिक बिराजत, बहु मनि-मुक्ता-हार।
दहिनावर्त देत ध्रुव तारे, सकल नखत बहु बार॥
रतन-जड़ित कंकन बाजूबंद, नगन मुद्रिका सोहै।
डार-डार मनु मदन बिटप तरु, देखि-देखि मन मोहै॥
कटि किंकिन-रुनझुन सुनि तन की हंस करत किलकारी।
नूपुर-धुनि पग लाल पन्हैयाँ, उपमा कौन बिचारी॥
भूषन-बसन आदि सब रचि-रचि, माता लाड़ लड़ावै।
रामचंद्र की देख माधुरी, दरपन देख दिखावै॥
निज प्रतिबिंब बिलोकि मुकुर मैं, हँसत राम सुखरास।
तैसइ लछिमन, भरत, सत्रुहन, खेलत डोलत पास॥
दसरथ राय न्हाय भोजन कौं बैठे अपने धाम।
लाओ बेगि राम-लछिमन कौं, सुनि आए सुखधाम॥
बैठे सँग बाबा के चारौं, भैया जवन लागे।
दसरथ राय आपु जैंवत हैं, अति आनँद अनुरागे॥
लघु-लघु ग्रास राम मुख मेलत, आपु पिता-मुख मेलत।
बाल-केलि कौ बिसद परम सुख, सुख-समुद्र नृप झेलत॥
दार, भात, घृत, कढ़ी सलोनी, अरु नाना पकवान।
आरोगत नृप चार पुत्र मिलि, अति आनन्द-निधान॥
अचवन करि, पुनि जल अचवायौ, जब नृप बीरा लीनौ।
राम-लखन अरु भरत-सत्रुहन, सबहिन अचवन कीनौ॥

बीरा खाय चले खेलन कौं, मिलि कै चारौं बीर।
सखा संग सब मिले बराबर, आए सरजू तीर॥
तीर चलावत, सिष्य सिखावत, धर निसान दिखरावत।
कबहुँक सधे अस्व चढ़ि आपुन, नाना भाँति नचावत॥
कबहुँक चार भ्रात मिलि अगिया जात परम सुख पावत।
हरिन आदि बहु जंतु किए बध, निज सुरलोक पठावत॥
यहि बिधि बन-उपबन बहु क्रीड़ा करी राम सुखदाई।
बालमीकि मुनि कही कृपा कर, कछु इक 'सूर' जो गाई॥
भई साँझ जननी टेरत है, कहाँ गए चारौं भाई।
भूख लगी ह्वै है लालन कौं, लाओ बेगि बुलाई॥
इतने माँझि चार भैया मिलि, आए अपने धाम।
मुख चुंबत, आरती उतारत, कौसल्या अभिराम॥
सौमित्रा केकइ सुख पावत, बहुबिधि लाड़ लड़ावत।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, अपने हाथ जवावत॥
चारौं भ्रातनि स्रमित जानि कै, जननी तब पौढ़ाए।
चापत चरन जननि अप-अपनी, कछुक मधुर स्वर गाए॥
आई नींद, राम सुख पायौ, दिन कौ स्रम बिसरायौ।
जागे भोर, दौरि जननी ने अपने कंठ लगायौ॥

(श्रीराम) स्वर्णके आँगनमें घुटनोंके बल चलने लगे। माता कौसल्या उनकी शोभा देख रही हैं। नीले कमलके समान शरीरपर पीली झँगुली (बालकोंका झीना कुर्ता) ऐसी शोभा देती है जैसे बादलोंमें बिजलीकी चमक दिखायी पड़ती हो। कभी मक्खन लेकर खाते हैं, कभी खेल करते हुए फिर माँगते हैं। माता उनके मुखका चुम्बन करती हैं, समझाती हैं (कि गोरस बिखेरना नहीं चाहिये)। फिर आकर माताके गलेसे लग जाते हैं। श्रीकाकभुशुण्डिजी (इस बालरूपका) दर्शन करने आये और पाँच

वर्षतक (बाल-लीला) देखते रहे। उन्होंने (प्रभुकी) स्तुति की और स्वयं वरदान प्राप्त किया। इससे अपने जीवनको सफल माना। कृपा करके (प्रभुने) उन्हें अपने दिव्यधाममें भेज दिया तथा अपने (ऐश्वर्यमय) रूपका दर्शन कराया। जो कोई उन (काकभुशुण्डिजी) के आश्रममें निवास करता है, उसपर मायाका प्रभाव नहीं पड़ता। प्रातःकाल माता जगाती हैं—'मेरे बच्चे श्रीराम ! उठो।' जब वे उठकर बैठ जाते हैं, तब माता दातौन ले आती हैं, वे श्याम-वदन प्रभु दातौन करते हैं। फिर चारों भाई एकत्र होकर शहद, मेवे तथा नाना प्रकारके पक्वान्नोंका कलेऊ करके जलसे आचमन करते हैं। (माताएँ) उनकी (मङ्गल-) आरती करती हैं। फिर वे स्नान करते हैं। चारों भाई एक साथ ही शृङ्गार करते हैं। उस समयकी शोभाका तो वर्णन ही नहीं हो सकता। अनेक रंगोंकी सुन्दर चौकोनी टोपियाँ उनके मस्तकपर इन्द्र-धनुषके समान शोभा देती हैं। सुन्दर रङ्गवाली डोरियोंमें सजी हुई मोतियोंकी लड़ियाँ अलकोंमें गूँथी गयी हैं; वे ऐसी लगती हैं मानो सरस्वती और यमुनाकी धाराओंके मध्य (प्रयागके त्रिवेणी-सङ्गमपर) गङ्गाकी धारा शोभा दे रही हो। ललाटपर गोरोचनका परम मनोहर तिलक लगा है, मानो उसने त्रिभुवनकी शोभाको और अधिक बढ़ा दिया है। खञ्जनके समान (चपल एवं कजरारे) दोनों नेत्रोंके मध्यमें नासिका ऐसी शोभित है मानो दो खञ्जन पक्षी लड़ाई कर रहे हों और उनकी वह लड़ाई दूर करनेके लिये उन्हें समझाने उनके बीचमें आकर एक तोता बैठ गया है। नासिकाके बेसरमें चार रंगके मोती (मणि) शोभा दे रहे हैं; वे ऐसे लगते हैं जैसे (पुखराजरूप पीले) बृहस्पति, (नीलमरूप नीले) शनि तथा (मुक्तारूप उज्ज्वल) शुक्र एकत्र होकर (हीरेके रूपमें प्रकाशित) सूर्यके द्वारपर आ गये हैं। सुन्दर कुण्डल कपोलोंपर शोभा दे रहे हैं और उनकी ज्योति गण्डस्थल (कर्णपल्लीके नीचे) झलमलाती है; वह ऐसी लगती है मानो कमलके ऊपर सूर्यकी तीक्ष्ण किरणें पड़ रही हों। ओष्ठ लाल-लाल हैं, मुसकराते समय सुन्दर ठुड्डी और दन्तपंक्ति इस प्रकार दमक उठती

है मानो एक समान बोये अनारके बीजोंको चन्द्रमा अत्यन्त प्रेमसे अमृतसे सींच रहा हो। कठुलेके मध्य हीरा तथा अनेक मणियों एवं मोतियोंके हार इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानो सभी नक्षत्र-मण्डल ध्रुवताराकी अनेक बार प्रदक्षिणा कर रहे हैं। (करमें) रत्नजटित कङ्कण, (भुजामें) बाजूबंद और (अँगुलियोंमें) मणिजटित अँगूठियाँ इस प्रकार सजी हैं मानो कामदेवरूपी वृक्षकी बड़ी-छोटी सभी शाखाएँ हों। इस छटाको देख-देखकर मन मोहित होता है। शरीरके मध्य-भाग कटिकी करधनीका रुनझुन-शब्द सुनकर (दूसरे हंसकी ध्वनिके भ्रमसे) हंस कूदने लगते हैं। चरणोंमें नूपुरका शब्द होता है और लाल रंगकी जूतियाँ हैं—इनकी उपमा भला, कौन सोच सकता है। माता सब वस्त्राभूषणोंसे शृङ्गार करके प्यार करती है तथा श्रीरामचन्द्रकी रूप-माधुरी देखकर फिर उसे दर्पणमें देखती है और उन्हें भी (दर्पण) दिखलाती है। सुखनिधान श्रीराम दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर हँस देते हैं। उनकी भाँति ही सजे हुए लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न भी उनके आसपास ही खेलते हुए घूमते हैं। महाराज दशरथ स्नान करके अपने भवनमें जब भोजन करने बैठे (तब बोले—) 'श्रीराम-लक्ष्मणको शीघ्र यहाँ ले आओ।' (पिताकी बात) सुनकर सुखधाम चारों भाई आ गये और पिताके साथ बैठकर भोजन करने लगे। महाराज दशरथ स्वयं भोजन करते हैं तथा अत्यन्त आनन्दसे प्रेमपूर्वक छोटे-छोटे ग्रास श्रीरामके मुखमें डालते हैं, श्रीराम भी पिताके मुखमें ग्रास देते हैं। यह बाल-क्रीड़ाका निर्मल परमानन्द सुख-समुद्र महाराज दशरथ प्राप्त कर रहे हैं। महाराज अपने अत्यन्त आनन्दनिधान चारों पुत्रोंके साथ घृतयुक्त दाल-भात, सुन्दर कढ़ी तथा नाना प्रकारके पकवानोंको आरोगते (भोजन करते) हैं। स्वयं आचमन करके कुमारोंको भी आचमन कराया। जब महाराजने पानका बीड़ा ले लिया, तब श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न सभीने स्वयं फिरसे आचमन किया और फिर चारों भाई पानके बीड़े खाकर एक साथ खेलने चले। बराबरीकी

अवस्थावाले सभी सखा आकर साथ मिल गये, फिर सब सरयू-किनारे आये। (वहाँ) बाण चलाते हैं, (बाण-विद्या सीखनेवाले छोटे बालकरूपी) शिष्योंको शिक्षा देते हैं; निशान रखकर (उसका वेध) दिखलाते हैं। कभी स्वयं शिक्षित घोड़ेपर चढ़कर उसे अनेक प्रकारसे नचाते हैं। कभी चारों भाई एक साथ आखेटके लिये जाकर अत्यन्त आनन्द पाते हैं, वहाँ मृग तथा अनेक प्रकारके बहुत-से वन्य पशुओंको मारकर उन्हें अपने वैकुण्ठ-धाम भेज देते हैं। इस प्रकार श्रीरामने वनों तथा उपवनोंमें बहुत सुखदायक क्रीडा की। कृपा करके महर्षि वाल्मीकिने उनका वर्णन किया है, उसमेंसे कुछ थोड़ीका गान सूरदास कर रहा है। सायंकाल होनेपर माताएँ पुकारने लगती हैं—'चारों भाई कहाँ गये ? हमारे लालोंको भूख लगी होगी ! उन्हें शीघ्र बुला लाओ।' इसी बीच चारों भाई एक साथ अपने भवनमें आ गये। परम मनोहर माता कौसल्या उनके मुखका चुम्बन करती हैं तथा उनकी आरती उतारती हैं। माता सुमित्रा तथा कैकेयी भी अनेक प्रकारसे उन्हें प्यार करती और सुखका अनुभव करतीं हैं। मधु, मेवे, पकवान तथा मिठाइयाँ अपने हाथों उन्हें खिलाती हैं। फिर माताने चारों भाइयोंको थका हुआ समझकर शयन करा दिया। माता कुछ मधुर स्वरसे गाती हुई अपनी सुध-बुध भूलकर चरण दबाने लगीं। श्रीरामको निद्रा आ गयी, उनकी दिनकी थकावट दूर हो गयी और विश्राम प्राप्त हुआ। प्रातःकाल होनेपर जब वे रोने लगे, तब दौड़कर माताने गले से लगा लिया।

विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षा

[२०३]

बिस्वामित्र बड़े मुनि कहियत, यज्ञ करत निज धाम।
मारिच और सुबाहु महासुर, बिघन करत दिन-जाम॥
परब्रह्म-अवतार जानि कै, आए नृप के पास।
दसरथ राय बहुत पूजा-बिधि, किए प्रसन्न हुलास॥

भोजन कर जबहीं जु बिराजे, तब भाष्यौ मुनिराय।
यज्ञ सफल कीजै मेरौ, अब दीजै राम पठाय॥
तब नृप कह्यौ राम हैं बालक, मोकौं आज्ञा कीजै।
तब दुज कह्यौ राम परमेस्वर, बचन मान यह लीजै॥
गुरु बसिष्ठ सब बिधि समुझाए, राम-लछन सँग दीन्हे।
मारग मैं अहल्या उद्धारी, नावक निज पद छीने॥
बिस्वामित्र सिखाई बहु बिधि, बिद्या धनुष प्रकार।
मारग मैं ताड़का जु आई, धाई बदन पसार॥
छिन मैं राम तुरत सो मारी, नैंकु न लागी बार।
दीनी मुक्ति जानि निज महिमा, आए ऋषि के द्वार॥
कीन्हे बिप्र-जज्ञ परिपूरन, असुर बिघन कौं आए।
अगनि-बान कर दहन कियौ है, एक समुद्र पठाए॥

विश्वामित्रजी बड़े (प्रसिद्ध) मुनि कहे जाते हैं, वे अपने आश्रममें यज्ञ किया करते थे; किंतु महान् (बलवान्) राक्षस मारीच और सुबाहु उसमें रात-दिन विघ्न करते थे। परब्रह्म परमात्माका अवतार हो गया, यह समझकर वे मुनि महाराज दशरथके पास आये। महाराज दशरथने अत्यन्त प्रसन्नता और उल्लाससे बहुत प्रकारसे उनकी पूजा की। जब मुनिराज भोजन करके (आसनपर) बैठ गये, तब बोले—'आप श्रीरामको मेरे साथ भेजकर अब मेरे यज्ञको सफल कर दें।' तब महाराजने कहा—'श्रीराम तो अभी बालक हैं, आप (यह कार्य करनेकी) मुझे आज्ञा दें।' इसपर मुनिने कहा—'आप मेरी यह बात मान लें कि श्रीराम साक्षात् परमेश्वर हैं।' कुलगुरु महर्षि वसिष्ठने (भी महाराजको) बहुत प्रकारसे समझाया, तब उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणको साथ कर दिया। मार्गमें श्रीरामने अपने चरणरूपी (भवसागरकी) नौकाका स्पर्श कराकर अहल्याका उद्धार किया। महर्षि विश्वामित्रने अनेक प्रकारकी धनुर्विद्याकी शिक्षा दी। मार्गमें ही मुख फैलाकर दौड़ती हुई ताड़का राक्षसी

आयी; किंतु श्रीरामने उसे एक ही क्षणमें मार दिया, उन्हें थोड़ी भी देर नहीं लगी। अपने माहात्म्यको समझकर उसे (प्रभुने) मोक्ष-प्रदान किया और महर्षिके आश्रमपर आये। वहाँ विप्रोंके यज्ञको परिपूर्ण किया; उस यज्ञमें विघ्न करने जो राक्षस आये, उनमेंसे एक (मारीच) को (बाण मारकर) समुद्रके पास भेज (फेंक) दिया और शेषको अग्निबाणसे भस्म कर दिया।

सीता स्वयंवर

[२०४]

जनक बिदेह कियौ जु स्वयंबर, बहु नृप-बिप्र बुलाए।
तोरन धनुष देव त्र्यंबक कौ, काहू जतन न पाए॥
बिस्वामित्र मुनि बेगि बुलाए, सकल सिष्य लै संग।
राम-लखन सँग लिए आपने, चले प्रेम-रस रंग॥
जहँ-तहँ उझकि झरोखा झाँकत, जनक-नगर की नार।
चितवनि कृपा राम अवलोकत, दीन्हौ सुख जो अपार॥
कियौ सनमान बिदेह नृपति ने उपबन बासौ कीन्हौ।
देखन राम चले तिहि पुर कौं, सुख सबहिन कौं दीन्हौ॥
सब पुर देखि, धनुष-पुर देख्यौ, देखे महल सुरंग।
अद्भुत नगर बिदेह बिलोकत, सुख पायौ सब अंग॥
कहत नारि सब जनक-नगर की, बिधि सौं गोद पसार।
सीताजू कौं बर यह चहियै, है जोरी सुकुमार॥
अपने धाम फिर तब दोउ आए, जान भई कछु साँझ।
कर दंडवत, परसि पद ऋषि के, बैठे उपबन माँझ॥
संध्या भई कृत्य नित करिकै कीन्ही ऋषि परनाम।
पौढ़े जाय चरन-सेवा दुज, कर कै अति बिसराम॥
ब्रह्म-मुहूरत भयौ सबेरौ, जागे दोऊ भाई।
कर परनाम देव-गुरु-दुज कौं, जल सौं स्नान कराई॥

आए भूप देस-देसन के, जुरी सभा अति भारी।
तहाँ बुलाए सकल दुजन कौं, जनक-सभा मंझारी॥
कौसिक मुनि तहँ छबि सौं पधारे, लिए सिष्य सँग सात।
चले नित्य आह्निक सब कर दुज, उर आनँद न समात॥
दोनौं भ्रात संग मैं लीन्हे, आए राज-दुवार।
जहँ बैठे सब भूप ओप सों, बाढ्यौ गरब अपार॥
अपने-अपने भुज-बल तोलत, तोरन धनुष पुरार।
कछु नहिं चलत खिसाय गए सब, रहे बहुत पचि हार॥
सीता कहत सहेलिन सौं पुनि, यही कहत रघुनंद।
तब उन कह्यौ सकल सुखसागर, सो ये परमानंद॥
बार-बार जिय सोच करत है, बिधि सौं बचन उचारी।
मन-क्रम-वचन यहै बर दीजौ, माँगत गोद पसारी॥
एक बार सुर देवी पूजत, भयौ दरस सखि! मोहि।
ता दिन तैं छिन कल न परत है, सत्य कहत हौं तोहिं॥
सब नृप पचे, धनुष नहिं टूट्यौ, तब बिदेह दुख पायौ।
क्रोध बचन करि सब सैं बोले, छत्री कोउ न रहायौ॥
यह सुनि लछिमन भए क्रोध-जुत, विषम बचन यौं बोले।
सूरजबंस नृपति भूतल पर, जाके बल बिन तोले॥
कितिक बात यह धनुष रुद्र कौ, सकल बिस्व कर लैहौं।
आज्ञा पाय देव रघुपति की, छिनक माँझ हठ गैहौं॥
सब के मन कौ देख अँदेसौ, सीता आरत जानी।
रामचंद्र तबहीं अकुलाने, लीन्हौ सारंग पानी॥
छिन मैं कर लै कै जु चढ़ायौ, देखत ही सब भूप।
डारयौ तोर अघात शब्द भयौ, जैसैं काल कौ रूप॥
सब ही दिसा भई अति आतुर, परसुराम सुनि पायौ।
परसु सम्हार सिष्य सँग लैकै, छिन ही मैं तहँ आयौ॥
जैजैकार भयौ जगती पर, जनकराज अति हरषे।
सुर बिमान सब कौतुक भूले, जै-धुनि सुमनन बरषे॥

विदेह महाराज जनकने (अपनी पुत्री श्रीजानकीजीका) स्वयंवर किया था और (उसके लिये) बहुत-से राजाओं तथा ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया था; लेकिन कोई भी किसी उपायसे देवदेवेश श्रीशंकरजीका धनुष तोड़ नहीं सका। (महाराजने) अपने समस्त शिष्योंको साथ लेकर शीघ्र आनेके लिये महर्षि विश्वामित्रको (भी) आमन्त्रित किया। अनुरागके रङ्गमें निमग्न महर्षि श्रीराम-लक्ष्मणको अपने साथ लेकर चल पड़े। (जनकपुर पहुँचनेपर) जनकपुरीकी नारियाँ स्थान-स्थानपर खिड़कियोंसे झुक-झुककर श्रीरामको देखने लगीं। कृपापूर्वक उनकी ओर देखकर श्रीरामने भी उन्हें अपार आनन्द दिया। महाराज जनकने सबका सम्मान किया और उन्हें उपवनमें ठहराया। (वहाँसे) श्रीराम नगरको देखने गये और सभी (नगरवासियों) को आनन्दित किया। पूरा नगर देखकर धनुष-यज्ञका मण्डप देखा तथा सुन्दर रंगके राजभवन देखे। महाराज जनकके अद्‌भुत नगरको देखकर श्रीरामने सभी अङ्गोंसे (भली प्रकार) सुख पाया। जनकपुरीकी सभी नारियाँ ब्रह्मासे अञ्चल फैलाकर कहने (प्रार्थना करने) लगीं—'श्रीसीताजीको यही वर मिलना चाहिये। ये सुकुमार ही उनकी योग्य जोड़ी हैं।' फिर दोनों भाई कुछ संध्या हुई समझकर अपने निवास स्थानपर लौट आये। वहाँ महर्षिको दण्डवत् प्रणाम करके उनके चरण छूकर (मुनियोंकी) सभामें बैठ गये। संध्या हो जानेपर नित्यकर्म करके फिर महर्षिको प्रणाम किया; फिर मुनिकी चरण सेवा (चरण दबानेकी सेवा) करके तब जाकर सोये और सुखपूर्वक विश्राम किया। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त होते ही दोनों भाई जाग गये। देवताओं, गुरु विश्वामित्र तथा (साथके) ब्राह्मणों (मुनियों) को प्रणाम करके स्वच्छ जलमें उन्होंने स्नान किया। (उधर) देश-देशके राजा आये हुए थे। स्वयंवर-सभामें भारी भीड़ एकत्र हो गयी थी। महाराज जनकने वहाँ सभामें आनेके लिये सभी ब्राह्मणोंको आमन्त्रित किया। अपने साथ सात शिष्योंको लेकर महर्षि विश्वामित्र भी बड़ी शोभाके साथ वहाँ आये। सभी ब्राह्मण दैनिक पूजनादि कर्म करके वहाँ

आये, उनके हृदयमें आनन्द समाता नहीं था। (महर्षि विश्वामित्र) दोनो भाइयों (श्रीराम-लक्ष्मण) को साथ लिये उस राजसभामें आये, जहाँ अपार गर्वसे गर्विष्ठ हुए सब नरेश बड़ी छटासे बैठे थे। वे सभी शंकरजीका धनुष तोड़नेके लिये अपनी-अपनी भुजाओंका बल आजमा रहे थे; किंतु बहुत श्रम करके थक गये, उनकी एक भी चली नहीं, इससे खीझकर लौट गये। श्रीजानकीजी (उसी समय) सखियोंसे पूछने लगीं—'ये ही श्रीरघुनाथ कहे जाते हैं?' तब उन सखियोंने कहा—'ये समस्त सुखोंके सागर परमानन्दस्वरूप हैं।' बार-बार वे (श्रीजानकी) हृदयमें चिन्ता करने लगीं। ब्रह्मा (भाग्य-विधाता) से प्रार्थना करने लगीं—'मैं अञ्चल फैलाकर माँगती हूँ कि मन, वाणी, कर्म—(सभी प्रकार सच्चे भाव) से यही पति आप मुझे दें।' (फिर सखियोंसे बोलीं—) 'सखी! तुमसे सच कहती हूँ, एक बार देवताओं तथा देवीका पूजन करते समय मुझे इनका दर्शन हुआ, उसी समयसे एक क्षणके लिये भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही है।' सब नरेश चेष्टा करके थक गये, (फिर भी) धनुष नहीं टूटा, तब महाराज जनकको बड़ा दुःख हुआ; वे क्रोधपूर्वक सबसे बोले—'अब कोई क्षत्रिय (संसारमें) रहा ही नहीं।' यह सुनते ही लक्ष्मणजी क्रोधित हो गये और यह कठोर वाणी बोले—'महाराज! इस पृथ्वीपर ही सूर्यवंश भी है, जिसके बलकी कोई तुलना ही नहीं है। यदि श्रीरघुनाथजीकी आज्ञा पा जाऊँ तो यह शंकरजीका धनुष तो किस गणनामें है; मैं एक क्षणमें बलपूर्वक पूरे विश्वको हाथमें उठा लूँगा।' सबके मनका संदेह समझकर तथा श्रीसीताजीको आर्त (व्याकुल) समझकर श्रीरामचन्द्र उसी समय उठे और शीघ्रतासे धनुषको हाथमें उठा लिया, समस्त नरेशोंके देखते-देखते हाथमें धनुष लेकर (डोरी) चढ़ा दी और (खींचकर) उसे तोड़ दिया। उसके टूटनेका शब्द इतना भयंकर हुआ मानो महाकालकी गर्जना हो। उससे सम्पूर्ण दिशाएँ अत्यन्त आकुल हो गयीं। उस शब्दको परशुरामजीने भी सुना, इससे (अपना) परशु (फरसा) सम्हाले शिष्योंको साथ लेकर (योगबलसे)

क्षणभरमें वहाँ आ गये। संसारमें (सब कहीं) जय-जयकार होने लगा। महाराज जनकको बड़ा हर्ष हुआ। विमानोंपर बैठे देवता सब कुतूहल (आकाश-विहार) भूल गये और 'जय हो, जय हो ?' कहते हुए पुष्पोंकी वर्षा करने लगे।

चारों भाइयोंका विवाह

[२०५]

जनकराज तब बिप्र पठाए, बेग बरात बुलाई।
दसरथ राज बाजि-गज लैकै, सबहीं सौंज-तुराई॥
चली बरात बिपुल धन लैकै, जुरे मनुज नहिं पार।
सोभा-सिंधु कहत नहिं आवै, बरनन करत उचार॥
गुरु बसिष्ठ मुनि लगन दियौ सुभ, सुभ नछत्र, सुभ बार।
आए जान नृपति सनमाने, कीन्हीं अति मनुहार॥
ब्याह-केलि सुख बरनन कीन्हौ, मुनि बाल्मीकि अपार।
सो सुख 'सूर' कह्यौ वो कीरति, जगत करी बिस्तार॥
बेद-सास्त्र मथ करी ब्याह-बिधि, सोइ कीन्हीं नृपराय।
राम-लखन अरु भरत-सत्रुहन, चारौं दिए बिबाह॥
होम, हवन, दुज-पूजा, गनपति, सूरज, सक्र, महेस।
दीन्हौ दान बहुत बिप्रन कौं, राजा मिथिल-नरेश॥
उतसव भयौ परम आनँद कौ, बहुत दायजौ दीन्हौ।
भए बिदा दसरथ नृप नृप सौं, गमन अवधपुर कीन्हौ॥

महाराज जनकने तब (अयोध्या) ब्राह्मण भेजे और शीघ्र बारात लानेका आमन्त्रण दिया। महाराज दशरथ शीघ्रतापूर्वक घोड़े, हाथी तथा सभी साज-सामान लेकर, अपार सम्पत्तिके साथ बारात सजाकर चले। (बारातमें) इतने मनुष्य एकत्र हुए कि उनका कोई पार नहीं। उस शोभाके समुद्रका वर्णन वाणीके द्वारा हो ही नहीं सकता। कुलगुरु वसिष्ठजीने शुभ नक्षत्र तथा शुभ दिन देखकर शुभ लग्न निश्चित

किया। महाराज दशरथको आया देखकर जनकजीने उनका आदर किया तथा अनेक प्रकारसे स्वागत-सत्कार किया। श्रीवाल्मीकि मुनिने इस व्याह क्रीडाके अपार आनन्दका वर्णन किया है। सूरदास उसी आनन्दका वर्णन करते हैं—वह (श्रीरामकी) कीर्ति तो संसारमें स्वतः फैली हुई है। वेद और शास्त्रोंका मन्थन करके (ऋषियोंने) जो विवाह-पद्धति निश्चित की है, महाराज जनकने उसी विधिका पालन किया। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चारों कुमारोंका विवाह कर दिया। श्रीमिथिला-नरेशने यज्ञ, हवन, ब्राह्मणपूजन, गणपति, सूर्य, इन्द्र तथा शंकर आदि देवताओंका पूजन करके ब्राह्मणोंको बहुत अधिक दान दिया। यह परम आनन्ददायी महोत्सव हुआ, तथा (जनकजीने) बहुत दहेज दिया। तब महाराज दशरथने महाराज जनकसे विदा लेकर अयोध्याके लिये प्रस्थान किया।

परशुराम-समाधान

[२०६]

भृगुपति आए जानि जब रघुपति, मिले धाय सिर नाय।
दसरथ राय विनय बहु कीनी, जिय मैं अति डरपाय॥
तब मुनि कह्यौ धनुष क्यौं तोरेउ, रुद्र परम गुरु मेरे।
रामचंद्र पूरन पुरुषोत्तम, नैक नयन जब हेरे॥
लीन्हौ अंस खैंचि भृगुपति कौ, अपने रूप समायौ।
करौ जाय तप सैल महेंद्र पर, सुनि मुनिबर सिर नायौ॥

(मार्गमें) परशुरामजीको आया जानकर श्रीरघुनाथजी दौड़कर उनसे मिले और मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। महाराज दशरथने हृदयमें बहुत डरते हुए अनेक प्रकारसे प्रार्थना की। तब परशुरामजीने कहा—"भगवान् शंकर तो मेरे परम गुरु हैं, (तुमने उनका) धनुष क्यों तोड़ा ?' (यह सुनकर) पूर्ण-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने तनिक आँखोंकी कोरसे देखकर परशुरामजीका (भगवदीय) अंश खींचकर अपने स्वरूपमें लीन कर लिया।

(और बोले—) 'अब आप जाकर महेन्द्र पर्वतपर तपस्या करें।' यह सुनकर मुनि परशुरामजीने (आज्ञा स्वीकार करते हुए) मस्तक झुका दिया।

अयोध्या-आगमन

[२०७]

अति आनंद अयोध्या आए, कियौ नगर-सृंगार।
कदली खंभ, चौक मोतिन के, बाँधी बंदनवार॥
कियौ प्रबेस राजभवनन मैं, रामचंद्र सुखरास।
अद्भुत भवन बिराजत रतनन, सूरज कोटि प्रकास॥
द्वादस बरष बिराजे वा थल, फिर भू-भार हरौ।
कैकइ-बचन प्रमान किये नृप, तब यह काज करौ॥

(महाराज दशरथ) अत्यन्त आनन्दपूर्वक अयोध्या आ गये। नगर खूब सजाया गया था। (स्थान-स्थानपर) केलेके खंभे लगे थे, मोतियोंसे चौक बनाये गये थे, बन्दनवार बँधी थी। सुखराशि श्रीरामचन्द्रजीने (सजे हुए नगरमें आकर) राजभवनमें प्रवेश किया। वह अद्भुत राजभवन रत्नोंकी जगमगाहटसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान होता शोभा दे रहा था। बारह वर्ष (प्रभु) वहाँ विराजमान रहे। फिर जब महाराज दशरथने रानी कैकेयीके वचन (वरदान) को प्रमाणित किया (माना), तब पृथ्वीके भारको दूर करनेका कार्य श्रीरामने किया।

वनवास-लीला

[२०८]

बचन समझ नृप आज्ञा कीन्ही, दैव उपाय करौ।
रामचंद्र पितु-आज्ञा मानी, जिय मैं बचन धरौ॥
यह भू-भार उतारन रघुपति, बहुत ऋषिन सुख दैन।
बनोबास कौं चले सिया सँग, सुख-निधि राजिव-नैन॥

मारग मैं हरि कृपा करी है, परम भक्त इक जान।
तहँ तैं गए जु चित्रकूट कौं, जहाँ मुनिन की थान॥
बालमीकि मुनि बसत निरंतर, राम-मंत्र उच्चार।
ताकौ फल यह आज भयौ मोहि, दरसन दियौ कुमार॥
पूजा करि पधराय भवन मैं, रामचंद्र परनाम।
कियौ बिबिध बिधि पूजा करि कै, ऋषि-चरनन सिर नाम॥
बहुत दिवस लौं बसे जगत-गुरु, चित्रकूट निज धाम।
किए सनाथ बहुत मुनि-कुल कौं, बहु बिधि पूरे काम॥
भरत जान जिय मैं रघुपति कौ दुःसह परम बियोग।
आए धाम संग सब लैकै, पुरबासी, गृह-लोग॥
बिन दसरथ सब चले तुरत ही कोसलपुर के बासी।
आए, रामचंद्र-मुख देख्यौ, सब की मिटी उदासी॥
रामचंद्र पुनि सब जन देखे, पिता न देखन पाए।
पूछी बात, कह्यौ तब काहू, मन बहु बिधि बिलखाए॥
बेद-रीति करि रघुपति सब बिधि, मरजादा अनुसार।
बहुत भाँति सब बिधि समुझाए, भरत करी मनुहार॥
गुरु बसिष्ठ मुनि कह्यौ भरत सौं राम ब्रह्म-अवतार।
बन मैं जाय बहुत मुनि तारैं, दूर करैं भुव-भार॥
पुनि निज बिस्वरूप जो अपुनो, सो हरि जाय दिखायौ।
आज्ञा पाय चले निज पुर कौं, प्रभुहि गीत समुझायौ॥
कछु दिन बसे जु चित्रकूट मैं, रामचंद्र सह भ्रात।
तहाँ तैं चले दंडकाबन कौं, सुखनिधि साँवलगात॥
मारग मैं बहु मुनि-जन तारे, अरु बिराध रिपु मारे।
बंदन कर सरभंग महामुनि, अपने दोष निवारे॥
दरसन दियौ सुतीच्छन गौतम, पंचवटी पग धार।
तहाँ दुष्ट सूर्पनखा नारी, करि बिन नाक उधार॥
यह सुनि असुर प्रबल दल आए, छिन मैं राम संहारे।
कीन्हे काज सकल सुर-मुनि के, भुव के भार उतारे॥

मुनि अगस्त्य आस्रम जु गए हरि, बहु बिधि पूजा कीन्हो।
दिव्य बसन दीने जब मुनि नैं, फिर यह आज्ञा दीन्ही॥
दसकंधर कौं बेगि सँहारौ, दूरि करौ भुव-भार।
लोपामुद्रा दिव्य बस्त्र लै, दीने जनक-कुमारि॥
सूर्पनखा जब जाय पुकारी, नाक-कान लै हात।
रावन क्रोध कियौ अति भारी, अधर फरक अति गात॥
गयो मारीच आस्रमहिं तबहीं, वानैं बहु समझायौ।
तब मारीच कह्यो दसकंधर, बिनती बहुत करायौ॥
रामचंद्र अवतार कहत हैं, सुनि नारद मुनि पास।
प्रगट भए निसिचर मारन कौं, सुनि वो भयौ उदास॥
कर गहि खडग, तोर बध करिहौं, सुनि मारिच डर मान्यौ।
रामचंद्र के हाथ मरूँगौं, परम पुरुष-फल जान्यौ॥

देवताओंने उपाय किया (कैकेयीकी बुद्धिमें भ्रम उत्पन्न करके श्रीरामके लिये वनवासका वरदान मँगवाया)। महाराज दशरथने भी अपने दिये हुए वचनोंका ध्यान करके आज्ञा दे दी। श्रीरामचन्द्रजीने हृदयसे पिताके वचनोंको स्वीकार करके उनकी आज्ञाका पालन किया और वे सुखनिधान कमललोचन श्रीरघुनाथ बहुत-से ऋषियोंको आनन्द देनेके लिये एवं पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये श्रीजानकीजीके साथ वनमें निवास करने चल पड़े। मार्गमें एक परमभक्त (केवट) को पहचानकर उसपर प्रभुने कृपा की और फिर वहाँसे चित्रकूट गये; जहाँ मुनियोंका समुदाय निवास करता था। वहाँ निरन्तर श्रीराममन्त्रका जप करते हुए मुनि वाल्मीकि रहते थे। उन्होंने यह माना कि 'उस निरंतर जपका ही यह फल मुझे आज मिला है कि राजकुमार श्रीराम-लक्ष्मणने मुझे दर्शन दिया।' श्रीरामचन्द्रजीको अपने आश्रममें ले जाकर उन्होंने पूजा की और अभिवादन किया। श्रीरघुनाथजीने भी अनेक प्रकारसे

ऋषिकी पूजा (सत्कार)की और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। वे जगद्गुरु श्रीरघुनाथ अपने निजधाम चित्रकूटमें बहुत दिनोंतक रहे। मुनिकुलोंको उन्होंने सनाथ किया। (श्रीरामको पाकर) उन (मुनियों)की इच्छाएँ सब प्रकार पूर्ण हो गयीं। श्रीभरतजी रघुनाथजी-का वियोग परम दुःसह समझकर (ननिहालसे) अयोध्या आये और वहाँसे महाराज दशरथके बिना (क्योंकि महाराज देहत्याग कर चुके थे) सभी अयोध्यानगरके निवासी नागरिकों एवं अपने परिवारके लोगोंको साथ लेकर तुरंत ही (चित्रकूटके लिये) चल पड़े। सब लोग चित्रकूट आ गये और वहाँ श्रीरामके श्रीमुखका दर्शन करके सबकी उदासी दूर हो गयी। श्रीरामचन्द्रजीने सब लोगोंको तो देखा, किंतु पिताके दर्शन नहीं हुए, इसका कारण उन्होंने पूछा। तब किसीने (महाराज दशरथके परलोकगमनका) संवाद कहा, इससे (प्रभु) मनसे बहुत ही दुखी हुए और अनेक प्रकारसे विलाप करने लगे। श्रीरघुनाथजीने मर्यादाके अनुसार (पिताके) लिये) सब वैदिक रीतिको पूर्ण किया। श्रीभरतजीने अनेक भाँतिसे सब प्रकार समझाया तथा (अयोध्या लौटनेके लिये) अनुनय-विनय की (किंतु श्रीराम अपने व्रतपर दृढ़ रहे)। कुलगुरु महर्षि वशिष्ठजीने भरतजीसे कहा—'श्रीराम तो साक्षात् परब्रह्म हैं। इन्होंने (भू-भार-हरणके लिये) अवतार धारण किया है। अतः ये वनमें निवास करते हुए बहुत-से मुनियोंका उद्धार करेंगे तथा पृथ्वीका भार दूर करेंगे।' फिर श्रीरामने अपना जो विश्वरूप है, उसका सबको दर्शन कराया तथा सबको प्रभुने गीता (तत्त्वज्ञान) का उपदेश देकर समझाया। इससे उनकी आज्ञा पाकर सब लोग अयोध्या लौट आये। श्रीरघुनाथजी भाई (लक्ष्मण) के साथ कुछ दिन चित्रकूटमें रहे। फिर वे सुखनिधान श्यामशरीर वहाँसे दण्डकवनको चल पड़े। मार्गमें बहुत-से मुनिगणोंका उन्होंने उद्धार किया तथा शत्रुता करनेवाले विराध राक्षसको मारा। महामुनि शरभंगने उनकी वन्दना करके अपने सभी दोषोंको नष्ट कर दिया (और श्रीरामका दर्शन करते हुए देह त्यागकर परमपदको प्राप्त हुए)।

प्रभुने मार्गमें गौतमगोत्रीय सुतीक्ष्णमुनिको दर्शन दिया और फिर पञ्चवटी पधारे। वहाँपर शूर्पणखा नामक दुष्टा राक्षसी स्त्रीको बिना नाककी करके (नाक काटकर) उसका उद्धार किया (उसकी पाप-प्रवृत्तिको दूर किया)। यह समाचार पाकर (खर-दूषणादि) राक्षसोंके प्रबल दल (युद्ध करने) आये; किंतु श्रीरामने क्षणभरमें उनका संहार कर दिया। इस प्रकार देवताओं तथा मुनियोंके सब कार्य पूरे किये और पृथ्वीका भार दूर किया। वहाँसे जब श्रीराम महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर गये, तब उन्होंने बहुत प्रकारसे सत्कार किया, दिव्य वस्त्र भेंट किया और यह आज्ञा दी—'आप शीघ्र रावणका संहार करके पृथ्वीका भार दूर कर दें।' (ऋषिपत्नी) लोपामुद्राजीने दिव्य वस्त्र लाकर श्रीजनकनन्दिनी-जीको दिया। जब शूर्पणखाने हाथमें अपने कटे नाक-कान लेकर (लङ्कामें) जाकर पुकार की, तब रावणको बहुत अधिक क्रोध आया। उसके होठ फड़कने लगे, शरीर काँपने लगा। वह मारीचके आश्रमपर गया और उसे अनेक प्रकारसे (सीताहरणमें सहायक होनेके लिये) समझाने लगा। तब मारीचने रावणकी बहुत प्रार्थना की और कहा— 'श्रीरामचन्द्रजी अवतार कहे जाते हैं। देवर्षि नारदसे मैंने यह बात सुनी है। राक्षसोंका संहार करनेके लिये ही वे (पृथ्वीपर) प्रकट हुए हैं।' यह सुनकर वह (रावण) उदास हो गया (और बोला—) 'मैं हाथमें तलवार लेकर (स्वयं) तेरा वध करूँगा।' यह सुनकर मारीच भयभीत हो गया, उसने इसीको परम पुरुषार्थ समझा कि (इस दुष्ट रावणके हाथों मरनेके बदले) 'मैं श्रीरामके हाथों मरूँगा।'

सीता-हरण

(२०९)

कपट कुरंग-रूप धरि आयौ, सीता बिनती कीन्ही।
रामचंद्र कर सायक लैकै, मारन की बिधि कीन्ही॥
मारयौ धनुष-बान लै ताकौं, लछिमन नाम पुकारयौ।
लछिमन नामसुनततहँ आयौ,अवसर दुष्ट बिचारयौ॥

धरि कै कपट बेस भिक्षुक कौ, दसकंधर तहँ आय।
हरि लीन्ही छिन मैं माया करि, अपनें रथ बैठाय॥
चल्यौ भाजि गोमायु-जंतु ज्यौं, लै केहरि कौ भाग।
इतनें रामचंद्र तहँ आये, परम पुरुष बड़ भाग॥
जब माया-सीता नहिं देखी, जिय मैं भए उदास।
पूछन लगे राम द्रुमगन सौं, बहुत बढ़ी दुख-रास॥
मारग मैं जटायु खग देख्यौ, बिकल भयौ तन-हीन।
बिनती करि राम! मैं तासौं, बहुत लड़ाई कीन॥
जब तन तज्यौ गृद्धरघुपतितब, बहुतकरम-बिधिकीनो।
जान्यौ सखा राय दसरथकौ, अपनो निज गति दीनो॥
मारग मैंकबंध रिपु मार्‌यौ, सुरपति-काज सँवार्‌यौ।
पंपापुर हरि तुरत पधारे, जल कौ दोष निवार्‌यौ॥

(मारीच) कपटसे हरिणका रूप बनाकर (पञ्चवटी) आया। श्रीजानकीजीने (उसे मारनेको) प्रार्थना की, इससे श्रीरघुनाथजीने बाण लेकर उसको मारनेकी तैयारी कर ली। धनुषपर बाण चढ़ाकर जब उसे मारा, तब (मरते समय) उसने लक्ष्मणका नाम लेकर पुकार की। अपना नाम सुनकर लक्ष्मणजी वहाँ आ गये। दुष्ट रावणने यही सुअवसर समझा और छलसे भिखारीका वेष बनाकर (श्रीरामकी) पर्णकुटीके पास आ गया। एक क्षणमें माया करके उसने श्रीजानकीजीका हरण कर लिया और उन्हें अपने रथपर बैठाकर इस प्रकार भागा, जैसे सिंहके भागका शिकार लेकर शृगाल भागे। बड़भागी परमपुरुष श्रीरामचन्द्रजी इतनेमें ही (शीघ्र ही) वहाँ (पर्णकुटीके पास) आ गये। जब माया-सीता वहाँ नहीं दिखायी पड़ीं (वास्तविक सीता तो पहले ही अग्निमें छिपा दी थी), तब मनमें बहुत उदास हुए। श्रीरामका दुःखसमूह अत्यन्त बढ़ गया, (व्याकुल होकर) वे वृक्षसमूहोंसे (श्रीजानकीका) पता पूछने लगे। मार्गमें जटायु पक्षी (गीध) को उन्होंने देखा, जो पंख कटनेसे अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। उसने प्रार्थना की—'श्रीराम!

मैंने उस राक्षससे बहुत लड़ाई की।' जब गीधने शरीर त्याग दिया, तब उसे महाराज दशरथका मित्र समझकर श्रीरघुनाथजीने स्वयं (भली प्रकारसे) विधिपूर्वक उसका अन्तिम संस्कार किया और अपने निजधाम (वैकुण्ठ) भेज दिया। (वहाँसे आगे चलकर) मार्गमें शत्रु कबन्धको मारकर श्रीरामने देवराज इन्द्रका कार्य पूरा कर दिया, फिर शीघ्र ही पम्पासरोवर पहुँचे और उसके जलका दोष दूर किया।

सीताकी खोज

[२१०]

सबरी परम भक्त रघुपति की, बहुत दिनन की दासी।
ताके फल आरोगे रघुपति, पूरन भक्ति प्रकासी॥
दीन मुक्ति निज पुर की ताकौं, तब रघुपति चले आगे।
सीता-सीता बिलपत डोलत, परम बिरह सौं पागे॥
रबिनंदन जब मिले राम कौं, अरु भेंटे हनुमान।
अपनी बात कही उन हरि सौं, बालि बड़ौ बलवान॥
सप्तताल-बेधन हरि कीन्हौ, बालि छिनक मैं तारौ।
दीन्हौ राज राम रबिनंदन, सब बिधि काम सँवारौ॥
सप्तदीप के कपि-दल आए, जुरी सैन अति भारी।
सीता की सुधि लैन चले कपि ढूँढ़त बिपिन मँझारी॥
जलनिधि तीर गए सब कपि मिलि, सुनि संपति की बानी।
लंक बसत सीता रिपुबन मैं, सब बानर यह जानी॥
राम-चरन करि सुमिरन मन मैं, चले पवन-सुत धाय।
राम-प्रताप बिघन सब मेंटे, पैठि नगर सुख पाय॥
धरि लघु रूप प्रवेस कियौ कपि, लंका-नगर मँझार।
राम-भक्त निज जान बिभीषन, भेंटे हरि अँकवार॥

तब वानैं सब भेद बतायौ, देखी कपि सब लंका।
राम-चरन धरि हृदय मुदित मन, बिचरत फिरत निसंका॥
जाय असोक-बाटिका देखी, दरसन सीता कीन्ह।
कर दंडवत बहुत बिनती कर, राम-मुद्रिका दीन्ह॥
सब संदस कह्यौ कपि सिय प्रति, सुनि हिय मैं धरि राख्यौ।
राम-सँदेस कहेउ तब सीता, जो बूझौ सो भाख्यौ॥
लागी भूख, चले उपबन मैं, नाना बिधि फल खायौ।
बिटप उखारि, उजारि बिपिन कौं सबहिन कौं दरसायौ॥
सुनि पुकार निसिचर बहु आए, कूदि सबन सँहारे।
इंद्रजीत बलनिधि जब आयौ, ब्रह्म-अस्त्र उन डारे॥
तासौं बँधे, दसानन देखन चले पवन-सुत धीर।
रावन बहुत ज्ञान समझायौ, कथ-कथ कथा गँभीर॥
चले छुड़ाय छिनक मैं तबहीं, जार दई सब लंक।
कूदि चले गज-बन कौं ज करि, ज्यौं मृगराज निसंक॥
आए तीर समुद्र, मिले कपि, मिले आय जहँ राम।
सुनि-सुनि कथा स्रवन सीता की पुलकित अति अभिराम॥

(पम्पासरोवरके पास) श्रीरघुनाथजीकी बहुत दिनोंकी सेविका परम भक्ता शबरी रहती थीं। श्रीरघुनाथजीने उनके दिये फलोंको आरोगा (भोजन किया) और उन्हें परम भक्तिका उपदेश करके अपने लोकमें निवासरूपी (सालोक्य-) मुक्ति प्रदान की। वहाँसे श्रीराम आगे चले, वे दारुण वियोगमें निमग्न 'हा सीते! हा सीते!' कहते घूम रहे थे। जब सूर्यपुत्र सुग्रीव श्रीरामसे मिले और हनुमान्‌जीसे भेंट हुई, तब प्रभुसे सुग्रीवने अपनी बात कही (अपनी दशा निवेदित की) कि वाली बहुत बलवान् है (उसके भयसे ही मैं यहाँ रहता हूँ)। प्रभुने सात तालके वृक्षोंको विद्ध किया और एक क्षणमें वालीको मारकर उसका उद्धार कर दिया। श्रीरामने सुग्रीवको (किष्किन्धाका)

राज्य देकर सब प्रकारसे उनका काम बना दिया। सातों द्वीपोंके वानरोंके दल वहाँ आये, उनकी बड़ी भारी सेना एकत्र हुई। वे वानर श्रीजानकीजीका पता लगाने चल पड़े और वनोंमें ढूँढ़ने लगे। (अन्तमें) सब वानर समुद्रके किनारे पहुँचे। वहाँ सम्पाती (गीध) की बात सुनकर वानरोंको यह पता लगा कि लङ्कामें शत्रु (रावण) के उपवनमें श्रीजानकीजी रहती हैं। श्रीहनुमान्‌जी श्रीरघुनाथजीके चरणोंका स्मरण करके (लङ्काको) दौड़ पड़े। श्रीरामजीके प्रतापसे उनके (मार्गमें आनेवाले) सब विघ्न मिट गये और वे लङ्का पहुँचकर सुखी हुए। उन कपिश्रेष्ठने छोटा रूप धारण करके लङ्का-नगरीमें प्रवेश किया। वहाँ विभीषणने उन्हें श्रीरामका निज भक्त समझकर भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगाया। उस समय विभीषणने सब रहस्य बता दिया। हनुमान्‌जीने पूरी लङ्का-नगरी देखी, श्रीरघुनाथजीके चरणोंको हृदयमें धारण करके प्रसन्नचित्त वे निःशङ्क घूमते फिरते थे। (इस प्रकार घूमते हुए) जाकर उन्होंने अशोक-वाटिका देखी और वहाँ श्रीसीता-जीका दर्शन किया। दण्डवत् प्रणाम करके, अनेक प्रकारसे प्रार्थना की और श्रीरामचन्द्रजीकी अँगूठी उनको दिया। श्रीहनुमान्‌जीने श्रीजानकीजीसे सब समाचार कहा, उसे सुनकर उन्होंने मनमें रख लिया और श्रीजानकीजीने जो कुछ श्रीरघुनाथजीका समाचार पूछा— वह सब हनुमान्‌जीने बताया। उन्हें भूख लग गयी थी, इससे उपवनमें जाकर उन्होंने अनेक प्रकारके फल खाये तथा सभी राक्षसोंको दिखला-कर वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर उपवनको उजाड़ दिया। उनकी हुंकार सुनकर बहुत-से राक्षस (मारने) आ गये; परंतु कूद-कूदकर उन्होंने सबको मार डाला। (अन्तमें) जब वहाँ बलनिधान मेघनाद आया, तब उसने ब्रह्मास्त्रका उनपर प्रयोग किया। उस दिव्यास्त्रसे बँधकर धैर्यशाली पवनकुमार रावणको देखने चल पड़े। अनेक गम्भीर कथाएँ कहकर रावणको उन्होंने अनेक प्रकारसे ज्ञानोपदेश किया—समझाया; (किंतु जब वह नहीं माना, तब) क्षणभरमें बन्धनको छुड़ाकर निकल गये और सारी लङ्का जला दी। जैसे हाथियोंके झुण्डको जीतकर

सिंह निःशङ्क कूद जाय, फिर उसी प्रकार लङ्कासे समुद्र पार कूद गये। समुद्रके किनारे आनेपर सब वानर मिले और फिर सब (किष्किन्धा) आकर श्रीरामसे मिले। श्रीजानकीका समाचार बार-बार (पूछकर) सुनकर वे शोभाधाम प्रभु अत्यन्त पुलकित हुए।

लङ्का-विजय

[२११]

करि कपि-कटक चले लंका कौं, छिन मैं बाँध्यौ सेत।
उतर गए, पहुँचे लंका पै, बिजय-धुजा संकेत॥
पठए बालि-कुमार बिनय करि, समुझाए बहु बार।
चित नहिं धरो, काल-बस जान्यौ, फिर आयौ सुकुमार॥
असरन-सरन उदार कलपतरु, रामचन्द्र रनधीर।
रिपु भ्राता जान्यौ जु बिभीषन, निस्चर कुटिल सरीर॥
राखि सरन लंकेस कियौ पुनि, जब निस्चर सब मारे।
माया करी बहुत नाना बिधि, सब कौं राम निवारे॥
कुंभकरन पुनि इंद्रजीत यह, महाबली बल-सार।
छिन मैं लिए सोख मुनिबरज्यौं छत्री बली अपार॥
कियौ प्रसाद सांतना करि कै, राज बिभीषन दीन।
पुनि मन्दोदरि अचल आयु दै, अभय-दान सब कीन॥
समाधान सुरगन कौ करि कै, अमृत मेघ बरषायौ।
कृपा-दृष्टि अवलोकन करि कै, हत कपि-कटक जियायौ॥
निस्चर किए मुक्त सब माधव, तातैं जिए न कोय।
निरभय किय लंकेस बिभीषन, राम-लखन नृप दोय॥
सीता मिली, बहुत सुख पायौ, धर्‌यौ रूप निज मायौ।
पुष्पक-यान बैठि कै नीकैं, चले भवन, सुख छायौ॥
चले पवन-सुत बिप्र-रूप धरि, भरतहि दैन बधाई।
जानि दूत रघुपति कौ प्रमुदित, भरत मिले तब धाई॥

(श्रीराम) वानरोंकी सेना सजाकर लङ्काको चल पड़े। क्षणभरमें (शीघ्र ही) उन्होंने समुद्रपर सेतु बाँध दिया। इस प्रकार समुद्र पार होकर लङ्का पहुँच गये और उनका झंडा विजय सूचित करते हुए फहराने लगा। (श्रीरामने दूत बनाकर रावणके पास) अङ्गदको भेजा, उन्होंने (रावणको) विनयपूर्वक अनेक प्रकारसे समझाया; किंतु उसने किसीपर ध्यान नहीं दिया, तब उसे कालवश समझकर वालिकुमार लौट आये। अशरणजनोंको शरण देनेवाले तथा उदारतामें कल्पवृक्षके समान रणधीर श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसोंमें कुटिल शरीरवाला (माया करनेमें समर्थ) तथा उसे शत्रुका भाई समझकर भी विभीषणको शरणमें रख लिया और जब सब राक्षसोंको मार चुके, तब उन्हें लङ्कानरेश बना दिया। (राक्षसोंने) अनेक प्रकारकी माया की; किंतु श्रीरामने सबको दूर कर दिया। कुम्भकर्ण और मेघनाद—ये महान् बलवान् थे, मानो ये बलके साररूप ही थे; किंतु उन्हें अपार बलवान् श्रीराम-लक्ष्मणने इस प्रकार नष्ट कर दिया जैसे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीने समुद्र पी लिया था। विभीषण-पर कृपा करके उन्हें सान्त्वना दी और राजा बनाया तथा मन्दोदरीको अविचल आयु प्रदान की, इसी प्रकार सभी शेष राक्षसोंको अभयदान दिया। देववृन्दका समाधान किया (उनका भय दूर कर दिया)। उनसे कहकर अमृतकी आकाशसे वर्षा करायी तथा कृपा-दृष्टिसे देखकर (युद्धमें) मारी गयी वानरोंकी सेनाको जीवित कर दिया। श्रीरघुनाथ-जीने (युद्धमें मरे) सभी राक्षसोंको मुक्त कर दिया था, इससे उनमें कोई भी जीवित नहीं हुआ। श्रीराम-लक्ष्मण दोनों राजकुमारोंने लङ्का-का राज्य विभीषणको देकर उन्हें निर्भय कर दिया। फिर सीताजी आकर मिलीं, उन्हें बड़ा आनन्द हुआ; (अग्निमें प्रवेश करके) उन्होंने मायारूप छोड़ दिया और वास्तविक रूप धारण कर लिया। पुष्पक-विमानपर बैठकर कुशलपूर्वक श्रीराम अयोध्याको लौटे, इससे संसारमें सुख छा गया (सभी हर्षित हुए)। श्रीपवनकुमार ब्राह्मणका रूप धारण करके (आगे) श्रीभरतजीको (रघुनाथजीके लौटनेकी) बधाई देने गये। श्रीरघुनाथजीका दूत समझकर भरतजी अत्यन्त आनन्दसे दौड़कर उनसे मिले।

राम-राज्य

[२१२]

सुनत नगर सबहिन सुख मान्यौ, जहँ-तहँ तैं चल धाई।
रामचंद्र पुनि मिले भरत सौं, आनँद उर न समाई॥
कियौ प्रवेस अयोध्या मैं सब, घर-घर बजत बधाई।
मंगल-कलस धराए द्वारैं, बंदनवार बँधाई॥
राजभवन मैं राम पधारे, गुरु बसिष्ठ दरसायौ।
सीस नवाय बहुत पूजा करि, सूरज-बंस बढ़ायौ॥
समाधान सबहिन कौ कीनौ, जो दरसन कौं आयौ।
कौसल्या, केकई, सुमित्रा, मिलि मन मैं सुख पायौ॥
बैठे राम राज-सिंहासन, जग मैं फिरी दुहाई।
निरभय राज राम कौ कहियत, सुर-नर-मुनि सुख पाई॥
चार मूर्ति धरि दरसन आए, चार वेद निज रूप।
अस्तुति करी बहुत, नाना बिधि, रीझे कौसल-भूप॥
सिव, बिरंचि, नारद, सनकादिक, सब दरसन कौं आए।
राम राज बैठे जब जाने, सबहिन मन सुख पाए॥
लोकपाल अति ही मन हरषे, सब सुमनन बरसायौ।
पुष्प बिमान बैठि हरि आए, लै कुबेर पहुँचायौ॥
अति आनंद भयौ अवनी पर, राम-राज सुख-रास।
कृतजुग-धर्म भए त्रेता मैं, पूरन रमा-प्रकास॥
अस्वमेध बहु जज्ञ किए पुनि, पूजे द्विजन अपार।
हय, गज, हेम, धेनु, पाटंबर, दीन्हे दान उदार॥
चरित अनेक किए रघुनायक, अवधपुरी सुख दीन्हौ।
जनक-सुता बहु लाड़ लड़ावत, निपट निकट सुख कीन्हौ॥
राम बिहार करेउ नाना बिधि, बालमीकि मुनि गायौ।
बरनत चरित बिस्तार कोटि सत, तऊ पार नहिं पायौ॥

'सूर' समुद्र की बूँद भई यह, कबि बरनन कहा करिहै ।
कहत चरित रघुनाथ, सरस्वति बौरी मति अनुसरिहै ॥
अपने धाम पठाय दिए तब, पुरबासी सब लोग ।
जै-जै-जै श्रीराम कलपतरु; प्रगट अजोध्या भोग ॥

(श्रीरघुनाथजीके आनेका,) समाचार पाकर सभी नगरवासी प्रसन्न हो गये; जो जहाँ था, वहींसे दौड़ पड़ा । श्रीरामचन्द्रजी भरतजीसे मिले, (दोनोंके ही) हृदयमें आनन्द समाता नहीं था । फिर उन्होंने अयोध्या-नगरमें प्रवेश किया, वहाँ प्रत्येक घरमें बधाईके बाजे बजने लगे । सबने द्वारपर मङ्गल-कलश रक्खे थे और वंदनवारें बाँधी थीं । श्रीरघुनाथजी राजभवनमें पधारे, वहीं कुलगुरु महर्षि वशिष्ठका दर्शन हुआ । उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम करके प्रभुने अनेक प्रकारसे पूजा की और बोले—'आपने ही कृपा करके इस सूर्यवंशकी उन्नति की है ।' जो लोग दर्शन करने आये थे, सभीका प्रभुने समाधान किया (सबसे मिलकर उन्हें सन्तुष्ट किया) । माता कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी उनसे मिल-कर आनन्दित हुईं । फिर श्रीराम राजसिंहासनपर बैठे और पूरे संसारमें उनके स्वामित्वकी घोषणा हुई । कहा जाता है कि श्रीरामका राज्य सभीके लिये निर्भय था तथा देवताओं, मनुष्यों एवं मुनियोंको अत्यन्त सुख उसमें मिला । चारों वेद अपने देवरूपमें साकार होकर चार स्वरूपसे आये, वे कोसलनरेश श्रीरघुनाथजीपर मुग्ध हो गये थे, अनेक प्रकारसे उन्होंने प्रभुकी भलीभाँति स्तुति की । शिव, ब्रह्मा, नारद तथा सनकादि मुनि—सभी श्रीरामका दर्शन करने आये । श्रीरामको राज-सिंहासनपर आसीन जानकर सभीके हृदयको अत्यन्त आनन्द हुआ । सभी लोकपाल अपने मनमें अत्यन्त हर्षित हुए, उन्होंने पुष्पोंकी वर्षा की । श्रीराम जिस पुष्पक-विमानमें बैठकर (लङ्कासे) आये थे, उसे कुबेरके पास पहुँचा दिया । श्रीरामका राज्य सुखकी राशि था, उससे पृथ्वीपर अत्यन्त आनन्द हुआ । त्रेतामें भी सत्ययुगके समान धर्माचरण होने लगा, लक्ष्मीने (जगत्में) अपना पूरा प्रकाश किया । प्रभुने

बहुत-से अश्वमेध यज्ञ किये और नाना प्रकारसे ब्राह्मणोंकी पूजा की, उन उदारने घोड़े, हाथी, स्वर्ण, गायें तथा रेशमी वस्त्र आदि दानमें दिये। श्रीरघुनाथजीने अनेक प्रकारके चरित करके अयोध्यावासियोंको सुखी किया। श्रीजानकीजी भी (पुरवासियोंसे) भली प्रकार स्नेह करती थीं और उन्हें अत्यन्त समीप रहनेका सुख प्रदान करती थीं। श्रीरामने जो नाना प्रकारकी क्रीडा की है, उसका वर्णन महर्षि वाल्मीकिने किया है; किंतु सौ करोड़ श्लोकोंमें वर्णन करते हुए भी उन्होंने रामचरितका अन्त नहीं पाया। सूरदासका यह वर्णन तो उसके सामने समुद्रकी एक बूँदके समान हो गया है, कोई भी कवि भला, (श्रीरामके चरितका) क्या (कहाँतक) वर्णन करेगा। लेकिन श्रीरघुनाथजीके चरितका वर्णन (जो कोई करेगा) उसकी पगली (भोली) बुद्धिकी सहायता सरस्वती करेंगी—वे उसके पीछे चलेंगी। श्रीरघुनाथजीने अन्तमें सभी अयोध्यापुरीके वासियोंको अपने दिव्यधाममें भेज दिया। इस प्रकार अयोध्यामें उसका उपभोग (शासन) करनेके लिये अवतरित कल्पवृक्षस्वरूप श्रीरामकी जय हो ! जय हो ! जय हो !

परिशिष्ट

पदोंमें आये हुए मुख्य कथा-प्रसङ्ग

कैकेयीको वरदान—

महाराज दशरथ एक बार देवराज इन्द्रकी सहायता करने स्वर्ग गये थे। वहाँ असुरोंसे वे युद्ध कर रहे थे। रानी कैकेयी भी उनके साथ थी। युद्धमें शत्रुका बाण लगनेसे महाराज दशरथके रथका धुरा टूट गया। रानी कैकेयीने इसे देख लिया और तुरंत रथसे कूदकर धुरेके स्थानपर अपना हाथ लगा दिया। युद्धमें उलझे महाराजको इसका कुछ पता नहीं लगा। युद्ध समाप्त होनेपर उन्होंने रानीका रक्तसे लथपथ हाथ देखा। रानी कैकेयीके साहस और सहायतासे प्रसन्न होकर महाराजने उनसे कोई भी दो वरदान माँग लेनेको कहा। रानीने उस समय कहा—'जब कभी आवश्यकता होगी, तब माँग लूँगी।' श्रीरामके राज्याभिषेककी जब महाराजने तैयारी की, तब इन्हीं दोनों वरदानोंको स्मरण दिलाकर उन्होंने भरतके लिये राज्य और श्रीरामके लिये चौदह वर्षका वनवास माँगा।

अहल्या-उद्धार—

गौतमऋषिकी पत्नी अहल्याके सौन्दर्यपर इन्द्र मोहित हो गये थे। एक रात्रिमें भ्रमवश सवेरा हुआ समझकर ऋषि स्नान-संध्या करने नदी-किनारे चल पड़े। उसी समय इन्द्र गौतमका रूप धारण करके अहल्याके पास आये और अहल्याको धोखा देकर उनका सतीत्व नष्ट किया। इधर महर्षि गौतमको मार्गमें ही अपनी भूलका पता लग गया। रात्रि अधिक है, यह जानकर वे लौट पड़े। आश्रमपर आकर इन्द्रको देखकर और सब रहस्य जानकर उन्होंने इन्द्रको सहस्र भग होनेका तथा अहल्याको पत्थर हो जानेका शाप दे दिया। पीछे क्रोध

शान्ति होनेपर उन्होंने इन्द्रको कहा—'तुम्हारे भग पीछे नेत्र बन जायँगे।' अहल्याको बताया कि श्रीरामकी चरणधूलि पाकर वह पुनः स्त्री होकर ऋषिके पास तपोलोकमें आ जायगी। महर्षि विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षा करके जनकपुर जाते हुए श्रीराम गौतमजीके आश्रममें पहुँचे। उस निर्जन आश्रम और स्त्रीके आकारकी शिलाका भेद विश्वामित्रजीसे जानकर अपने चरणोंसे उन्होंने शिला बनी अहल्याको छू दिया; जिससे वह शापमुक्त होकर फिर नारी हो गयी और अपने पतिके लोकको चली गयी।

वालि-त्रास—

एक बार वालीका दुन्दुभि नामके राक्षससे युद्ध हुआ। वालीने उस राक्षसको मारकर ऋष्यमूक पर्वतपर फेंक दिया। राक्षसके शरीरसे निकले रक्तसे उस पर्वतपर रहनेवाले एक ऋषिका आश्रम अपवित्र हो गया। इससे क्रोधित होकर ऋषिने शाप दे दिया कि यदि वाली फिर इस पर्वतपर आयेगा तो उसकी मृत्यु हो जायगी। इस शापके भयसे वानरराज वाली उस पर्वतपर नहीं जाता था।

पहले वाली और सुग्रीव इन दोनों भाइयोंमे बड़ी मित्रता थी। एक दिन मयके पुत्र मायावी राक्षसने किष्किन्धा आकर वालीको युद्धके लिये ललकारा। वाली उसके पीछे दौड़ा तो राक्षस भागकर एक गुफामें घुस गया। सुग्रीव भी भाईके साथ ही आये थे। वालीने उन्हें एक पक्ष प्रतीक्षा करनेको कहा और स्वयं गुफामें घुस गया। सुग्रीव महीने-भर वहीं प्रतीक्षा करते रहे; किन्तु जब गुफासे बड़ी भारी रक्तधारा निकली, तब उन्होंने समझा कि राक्षसने वालीको मार दिया है। इससे गुफाद्वारपर चट्टान रखकर वे किष्किन्धा भाग आये। मन्त्रियोंने वालीको मरा समझकर सुग्रीवको राजा बना दिया। राक्षसको मारकर वाली जब लौटा, तब सुग्रीवको राजसिंहासनपर बैठे देखकर उसे बड़ा क्रोध आया। उसने सुग्रीवकी स्त्री, घर आदि सब छीन लिया और उन्हें भी मारनेके लिये दौड़ा। भयभीत सुग्रीव चारों ओर भागते फिरे। अन्तमें वे ऋष्यमूक पर्वतपर आकर रहने लगे; क्योंकि वहाँ वाली शापके भयसे नहीं आता था।

सप्त-ताल—

किसी समय वालीने तालके सात फल एकत्र किये। उन्हें रखकर वह स्नान करने पम्पा-सरोवरमें गया। लौटनेपर उसने देखा कि उन फलोंपर एक सर्प बैठा है। अपने फलोंके दूषित हो जानेसे वालीने क्रोधमें आकर उस सर्पको शाप दिया—'ये सातों ताल तेरे शरीरको फोड़कर उगेंगे।' जब नागमाताको इस बातका पता लगा, तब अपने पुत्रकी मृत्युसे दुखी होकर उन्होंने वालीको शाप दिया—'जो एक बाणसे इन ताल-वृक्षोंको काट देगा, उसीके द्वारा तू मारा जायगा।' श्रीरामके मिलनेपर उनसे सुग्रीवने यह कथा सुनायी। सुग्रीवको अपने पराक्रमका विश्वास दिलानेके लिये श्रीरामने एक ही बाणसे उन सातों तालके वृक्षोंको काट दिया।

वालि-वध—

श्रीरामने सुग्रीवको वालीसे युद्ध करने भेजा। सुग्रीवकी ललकार सुनकर वाली भी क्रोधमें भरा युद्ध करने आ गया। एक बार तो वाली-का घूसा खाकर सुग्रीव व्याकुल होकर भाग खड़े हुए; किंतु प्रभुने उनके गलेमें पहचानके लिये पुष्पोंकी माला पहनाकर फिर भेजा। मल्लयुद्धमें जब सुग्रीव थकने लगे, तब श्रीरामने वालीके हृदयमें बाण मार दिया। जब प्रभु सम्मुख आये—वालीने पहले तो उन्हें प्रेमभरा उलाहना दिया, फिर विनम्र हो गया। श्रीरामने वालीको वैकुण्ठ भेज दिया। वालीके मरनेपर किष्किन्धाका राज्य सुग्रीवको प्रभुने दिया और वालिकुमार अङ्गदको उनका युवराज बनाया।

सुरसा—

नागोंकी माताका नाम सुरसा है। श्रीहनुमान्‌जी सीताकी खोजमें जब लङ्का जाने लगे, तब देवताओंने यह जाननेके लिये कि लङ्का जाकर वे सफल हो सकें इतना बल तथा बुद्धि उनमें है या नहीं, सुरसाको उनकी परीक्षा लेने भेजा। सुरसाने मार्गमें आकर उन्हें रोका और बोली—

'मुझे भूख लगी है। मैं तुम्हें खाऊँगी।' पहले तो हनुमान्जीने प्रार्थना की—'मुझे श्रीरामका कार्य करके लौट आने दो और प्रभुको श्रीजानकी-का समाचार दे लेने दो, तब खा लेना।' फिर भी जब सुरसा इसपर राजी न हुई तब बोले—'अच्छा खा लो।' सुरसा जितना मुख फैलाती थी, हनुमान्जी उससे दुगुना बड़ा अपना शरीर कर लेते थे। अन्तमें जब सुरसाने सौ योजन-जितना मुख फैलाया, तब हनुमान्जी बहुत छोटे हो गये और झटसे उसके मुखमें जाकर फिर निकल आये। उगले हुए-को तो कोई खाता नहीं। हनुमान्जीकी बुद्धि और बल देखकर सुरसाने उन्हें आशीर्वाद दिया और चली गयी।

रावणको नलकूबरका शाप—

स्वर्गकी अप्सरा रम्भा एक दिन शृङ्गारकरके कुबेरके पुत्र नलकूबरके पास जा रही थी। मार्गमें रावण मिला, रम्भाके रूपपर मुग्ध होकर उसे रावणने पकड़ लिया। रम्भाने कहा—'कुबेर आपके बड़े भाई हैं। उनके पुत्र नलकूबरके पास आज जानेका मै वचन दे चुकी हूँ। आज मैं आपकी पुत्रवधूके समान हूँ, अतः मुझे छोड़ दें।' किंतु रावणने उसकी बात स्वीकार नहीं की। रम्भाके साथ उसने बलात्कार किया। जब यह समाचार नलकूबरको मिला, तब उन्होंने शाप दिया—'अबसे रावण यदि किसी भी स्त्रीकी इच्छाके विरुद्ध उससे बलात्कार करेगा या उसे अपने राजभवनमें रखेगा तो तुरंत उसकी मृत्यु हो जायगी।'

कागके नेत्र फोड़ना—

एक दिन वनमें श्रीराम श्रीजानकीजीकी जङ्घापर मस्तक रखकर सो रहे थे। इन्द्रका पुत्र जयन्त कौएका रूप बनाकर वहाँ आया। उस दुष्टने चोंच तथा पंजेसे श्रीजानकीजीके अङ्गमें चोट की। श्रीजानकीके अङ्गसे रक्तकी बूँदें गिरने लगीं, जिससे श्रीराम जग गये। क्रोध करके उन्होंने एक तिनकेको ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके कौएकी ओर फेंका। उस मन्त्र-

प्रेरित बाणके भयसे जयन्त अपने पिता इन्द्र, ब्रह्मा, शंकरजी तथा सभी लोकपालोंके यहाँ दौड़ता फिरा; किन्तु किसीने उसे शरण नहीं दी। वह बाण उसके पीछे बराबर लगा रहा। अन्तमें देवर्षि नारदके कहनेसे वह श्रीरामकी ही शरणमें आया। भगवान् श्रीरामने उसका एक नेत्र उस बाणसे फोड़कर—उसे छोड़ दिया।

वालीद्वारा रावणका पकड़ा जाना—

रावण जब दिग्विजय करता हुआ किष्किन्धा पहुँचा, तब वानर-राज वाली संध्या कर रहा था। रावणने वालीको युद्धके लिये ललकारा। वालीने कुछ देर प्रतीक्षा करनेको कहा; किंतु जब रावणने उतावली दिखायी, तब वालीने उसे पकड़कर अपनी काँखमें (भुजाके नीचे) दबा लिया। छः महीने रावण वहीं दबा रहा। इसके बाद एक दिन अवसर पाकर वह निकल भागा; किंतु फिर वालीने उसे दौड़कर पकड़ लिया और अपने शिशु पुत्र अङ्गदके पलनेमें लाकर बाँध दिया। शिशु अङ्गद उसे खेल-खेलमें थप्पड़ों और पैरोसे मारते थे। पुलस्त्य-मुनिके कहनेसे वालीने रावणको छोड़ा।

बलिके साथ छल—

दैत्यराज बलिने आचार्य शुक्रकी कृपासे देवताओंको जीतकर स्वर्ग-पर अधिकार कर लिया था। उनका अधिकार पक्का करानेके लिये शुक्रा-चार्य उनसे सौ अश्वमेध यज्ञ करा रहे थे। उनमेंसे निन्यानबे यज्ञ हो चुके थे। सौवें यज्ञके समय देवमाता अदितिकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान्ने उनके यहाँ वामनरूपसे अवतार लिया। वामनभगवान् राजा बलिके यज्ञमें आये और बलिसे उन्होंने अपने पैरसे तीन पद भूमि माँगी। बलिने जब भूमि-दानका संकल्प कर लिया, तब भगवान्ने वामनरूप छोड़कर विराट्रूप धारण करके एक पैरसे सारी पृथ्वी और दूसरे पैरसे स्वर्गादि सब लोक नाप लिये। तीसरे पैरके बदले बलिने

अपना शरीर दे दिया। भगवान्‌ने तीसरा पैर बलिके मस्तकपर रखा। बलिसे छीनकर स्वर्गका राज्य तो भगवान्‌ने इन्द्रको दे दिया; किंतु बलि को सुतलोकका राजा बनाया और यह वरदान दिया कि स्वयं वे सदा बलिके द्वारपर गदा लिये द्वारपालके रूपमें खड़े रहेंगे तथा सावर्णि-मन्वन्तरमें बलिको इन्द्र बनायेंगे।

हिरण्यकशिपुकी वरदान-प्राप्ति और वध—

दैत्यराज हिरण्यकशिपुने सहस्रों वर्षतक कठोर तपस्या करके ब्रह्माजी-से यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि वह ब्रह्माजीकी सृष्टिके किसी प्राणीके द्वारा नहीं मारा जायगा। इतना ही नहीं, वह न पृथ्वीपर मरेगा न आकाशमें, न अस्त्र-शस्त्रसे मारा जायगा न घरके भीतर या बाहर मारा जायगा, न दिनमें मारा जायगा न रातमें, किसी मनुष्य या पशुसे भी नहीं मारा जायगा। यह वरदान पाकर वह अजेय हो गया। इन्द्रादि सभी देवताओंको जीतकर उसने स्वर्गपर अधिकार कर लिया। त्रिलोकी-का स्वामी बनकर उसने यज्ञ, दान तथा भगवान्‌की पूजातक बंद करा दी। भगवान्‌का वह शत्रु बन गया। उसके पुत्र प्रह्लादजी भगवान्‌के परम भक्त थे। प्रह्लादसे भगवान्‌की भक्ति छुड़वानेके लिये हिरण्यकशिपुने उन्हें नाना प्रकारसे डराया-धमकाया; किंतु जब प्रह्लादजीने भगवान्‌की भक्ति नहीं छोड़ी, तब वह उनको मार डालनेके तरह-तरहके उपाय करने लगा। भगवान्‌ने उसके सब उत्पातोंसे प्रह्लादकी रक्षा की। अन्त-में जब वह स्वयं प्रह्लादको मारनेके लिये तलवार लेकर उठा, तब भगवान् पत्थरका खंभा फाड़कर प्रकट हो गये। भगवान्‌का वह शरीर गलेसे नीचे मनुष्यका था और गलेसे ऊपर सिंहका। नृसिंहभगवान्‌ने झपटकर हिरण्यकशिपुको पकड़ लिया और संध्याके समय राजसभाकी बाहरी चौखटपर ले जाकर अपनी जाँघोंपर उसे पटककर नखसे उसका पेट फाड़ दिया।

जय-विजयको शाप--

ब्रह्माजीके चारों मानसपुत्र सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्-कुमार सदा पाँच वर्षके बालककी अवस्थामें रहते हैं। वे एक बार भगवान् विष्णुका दर्शन करने वैकुण्ठ गये। वैकुण्ठकी छः ड्योढ़ियोंको पारकर जब वे सातवें द्वारमें जाने लगे, तब जय और विजय नामके भगवान्के द्वारपालोंने नंग-धड़ंग बालकोंको बिना पूछे भीतर जाते देखकर मार्गमें वेंत अड़ाकर रोक दिया। इससे क्रोधमें आकर इन कुमारोंने उन द्वारपालोंको शाप दिया—'तुमलोग तीन जन्मतक राक्षस होते रहो और वहाँ भगवान्से शत्रुता करके उनके द्वारा ही मारे जाओ।' इसी शापसे जय-विजय पहले जन्ममें हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए, दूसरे जन्ममें रावण तथा कुम्भकर्ण और तीसरे जन्ममें शिशुपाल और दन्तवक्त्र हुए।

रावणके सिर शिव-निर्माल्य हैं ?—

रावणने भगवान् शंकरकी पूजा करते समय यज्ञकुण्डमें अपने मस्तक काट-काटकर शंकरजीके निमित्त हवन कर दिया। भगवान् शंकरकी कृपासे उसके फिर सिर आ गये। शंकरजीको चढ़ाये होनेसे रावण अपने सिरोंको शिव-निर्माल्य मानता था।

रावण नाम कैसे पड़ा ?—

एक बार रावण विमानपर बैठा कैलासके ऊपरसे जाने लगा। नन्दीश्वरके रोकनेपर भी जब वह नहीं माना, तब नन्दीश्वरने उसके विमानकी गति रोक दी। इससे क्रोधमें आकर रावण विमानसे उतर पड़ा और पूरे कैलास-पर्वतको उसने उखाड़कर अपने कंधोंपर रख लिया। वह कैलासको उठाकर फेंक देना चाहता था; किंतु भगवान् शंकरने पर्वतको अँगूठेसे दबा दिया, इससे रावण पर्वतके नीचे दबकर चिल्लाने लगा। सहस्र वर्षतक पर्वतके नीचे दबे रोते हुए वह शंकरजीकी स्तुति करता रहा। इससे कृपा करके शंकरजीने उसे पर्वतके नीचेसे निकलने दिया और बोले—'तुम इतने दिनोंतक रोते

रहे हो और सारे विश्वको अपने अत्याचारसे रुलानेवाले होगे, इसलिये तुम्हारा नाम रावण होगा।'

महाराज सगर और सागर—

महाराज सगर अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे। उनके यज्ञका घोड़ा चुराकर इन्द्रने पातालमें कपिलमुनिके आश्रममें छोड़ दिया। महाराजने अपने साठ हजार पुत्रोंको घोड़ेका पता लगाने भेजा। जब पृथ्वीपर घोड़ा कहीं नहीं मिला, तब राजा सगरके वे पुत्र पृथ्वीको खोदने लगे और चारों ओरसे पातालतक खोद डाला। सगर-पुत्रोंके खोदे स्थानमें भरे होनेसे ही समुद्र सागर कहा जाता है। भगवान् श्रीरामके महाराज सगर पूर्वपुरुष (पूर्वज) थे। सगरके पुत्रोंसे खोदा सागर महाराज सगरका पौत्र ही हुआ—अतः वह भी हमारा पूर्वज है, यह मानकर श्रीराम सागरसे मार्ग देनेकी प्रार्थना कर रहे थे।

महिरावण—

लङ्कासे बहुत दूरके द्वीपमें एक सहस्र भुजाओंवाला रावण रहता था। उसका नाम महिरावण था। ब्रह्माजीने उसे वरदान दिया था कि वह किसी पुरुषद्वारा नहीं मारा जायगा। राज्याभिषेकके बाद श्रीरामने उसपर चढ़ाई की; किंतु वह इतना बलवान् था कि उसके साथ युद्ध करनेमें सारी सेना तथा भाइयोंके साथ श्रीरघुनाथजी मूर्च्छित होकर युद्धभूमिमें गिर पड़े। अन्तमें हनुमान्जीके द्वारा समाचार पाकर स्वयं सीताजी वहाँ गयीं और महाकालीरूप धारण करके उन्होंने महिरावणका वध किया।

पम्पासरोवरकी शुद्धि—

मतंग ऋषिके आश्रमके आस-पासके मुनि नीच जाति समझकर शबरीजीका तिरस्कार करते थे। शबरीजी बड़े अँधेरे ही उठकर

पम्पासरोवरका मार्ग तथा घाट स्वच्छ कर दिया करती थीं। मुनियोंमेंसे एकने किसी दिन छिपकर देखा कि कौन नित्य मार्ग स्वच्छ करता है। शबरीजीको देखकर उन मुनिने उनको बहुत डाँटा और उनका तिरस्कार किया। किंतु जैसे ही वे मुनि महाराज पम्पासरोवरमें स्नान करने घुसे, उनका स्पर्श होते ही सरोवरका जल विकृत हो गया। जलमें कीड़े पड़ गये और उससे दुर्गन्ध आने लगी। जब श्रीरघुनाथजी सीताजीका अन्वेषण करते हुए शबरीजीके आश्रममें पहुँचे, तब मुनियोंने एकत्र होकर पम्पासरोवरके जलके दोषको दूर कर देनेकी प्रार्थना की। श्रीरामने कहा—'परम भक्ता शबरीजीका अपमान करनेसे सरोवरका जल विकृत हो गया है। उनका चरण जलमें पड़े तो जल स्वच्छ हो जायगा।' मुनियोंके आग्रहसे शबरीजीने सरोवरमें स्नान किया। जलमें उनके चरण रखते ही सरोवरका जल दुर्गन्धरहित और निर्मल हो गया।

महर्षि अगस्त्यद्वारा समुद्र-पान—

बहुत-से दैत्य समुद्रके जलमें छिपे रहते थे। वे अवसर पाकर निकलते और संसारमें उत्पात करके फिर जलमें छिप जाते थे। देवराज इन्द्रने महर्षि अगस्त्यसे प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना स्वीकार करके अगस्त्यजी तीन अञ्जलिमें ही पूरे समुद्रका जल पी गये। जल सूख जानेपर इन्द्रने उन सब असुरोंको मार डाला। देवताओंने समुद्रको फिर भर देनेकी प्रार्थना की; किंतु अगस्त्यजीने कहा—'वह जल तो मेरे उदरमें पच गया।' पीछे भगवान्‌ने कृपापूर्वक समुद्रको जलसे पूर्ण किया।



मुद्रक—काशीमुद्रणालय, विश्वेश्वरगंज वाराणसी।